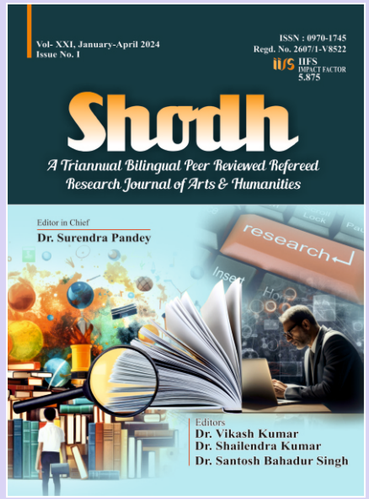

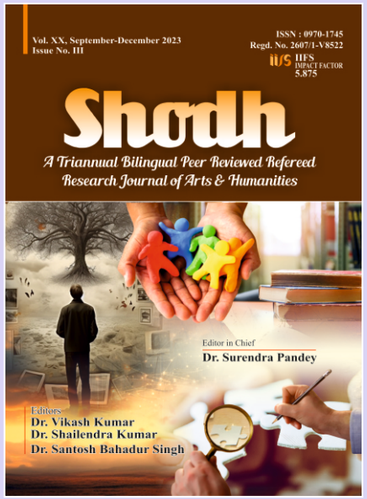

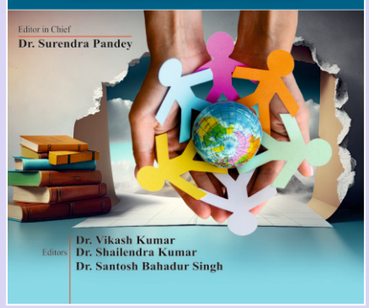

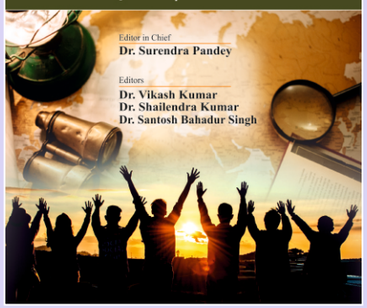

Published by

History & Historical Writing Association,
U.P., Varanasi (INDIA)
HIG-4, VDA Colony, Lalpur-II, Chandmari,
Varanasi, Email: shodh1984@gmail.com

Shodh A Triannual Bilingual Refereed Journal of Arts & Humanities ■ May-December 2024

Vol- XXI, May-December 2024
Issue No. II & III Combined

ISSN : 0970-1745
Regd. No. 2607/1-V8522
IIFS IMPACT FACTOR 5.875

Shodh

A Triannual Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal of Arts & Humanities

Vol. XXI Issue No. II & III, May.–December. 2024, ISSN: 0970-1745 **Impact Factor 5.875**

Regd. No. 2607/1-V8522 ISSN: 0970-1745

SHODH

[A Triannual Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal of Art & Humanities]

Chief Editor
Dr. Surendra Pandey
Editors
Dr. Vikash Kumar
Dr. Shailendra Kumar
Dr. Santosh Bahadur Singh

Published by
History & Historical Writing Association, U.P., Varanasi (India)
HIG-4, VDA Colony, Lalpur-II, Chandmari, Varanasi
Mob. 9451173404, 9868477818, 9470828492 Email: shodh1984@gmail.com

Printed by
Akhand Publishing House, Delhi (India)
L-9/A, First Floor, Street No.42, Sadatpur Extension, Delhi
Mob. 9968628081, 9555149955, 9013387535 Email: akhandpublishing@yahoo.com

Note: The responsibility of the facts given and opinions expressed in articles of journal is solely that of individual author and not to the publisher.

First Issue Publication 1984

Chief Editor :

Dr. Surendra Pandey
Assistant Professor,
Kuba P.G. College,
Dariyapur, Newada, Azamgarh

Editors

Dr. Vikash Kumar
Assistant Professor,
Department of Hindi,
Sri Varshney College, Aligarh, U.P

Dr. Shailendra Kumar
Assistant Professor,
Department of Management
Sikkim University, Sikkim

Dr. Santosh Bahadur Singh
Assistant Professor
Department of English
Lady Irwin College, University of Delhi

Executive-Editors

Dr. Varsha Singh
Associate Professor
Department of English
Deshbandhu College, University of Delhi

Dr. Arun Kumar Mishra
Assistant Profesar
Hindi M D PG College
Pratapgarh, UP

Co-Editors

Dr. Abhishekh Kumar Pandey
Principal
Vidya College of Professional Studies,
Patna Bihar

Dr. Sudhir Kumar Sah
Former Research Scholar
Faculty in P. G. Deptt of
Commerce TMBU Bhagalpur,
Bihar

Sub-Editors

Dr. Ravendra Rajput
Associate Professor, Deptt. of Teacher Education
Shri Varshney College Aligarh

Dr. Abhay Kumar
Assistant Professor, BRM College,
Munger, Munger University, Bihar

Vol. XXI Issue No. II & III, May.–December. 2024, ISSN: 0970-1745 **Impact Factor 5.875**

SHODH

.....A Triannual Bilingual Refereed Research Journals of Arts & Humanities

Patrons
Dr Jai Ram Singh
Principle Degree College, Palahipatti, Varanasi

Editorial Board

1. Prof. Hirocko, Nagasaki, Osaka University, Japan.
2. Prof. Ashok Singh, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
3. Prof. Ravindra Nath Singh, AIHC Department, Banaras Hindu University.
4. Prof. Rangnath Pathak, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
5. Prof. Chandrakala Tripathi, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
6. Prof. Anita Singh, Department of English, Banaras Hindu University.
7. Prof. Abha Singh, Pro Vice Chancellor, B.N. Mandal University, Bihar.
8. Prof. Sharvesh Pandey, Principal DCSK PG College, Mau, UP
9. Prof. Yogesh Kumar Sharma, Department of English, Swami Shraddhanand College, University of Delhi.
10. Prof. Sanghmitra, Department of Political Science, Bodoland University Assam.
11. Dr Nirmla Kumari, Associate Professor, Hindi Department, Shri Varshney College, Aligarh.
12. Dr Varsha Singh Associate Professor English Department, Deshbandhu College, University of Delhi.
13. Dr Anupam Kumar, Associate Professor of English, SGT University, Budhera, Badli Road, Gurugram, Haryana
14. Dr O.P. Singh, Harishchandra P.G. College, Varanasi.
15. Santosh Patel, Assistant Registrar, Delhi Teacher University, Delhi.
16. Dr Ratnesh Tripathi, Assistant Professor, Department of History, Satyawati College, University of Delhi.
17. Dr Vikash Kumar Singh, Assistant Professor, AIHC Department, Banaras Hindu University.

18. Satyendra Kumar, Assistant Professor, Department of English, Kirori Mal College, University of Delhi.

19. Dr. Shubhanku Kochar, Assistant Professor, Department of English, Guru Govind Singh Indraprastha University, Dwarka New Delhi.

20. Vijay kumar, Assistant Professor, Department of English, Satyawati College, University of Delhi.

21. Dr. Bhartendu Kumar Pathak, Assistant Professor, Department of Hindi, Kashmir University, Shrinagar (J&K).

22. Dr. Priyadarshini, Assistant Professor, Department of Hindi, The English Foreign Languages University, Haiderabad, Telangana.

23. Dr. Rashmika Mishra, Assistant professor department of vocal music Mmv Bhu

24. Dr. Bhupendra Kumar, Assistant Professor Department of Sanskrit Kirori Mal College, University of Delhi.

विषय-सूची
Contents

PART–I

1. कटरा बी आर्जू उपन्यास में आपातकाल का चित्रण 3
—शशिकला सिंह पटेल

2. भारत में परमाणु ऊर्जा और प्रौद्योगिकी 9
—डॉ० विरेश कुमार

3. "आजादी के अंजोर" मूलतः हाशिए की आवाज है 16
—डॉ. संतोष पटेल

4. इतिहास लेखन की पौराणिक परम्परा 22
—प्रो0 ओंकार नाथ द्विवेदी

5. भारतीय इतिहास लेखन एवं जैन आदि पुराण 28
—प्रो0 ओंकार नाथ द्विवेदी

6. शमशेर की काव्य साधना 35
—डॉ0 अश्विनी कुमार पाण्डेय

7. साहित्य का यथार्थवादी रूपः व्यंग्य 42
*—*डॉ. राधा मिश्रा, **आकाश पाल*

8. दिनकर के काव्य में स्त्री चेतना 49
—डॉ0 विकास कुमार

9. हिन्दी साहित्यकार उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में चित्रित नारी यथार्थ 58
—राखी पचौरी

10. शंकर शेष के नाटकों में शिक्षकों का अंतर्द्वंद्व (एक और द्रोणाचार्य नाटक के संदर्भ में) 64
*—*डॉ० राज कुमार, **कु० रेखा मद्धेशिया*

11. श्री पुरुषोत्तम सिंह की पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं प्रारम्भिक जीवन 67
—कु. शहनाज

12. मूर्तिकला में परिलक्षित देवी प्रतिमा का दैवीय एवं मानवीय रूप: कलचुरियों के विशेष सन्दर्भ में 75
—डॉ0 अनामिका मौर्या

13. साहित्य का समाजशास्त्र और उसका स्वरूपगत अध्ययन (मैनेजर पाण्डेय के विशेष परिप्रेक्ष्य में) 79
—डॉ० बृजेश कुमार पाण्डेय

14. राष्ट्रीय विकास में साहित्य का योगदान 83
—डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय

15. समकालीन हिन्दी काव्य में प्रमुख स्त्री स्वर 87
*— *डॉ० ममता मिश्रा, **ज्योति अवस्थी*

16. हिन्दू कोड बिल और महिला सशक्तिकरण 94
*— *रेखा, **डॉ० प्रेम चन्द्र*

17. युवाओं को स्वरोजगार के प्रति प्रेषित करने में स्वावलम्बी भारत अभियान की भूमिका विश्लेषणात्मक अध्ययन 100
*— *शिवम द्विवेदी, **डॉ० कविता श्रीवास्त्व, ***डॉ० बिंद्रेश कुमार यादव*

18. मासिक धर्म प्रबंधन : अलीगढ़ जनपद की ग्रामीण एवं नगरीय महिलाओं का तुलनात्मक अध्ययन 105
—रजनी बघेल

19. दिनकर के साहित्य में उपस्थित विमर्श के विविध आयाम : एक अनुशीलन 113
—डॉ. आलोक कुमार पाण्डेय

20. मानवीय संवेदना और "सूनी घाटी का सूरज" 121
—डॉ. विनय कुमार शुक्ला

21. वर्तमान देश-दशा और रघुवीर सहाय की कविता 125
—डॉ. विनय कुमार शुक्ला

22. पंडित दीनदयाल उपाध्याय व्यक्तित्व एवं विचार 131
*— *डॉ. ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता, **एम एस सरस्वती दुबे*

PART–II

1. Experiencing Silent Echoes 3
—Dr. Gopal Thakur

2. Exploring the Fairs and Festivals of Western Odisha: A Study of Cultural Heritage and Community Dynamics 10
*— *Dibya Ranjan Tripathy, **Dr. Santosh Kumar Mallik*

3. "Adolescent Vices and Modern Youth Subcultures:
A Study of Tauseef Bareilvi's E-Cigarette" 20
—Dr. Shajar Uddin

4. Cultural Preservation and Heritage Revitalization:
Strategies for Sustaining Siddi and Girmitiya Identities in the Global Diaspora 32
*— *Prof. Geeta Sahare, **Abhijeet Chaudhary*

5. Status of Women in India - Past & Present : A Compendium 43
*— *Prof. Seema Yadav, **Khursheed Alam Khan*

6. Artificial Intelligence and Cultural Identity: An Analysis 52
—Dr. Satyam Dwivedi

7. Social Status of Transgender in India: A Critical Analysis 60
*— *Khursheed Alam Khan, **Prof. Reeta Nigam*

8. Critical Analysis of the Criminal Justice System in India 72
*— *Ratan Kumar Patel, **Prof. Reeta Nigam*

PART – I

कटरा बी आर्जू उपन्यास में आपातकाल का चित्रण

शशिकला सिंह पटेल
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

आपातकाल, आजाद भारत के लोगों के लुटते अरमानों तथा ध्वस्त होती नैतिकताओं का काल था। प्रजातंत्र पर संकट मंडराने लगा था। प्रजातांत्रिक तरीके से चुनी गई सरकार तानाशाही की ओर बढ़ चली थी। लोकतंत्र के विरुद्ध एक सोची समझी साजिश चल रही थी। राही मासूम रज़ा ने इस तानाशाही के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद की और आपातकाल को वर्ण्य विषय बनाकर 'कटरा बी आर्जू' नामक उपन्यास लिखा। इस उपन्यास के अंतर्गत लेखक ने आपातकालीन परिस्थितियों का व्यंग्यात्मक चित्रण किया है। इस उपन्यास में इलाहाबाद के कटरा इलाके के उन गूँगे बहरे लोगों की कहानी है जो अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं है। वहाँ अंधकार ही अंधकार व्याप्त रहता है, चाहे वह अशिक्षा का अंधकार हो अथवा धन के अभाव के कारण व्याप्त निराशा का अंधकार। लोगों के पास अपने रहने के लिए एक छोटा सा घर तक नहीं और अपना खुद का घर बनाने का अरमान जीवन भर पाले रहते हैं। कालांतर में उनका घर का यह अरमान एक कच्चे शीशे की भाँति टूट कर बिखर जाता है और उपन्यास का समापन हो जाता है। यह उपन्यास यह दर्शाता है कि एक आम आदमी को सिर्फ सपने बुनने का अधिकार है, उसे प्राप्त करने का बिल्कुल भी नहीं। वह आर्जू तो पाल सकता है लेकिन छद्म गणतंत्र में उसकी आर्जू पूरी होने की कोई गारंटी नहीं है। स्वतंत्रता तो प्राप्त हुई किन्तु आम जनता के साथ छल ही छल होता रहा। इस उपन्यास में राही मासूम रज़ा ने पूरी निष्पक्षता के साथ राजनीति के स्याह चेहरे से पर्दा उठाया है।

'कटरा बी आर्जू' उपन्यास की कथावस्तु इलाहाबाद की एक बस्ती कटरा पर आधारित है। जिसका वास्तविक नाम कटरा मीर बुलाकी था। सन 42 की क्रांति में इस गली का नाम द्वारिका प्रसाद के नाम पर रख दिया गया था जो आज भी बस्ती के बाहर लगे बोर्ड पर अंकित था। उपन्यास की शुरुआत निम्न पंक्तियों से होती है– "वास्तव में उस कटरे का नाम 'कटरा बी आर्जू' नहीं था। उसका असली नाम 'कटरा मीर बुलाक़ी' था। कारपोरेशन के काग़ज़ों में भी उसका यही नाम लिखा हुआ था। वह तो हुआ यूँ कि जिस दिन शहनाज़ और मास्टर बगुल हसन 'नायाब' मछलीशहरी की शादी तै हुई उसी रात उन्होंने इस कटरे का नाम बदलकर 'कटरा बी आर्जू' रख दिया। यूँ भी वह बहुत दिनों से देखते चले आ रहे थे कि उनके कटरे वालों के पास और तो कुछ नहीं पर आर्जुएँ बहुत हैं।"[1]

षड्यंत्र की शुरुआत तभी से हो जाती है जब मास्टर बगुल हसन ने कटरा मीर बुलाकी के नीचे चाकू से खुरचकर कटरा बी आर्जू लिख दिया। आसाराम, जो कि एक पत्रकार था, वह हर रोज उसी रास्ते से गुजरता था, एक दिन उसने इस नाम को पढ़ा तो उसे यह नाम बहुत अधिक पसंद आया और उसने इस पर आधारित

एक लेख लिखा और अपने संपादक को दिखाया। संपादक को भी यह लेख अच्छा लगा और उसने आसाराम से इस पर आधारित एक सीरियल बनाने की फरमाइश जड़ दी। शहर की सरकार ने इसे सत्ता पलटने की साजिश मानकर इसकी जाँच के लिए के.बी.ए. नाम से एक इन्वेस्टिगेटिंग फाइल बना दी और जांच सीआईडी को सौंप दी।

"परन्तु सरकारी तौर पर चूँकि कोई 'कटरा बी आर्जू' था ही नहीं, इसलिए शहर की सरकार को परेशानी हुई कि कहीं यह सरकार का तख्ता उलटने की किसी साजिश का 'कोड नाम' न हो। तो, खुफिया पुलिस के कार्यालय में एक 'के.बी.ए.' फाइल खुल गई।"[2]

पत्रकार आसाराम को इस फाइल का मुख्य आरोपी बनाया गया। आसाराम का अपराध सिर्फ इतना था कि वह कटरा बी आरजू मोहल्ले की कहानी लिखना चाहता था। इसके लिए वह अपना अधिकांश समय कटरा मोहल्ले के लोगों के साथ बिताने लगा था। जांच एजेंसियो का संदेह गहरा होता चला गया और उन्होंने उसकी पल-पल की गतिविधियों पर नजर रखना प्रारंभ कर दिया। सरकार के दस्तावेजों में इसे इमरजेंसी के समय सरकार का तख्ता पलटने की साजिश के तौर पर देखा गया।

"थोड़े दिनों बाद शहर की सरकार को यक़ीन हो गया कि 'कटरा मीर बुलाकी' में यक़ीनन सरकार का तख्ता उलटने की कोई गहरी साजिश हो रही है। उसके ख्याल में वह पत्रकार उस साजिश का सरगना था। जो ऐसा न होता तो उस पत्रकार का सारा समय उसी कटरे के आसपास और उसी कटरे के लोगों के बीच न गुज़रता। .....तो धीरे-धीरे 'के.बी.ए.' फाइल में शाखें फूटने लगीं और चूँकि रिपोर्टों में 'कटरा मीर बुलाकी' के लोगों के नाम बार-बार आ रहे थे इसलिए शाखें उन्हीं के नामों की फूटीं।"[3]

आसाराम के दादा बाबूराम जी कांग्रेसी विचारधारा के व्यक्ति थे किंतु आसाराम कम्युनिस्ट विचारधारा पर विश्वास रखने लगा था। इसलिए आए दिन उसके और दादा के बीच दूरियाँ बढ़ती जा रही थी। आसाराम बात-बात में चीन, रूस, फ्रांस की क्रांति और अमेरिका की सिविल वार के बारे में बातें करने लगता। अब उसकी बुक शेल्फ में 'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' तथा गोर्की का उपन्यास 'माँ' आ गया था।

आसाराम को कांग्रेस की सरकारों पर बिल्कुल भी भरोसा नहीं था क्योंकि वह उन्हें पूँजीवाद की समर्थक तथा जनता की दुश्मन मानता था। लेखक के शब्दों में- "आशाराम को कांग्रेस सरकार पर बिल्कुल भरोसा नहीं था। सरकार चाहे नेहरू की हो, चाहे लाल बहादुर की, चाहे मिसेज गाँधी की, कांग्रेस सरकार पूँजीवाद की दलाल और जनता की दुश्मन है। बजट चाहे मोरारजी बनाएं चाहे सुब्रमण्यम। कांग्रेस सरकार का हर बजट जनता को लूटने वाला और पूँजी के बड़े घरानों का मददगार है।"[4]

सन 62 वाले चुनाव में जब बाबूराम को कांग्रेस का टिकट मिला तो आसाराम ने उनके खिलाफ काम किया। आसाराम तथा देशराज एवं समसम मियां ने मिलकर मोटर मैकेनिक्स की यूनियन बनाई। इस यूनियन का उददेश्य महंगाई भत्ता तथा मजदूरों की मजदूरी बढ़ाना था। लेखक के शब्दों में- "मोटर मैकेनिक्स यूनियन ने पहली हड़ताल बाबू गौरी शंकर लाल पांडे एमपी के नेशनल गैरेज में की। महंगाई भत्ता, मजदूरियों में बढ़ती और बोनस के सवाल पर यह हड़ताल शुरू हुई।"[5]

बाबू गौरी शंकर लाल कांग्रेसी एमपी थे और तत्कालीन मुख्यमंत्री कमलापति त्रिपाठी से उनके नजदीकी सम्बन्ध थे। बाबू गौरी शंकर लाल बड़े ही अवसर वादी राजनेता थे। चुनाव में टिकट पाने के लिए वे किसी भी पार्टी के दरवाजे पर खड़े हो सकते थे। पहला और दूसरा चुनाव उन्होंने कांग्रेस के टिकट पर ही जीता था। चरण सिंह के कांग्रेस से अलग होने पर उन्होंने भी कांग्रेस का साथ छोड़ दिया और चरण सिंह की सरकार टूटते ही पुनः कांग्रेस में वापस लौट गए। वहीं दूसरी ओर बाबूराम जी थे जो कांग्रेस पार्टी के प्रति आजीवन कादार बने रहे, किंतु इन दल बदलुओं के सामने राजनीति में वे अपना प्रभाव नहीं जमा पा रहे थे।

"उनकी कादारियाँ कांग्रेस से जकड़ी हुई थी। कांग्रेस से अलग हटकर वह न कुछ सोच सकते थे न समझ सकते थे। कांग्रेस उनके विचारों और उनकी आत्मा और उनकी जिंदगी का ओढ़ना बिछौना थी।"[6]

आजादी के बाद कांग्रेस के भीतर स्वार्थी नेताओं तथा दल बदलुओं का प्रभाव बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा था। कांग्रेस से जुड़े हुए पुराने लोग उपेक्षित हो रहे थे। कांग्रेस की ऐसी दशा पर व्यंग्य करते हुए उपन्यास कार लिखता है– "आजादी के बाद से कांग्रेस में ईमानदार लोगों की खपत यूँ भी कम हो गई थी।"[7]

कांग्रेसी परिवार में जन्म लेने के बावजूद आसाराम कम्युनिस्ट विचारधारा का व्यक्ति बन चुका था और यही केबीए की फाइल के लिए पक्का सबूत बन गया। वैसे भी उस पर तख्ता पलटने का आरोप पहले भी लग चुका था। फौरी तौर पर तो वह देशद्रोही घोषित हो ही चुका था। अंततोगत्वा वह प्रशासन से डरकर कम्युनिस्ट विचारधारा छोड़कर कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ता है। उसके मन में सरकार का भय इस कदर व्याप्त था कि वह स्वयं के स्थापित मूल्यों से विमुख हो गया और यही उसके व्यक्तित्व की त्रासदी भी थी।

भोलू पहलवान का एक चाय खाना था जहाँ आसाराम चाय पीता था। बिल्लो और देशराज दोनों का पालन–पोषण भोलू पहलवान ने ही किया था। बिल्लो उसके बहन की बेटी थी। एक दिन जब भोलू पहलवान की बहन विधवा हो जाती है तो बिल्लो की सारी जिम्मेदारी भोलू पहलवान पर ही आ जाती है। देशराज भोलू पहलवान के मित्र भरत कुमार सिंह का बेटा है। भरत कुमार सिंह और उनकी पत्नी मुनिया ने यह मन्नत मान रखी थी कि जब उसे बेटा होगा तो बूढ़े ताजिए पर फूल की चादर चढ़ायेगी। बेटा पैदा हुआ और वह मुनिया को लेकर चादर चढ़ाने गए तो वहाँ बलवा शुरू हो गया और दोनों ही मारे गए।

"मुनिया ने बूढ़े ताजिये पर मन्नत मान रखी थी कि जो बेटा होगा तो वह फूल की चादर चढ़ावेगी। भरत मुनिया को लेकर चादर चढ़ाने गया। बलवा शुरू हो गया और वह दोनों मियाँ बीबी मारे गए।"[8]

भोलू पहलवान की जिम्मेदारियाँ अब काफी बढ़ चुकी थी क्योंकि उसे बिल्लो के साथ–साथ देशराज की भी परवरिश करनी पड़ी। जिम्मेदारियों के बोझ तले भोलू पहलवान इतना दब गया कि उसने अपनी शादी तक का खयाल नहीं आया। एक ही साथ रहने के कारण बिल्लो और देशराज में बचपन से ही प्यार पनपने लगा था। इसलिए भोलू पहलवान ने दोनों की शादी बचपन में ही तय कर दी थी। लेकिन उनके सामने एक अदद घर की समस्या थी। आखिर विवाह के बाद दोनों किस घर में रहेंगे? बिल्लो बचपन से ही अपने लिए एक घर का सपना पाल रखी थी।

"देश एक लंबे चौड़े घर के सपना देखा करता था। संगमरमर के खम्बों और मेहराबों वाले घर के सपने। घर, जिसके सामने का बाग खुसरु बाग से बड़ा होगा। .....पर बिल्लो हमेशा एक छोटे से घर का सपना देखा करती थी। छोटा सा आंगन जिसमें तीन चार पलंग आ जाए। दो कमरे। एक दालान..... दोनों में सपनों के इसी टकराव में झगड़ा हो जाता और आसाराम को बीच बचाव करवाना पड़ता।"[9]

देशराज के मन में भी अपने घर का सुहाना सपना था। इसलिए बचपन में ही दोनों ने डाकखाने में अपना जमा खाता खुलवा लिया था। उन्होंने घर के लिए जमीन भी देख रखी थी।

"देशराज और बिल्लो ने बचपन ही से अपना एक घर बनवाने का फैसला कर रखा था और बचपन ही से डाकखाने में हाउस फंड का सेविंग बैंक अकाउंट खुल गया था। उन्होंने एक जमीन भी पसंद कर रखी थी। यह जमीन पहलवान के चाय खाने के दूसरे हाथ पर न जाने कब से खाली पड़ी थी। छोटी सी जमीन थी।"[10]

बिल्लो जनता लॉन्ड्री चलाती थी और देशराज एक मोटर मैकेनिक था। दोनों घर के खर्चों से बचे पैसों को इसी जमा खाते में जमा करते थे। शम्सूं मियां देशराज के उस्ताद थे क्योंकि उन्होंने ही देशराज को मैकेनिक का काम सिखाया था। शम्सूं मियां का एक बेटा था जो अपनी बीबी के कहने पर पाकिस्तान चला गया था। उनकी एक बेटी थी जिसका नाम महनाज था। विवाह के कुछ दिनों बाद ही महनाज विधवा हो गई थी। उसकी दो बेटियाँ थी। पति के देहांत के बाद वह अपनी बेटियों को लेकर शम्सूं मियां के पास ही आ गई। शम्सूं मियां को अपने बेटे अब्दुल की बड़ी याद आती और उन्हें लगता कि पाकिस्तान जाकर उनका बेटा बहुत खुश होगा, किंतु यह उनका भ्रम ही था, क्योंकि पाकिस्तान में तो वह एक शरणार्थी बनकर ही रह रहा था। जब कभी उसे हिंदुस्तान की याद आती तब वह हिंदू मुस्लिम दंगों को याद कर रोने लगता। उसके बच्चे पाकिस्तान में पैदा हुए थे, इसलिए उसके मन का दर्द नहीं समझ पा रहे थे। लेखक के शब्दों में- "उसके बच्चे उसका दर्द समझ नहीं पा रहे थे, क्योंकि वह पाकिस्तान में पैदा हुए थे और वही पले-बढ़े थे। उन्हें पता नहीं था कि सावन के बादल केसे होते हैं और कोयल केसे बोलती है और हिन्दू-मुस्लिम दंगे केसे होते हैं।"[11]

शम्सूं मियां की दो बेटियाँ थी महनाज और शहनाज। महनाज की शादी हो चुकी थी जबकि शहनाज भी अब जवान हो गई थी। दुर्भाग्य से महनाज के पति का कुछ ही दिनों बाद इंतकाल हो जाता है। शम्सूं मियाँ महनाज की दूसरी शादी करना चाहते हैं। एक रिश्ता आया भी था लेकिन वह लंबा चौड़ा दहेज माँग रहा था। दहेज में उसने साइकिल, घड़ी और रेडियो मांगी थी। देशराज और बिल्लू दोनों मिलकर दहेज का प्रबंध भी कर लिए थे। देशराज घड़ी और बिल्लू रेडियो देने का इंतजाम कर लिए थे। इसी बीच महनाज के होने वाले पति को मीसा कानून के तहत गिरफ्तार करके जेल में बंद कर दिया गया। मजबूरी में महनाज की शादी जोखन मियां से तय की गई जो की शम्सूं मियां की उम्र के थे। महनाज की दोनों बेटियाँ शम्सूं मियां की तरह जोखन मियां को भी नाना कह कर ही बुलाती थीं। महनाज राजनीति में रुचि लेती थी। इसलिए शादी के बाद वह कांग्रेस में भर्ती हो जाती है। महनाज एक सोशल वर्कर बन गई थी। दिन-रात वह यूथ कांग्रेस की ही बात करती रहती। गौरी शंकर बाबू को यह बात बिल्कुल भी पच नहीं रही थी। महनाज की सक्रियता देखकर उनके सीने पर सांप लोटने लगा था। उन्हें अपनी सीट गंवाने का डर पैदा हो गया था। उन्हें डर था कहीं कटरा मीर बुलाकी का टिकट महनाज को न मिल जाए। महनाज भी पूरे मोहल्ले में घूम-घूम

कर लोगों को कांग्रेस की नीतियाँ समझाती रहती थी। परिवार नियोजन के बारे में भी उसने कटरा मीर बुलाकी मोहल्ले के लोगों को समझाया था। वह नसबंदी के प्रति लोगों में जागरूकता फैलाती थी। उसकी महत्वाकांक्षा दिनों दिन बढ़ती जा रही थी और वह स्वयं को कटरा मीर बुलाकी की इंदिरा गाँधी समझने लगी थी। दिन रात कांग्रेस द्वारा थोपी गई परिवार नियोजन की योजना को आगे बढ़ाने में लगी थी। जनाने मकानों में जाकर औरतों को नसबंदी के फायदे बताती और निरोध का डिब्बा निकालकर औरतों को दिखाती। लेखक के शब्दों में- "महनाज सोशल वरकर हो गई थी। दिन-रात 'यूथ कांग्रेस' करती रहती थी। नसबन्दी के बारे में उसने कई तक़रीरें याद कर ली थीं। जनाने मकानों में जाती और औरतों को नसबन्दी के फायदे बताती। 'निरोध' का डिब्बा बैग से निकालकर औरतों को दिखलाती-हालत यह हो गई थी कि औरतें उसकी सूरत से शर्माने लगी थीं- बिल्लो को तो उसने पहचानना ही छोड़ दिया था। उसकी आँखों पर मुस्तकिल धूप का रंगीन चश्मा चढ़ा रहता। कटरा मीर बुलाकी में निकलती तो कटरेवालों से सलाम की उम्मीद करती। मुहल्ले के बच्चे उसे देखते ही 'निरोध-निरोध' चिल्लाने लगते। एक तरह से उसका नाम ही 'निरोध' पड़ गया था।"[12]

देश में मजदूर आंदोलन पूरी गति से चल रहा था। बाबू गौरी शंकर केंद्र में मंत्री बनना चाहते थे, जिसके लिए उन्हें मजदूर आंदोलन को कम्युनिस्टों के हाथ से निकालना था। कांग्रेस हाई कमान का फरमान भी यही था। इसकी शुरुआत वे अपने मोहल्ले से ही करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने देशराज और शम्सूं मियाँ को डिनर पर आमंत्रित किया। वह एक 'नेहरू मजदूर सभा' का गठन करना चाहते थे जिसमें उन्होंने शम्सूं मियां को प्रेसिडेंट और देशराज को सेक्रेटरी बनाने का लालच दिया। इस पद के लिए हर महीने पार्टी द्वारा बोनस दिया जाता था। बोनस की रकम सुनकर शम्सूं मियाँ खुश हो गए और बाबू गौरी शंकर की बात से सहमत हो गए।

"जेब खर्च की बात पहली घटा की तरह झूम के उठी और उनके सपनों और जरूरत की जमीन पर टूट कर बरसी और वह शराबोर हो गए और उनके नथने पेट भर खाने की खुशबू से बस गए....."[13]

देशराज बाबू गौरी शंकर की चालाकियों से परिचित था और वह उनके बहकावे में नहीं आया। बाबू गौरी शंकर की सारी योजना गड़बड़ा गई क्योंकि देशराज उनकी योजना से बिल्कुल भी सहमत न था। इस योजना के पीछे बाबू गौरी शंकर का इरादा कुछ और ही था। दरअसल वह चुपके से ट्रेड यूनियन का लीडर बनकर अपनी राजनीति चमकाना चाहते थे जिससे उन्हें केंद्रीय सरकार में किसी मंत्री का पद आसानी से मिल जाये।

संदर्भ संकेत :

1. राही मासूम रज़ा, कटरा बी आर्ज़ू, पृष्ठ-11, चौथा संस्करण-2018, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. वही, पृष्ठ-11
3. वही, पृष्ठ-12
4. वही, पृष्ठ-15
5. वही, पृष्ठ-16
6. वही, पृष्ठ-16

7. वही, पृष्ठ–16
8. वही, पृष्ठ–पृष्ठ–28
9. वही, पृष्ठ–19
10. वही, पृष्ठ–29
11. वही, पृष्ठ–45
12. वही, पृष्ठ–107
13. वही, पृष्ठ–61

भारत में परमाणु ऊर्जा और प्रौद्योगिकी

डॉ० विरेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
रक्षा एवं स्त्रतेजिक अध्ययन विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

सारांश

सन 1944 ई0 में डॉ. भाभा ने व्यक्तिगत रूप से उधोगपति सर दौराब जी टाटा ट्रस्ट को एक पत्र लिखा था कि, भारत में विज्ञान के विकास के लिए वित्तीय सहयोग की आवश्यकता हैं। दौराब जी टाटा ने डॉ. भाभा के इस सुझाव व अनुरोध को स्वीकार कर लिया। टाटा ट्रस्ट के अनुदान से बम्बई में जून 1945 में द टाटा इन्स्टीटयूट ऑफ फण्डामेंटल रिसर्च की स्थापना की गयी, जिसका उददेश्य प्रमुख रूप से कौस्मिक किरणों और सैद्धान्तिक भौतिकी से संबंधित आधारभूत अनुसंधान करना था। स्वतंत्र भारत में 10 अगस्त, 1948 ई0 को परमाणु उर्जा आयोग गठित किया गया। परमाणु ऊर्जा विभाग के अधीन 7 अनुसंधान केन्द्र, 3 औद्योगिक संगठन, 5 सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम, 3 सेवा संगठन, 11 अनुदान-सहायता संस्थान और 2 बोर्ड शामिल हैं। सन 2016 तक, भारत ने 14 देशों के साथ असैन्य परमाणु समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं। भारत एकमात्र ऐसा परमाणु हथियार वाला देश है जो अप्रसार संधि (एनपीटी) का पक्ष नहीं है, लेकिन फिर भी उसे बाकी दुनिया के साथ परमाणु वाणिज्य करने की अनुमति है।

प्रस्तावना

डॉ. होमी जहॉगीर भाभा 1909-1966 एक दूरदर्शी तथा गहन निष्ठा वाले महान वैज्ञानिक थे, उन्होंने भारत की स्वतंत्रता से पूर्व ही यह अनुमान लगा लिया था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत को परमाण ु ऊर्जा के लिए कठिन समस्या का सामना करना पड़ेगा इसलिए परमाणु ऊर्जा के विकास हेतु प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया था। सन 1944 ई0 में डॉ. भाभा ने व्यक्तिगत रूप से उस समय के उधोगपति सर दौराब जी टाटा ट्रस्ट को एक पत्र लिखा था कि, भारत में विज्ञान के विकास के लिए उपयुक्त स्थिति बनाने तथा वित्तीय समर्थन देने की आवश्यकता हैं। उन्होंने आगे कहा था कि, अब से कुछ दशकों के बाद जब परमाणु ऊर्जा को बिजली के उत्पादन में सफलता से प्रयोग किया जाने लगेगा, तब भारत को विशेषज्ञ के लिए विदेश का मुँह नहीं देखना पड़ेगा वरन वे अपने देश में ही तत्काल उपलब्ध होगें। 1 दौराब जी टाटा ने डॉ. भाभा के इस सुझाव व अनुरोध को स्वीकार कर लिया। टाटा ट्रस्ट के अनुदान से बम्बई में जून 1945 में द टाटा इन्स्टीटयूट ऑफ फण्डामेंटल रिसर्च की स्थापना की गयी, जिसका उददे्श्य प्रमुख रूप से कौस्मिक किरणों और सैद्धान्तिक भौतिकी से संबंधित आधारभूत अनुसंधान करना था।

परमाणु ऊर्जा अधिनियम – भारत में परमाणु ऊर्जा के विकास और उस पर नियन्त्रण की व्यवस्था तथा इससे संबंधित उददे्श्यों की पूर्ति हेतु परमाणु ऊर्जा विधेयक संविधान सभा में प्रस्तुत किया गया, जिसे बहुत सार्थक चर्चा के बाद पारित किया गया। परमाणु ऊर्जा अधिनियम–1948 के अनुसार, परमाणु ऊर्जा पर नियन्त्रण केवल केन्द्रीय सरकार को दिया गया और भारत में परमाणु कार्यक्रम प्रारम्भ करने के लिए एक विधायी ढाँचा उपलब्ध कराया गया।

परमाणु ऊर्जा आयोग – भारत में 10 अगस्त, 1948 ई0 को परमाणु ऊर्जा आयोग गठित किया गया, और डॉ. होमी जहाँगीर भाभा को इस आयोग का प्रथम अध्यक्ष बनाया गया। भारत सरकार द्वारा पारित एक प्रस्ताव के बाद 01 मार्च, 1954 को परमाणु ऊर्जा आयोग को सम्पूर्ण अधिशासी और वित्तीय शक्तियाँ देकर परमाण ु ऊर्जा आयोग का पुनर्गठन किया गया 2 और आयोग को निम्न कार्य सौपें गये –

1. प्रधानमंत्री की अनुमति और विचारार्थ परमाणु ऊर्जा विभाग की नीति तैयार करना।
2. प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए विभाग का बजट तैयार करना और इसे सरकार से स्वीकृत कराना।
3. परमाणु ऊर्जा से संबंधित सभी मामलों में सरकार की नीतियों को लागू करना।
4. देज़ में परमाणु विज्ञान में अनुसंधान को बढ़ावा देना।

परमाणु ऊर्जा विभाग – माननीय राष्ट्रपति के आदेश के माध्यम से 03 अगस्त, 1954 को परमाणु ऊर्जा विभाग की स्थापना की गई, जो प्रधानमंत्री के प्रत्यक्ष प्रभार में रहेगा। जिसका मुख्यालय बम्बई में स्थापित किया गया। परमाणु ऊर्जा आयोग – 1948 के तहत ही केन्द्र सरकार परमाण ु ऊर्जा से संबंधित सभी कार्यो को सम्पन्न करेंगी। विभाग को परमाणु ऊर्जा प्रौद्योगिकी के विकास का कार्य दिया गया जिसमें यूरेनियम संसाधनों और परमाणु खनिजों की खोज, पहचान और प्रसंस्करण, परमाणु ईधन का निर्माण, भारी पानी का उत्पादन, परमाणु ऊर्जा संयंत्रों का निर्माण और संचालन, परमाणु ईधन पुर्नसंसाधन और अपशिष्ट प्रबन्धन, फास्ट रिएक्टर और "यूजन प्रौद्योगिकी, त्वरक व लेजर प्रौद्योगिकी, उन्नत इलेक्ट्रॉनिक्स और इंस्ट्रूमेंटेशन, जैविक विज्ञान, स्वास्थ्य विभाग, खाद्य और कृषि, उद्योग और पर्यावरण के आइसोटोप और विकिरण प्रौद्योगिकियों के लिए उन्नत अनुसंधान और विकास शामिल हैं। परमाणु ऊर्जा विभाग के अधीन 7 अनुसंधान केन्द्र, 3 औद्योगिक संगठन, 5 सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम, 3 सेवा संगठन, 11 अनुदान–सहायता संस्थान और 2 बोर्ड शामिल हैं।

भारत की परमाणु ऊर्जा क्षमता– भारत की नाभिकीय ऊर्जा क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। वर्ष 2022–23 में यह बढ़कर 6.8 गीगावॉट हो गई है। परमाणु ऊर्जा भारत के लिए विद्युत का पांचवा सबसे बड़ा स्रोत है। जो देश में कुल विद्युत उत्पादन में लगभग तीन प्रतिशत है। भारत में वर्तमान में सात विद्युत संयंत्रों में 22 से अधिक नाभिकीय रिएक्टर हैं, जो 6780 मेगावॉट नाभिकीय ऊर्जा का उत्पादन करते हैं। इसके अलावा जनवरी 2021 में एक रिएक्टर काकरापार के ए पी पी–3 नाभिकीय ऊर्जा परियोजना को भी ग्रिड से जोड़ दिया

गया। दबावयुक्त भारी जल रिएक्टर पी एच डब्बलू आर एस की संख्या 18 है और 04 हल्के जल रिएक्टर एल डब्बलू आर एस हैं। के ए पी पी – 3 भारत की पहली 700 मेगावॉट यूनिट है और पी एच डब्बलू आर का सबसे बड़ा स्वदेशी रूप से विकसित संस्करण हैं।[3]

भारत में परमाणु ऊर्जा संयंत्र

1. कलपक्कम – यह चेन्नई से 80 किलोमीटर दक्षिण में कोरोमंडल तट पर स्थित है। यह एम ए पी एस और आई जी सी ए आर के लिए जाना जाता है। भारत का पहला पूर्णत: स्वदेश निर्मित परमाणु ऊर्जा स्टेशन है, इसमें दो स्वदेश निर्मित सी ए एन डी यू प्रकार के पी एच डब्बलू आर है जिन्हें एम ए पी एस–1 और एम ए पी एस–2 कहा जाता हैं।

2. केगा – यह परमाणु ऊर्जा स्टेशन कर्नाटक के उत्तर में कन्नड़ जिले में स्थित हैं। इसकी चार इकाइयां है जिनमें से एक अभी भी निर्माणाधीन हैं। चारों में से सभी 220 मेगावॉट के छोटे आकार के सी ए एन डी यू संयंत्र हैं।

3. काकरापार – गुजरात के तापी के तट पर सूरत के पास स्थित हैं। इसमें दो 220 मेगावॉट पी एच डब्बलू आर शामिल है। यह क्षेत्र में भारी जल उत्पादन का संयंत्र भी है। जनवरी 2003 में सी ए एन डी यू अक्नर्स ग्रुप ने के ए पी एस–1 को अपनी श्रेणी में विश्व में सर्वश्रेष्ठ पी एच डब्बलू आर के रूप में प्रतिष्ठित किया।

4. तारापुर – यह महाराष्ट्र में मुम्बई के उत्तर में स्थित हैं। भारत में यह पहला परमाणु रिएक्टर हैं। 1400 मेगावॉट की कुल क्षमता के साथ तारापुर देश का पहला व सबसे बड़ा परमाणु ऊर्जा स्टेशन है, यह पहला रिएक्टर जो बी डब्बलू आर था, जो एशिया में अपनी तरह का पहला रिएक्टर था।

5. रावतभाटा – कोटा से लगभग 65 किलोमीटर दूर चम्बल नदी के तट पर राणाप्रताप सागर से मात्र 03 किलोमीटर दूर स्थित है। आर ए पी एस, सी ए एन डी यू प्रकार का पहला दबावयुक्त जल रिएक्टर हैं।

6. नरौरा – उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले में गंगा नदी के तट पर स्थित हैं। इसके जुड़वा रिएक्टर कनाड़ाई प्रकार का भारतीय संस्करण है। जो ईधन के रूप में प्राकृतिक यूरेनियम और मॉडरेटर सहप्राथमिक शीतलक के रूप में भारी पानी पर काम करता हैं।

7. कुडनकुलम – यह तमिलनाडू तिरूनेववेली जिले में स्थित हैं। यह रूसी सहायता से निर्माणाधीन हैं। यह वी वी ई आर –1000 मॉडल के दो 1000 मेगावॉट रिएक्टरों का निर्माण किया जा रहा है। दोनों जल–ठण्डा जल संचालित विद्युत रिएक्टर है। यह निर्माण कार्य पूरा होने पर भारत का सबसे बड़ा परमाणु ऊर्जा उत्पादन परिसर बन जायेंगा।

प्रस्तावित परमाणु ऊर्जा संयंत्र

छवमिथि विरडी – गुजरात में अलंग बन्दरगाह के पास एक प्रस्तावित नई परमाणु ऊर्जा केन्द्र अमेरिका की सहायता बनाया जायेंगा।

कोव्वाडा – आन्ध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम जिले के रणस्थलम मण्डल में 2000 मेगावॉट का एक परमाणु संयंत्र प्रस्तावित है। इसकी स्थापना भी अमेरिका की सहायता से की जायेंगी। किन्तु पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने इसे पर्यावरण मंजूरी देने से इनकार कर दिया है।

हरीपुर – पश्चिमी बंगाल के पूर्वी मेदनीपुर जिले का एक तटीय गाँव है। इस परमाणु संयंत्र की स्थापना रूस की सहायता से की जायेंगी। इसकी प्रस्तावित क्षमता 10000 मेगावॉट है। किन्तु वहाँ के लोग इस संयंत्र के विरोध में प्रदर्शन कर रहें हैं।

जैतपुर – यह महाराष्ट्र में स्थित है। फ्रान्स के अरेवा द्वारा डिजायन और विकसित किये गये 06 यूरोपीय दबावयुक्त रिएक्टरों का निर्माण प्रस्तावित है। प्रत्येक रिएक्टर 1650 मेगावॉट का तथा कुल क्षमता 9900 मेगावॉट होगी। यह जोन–पांच भूकम्प के अन्तर्गत आता हैं।[4]

प्रारंभिक अनुसंधान रिएक्टर

15 मार्च 1955 को परमाणु ऊर्जा आयोग की बैठक में ट्रॉम्बे में एक छोटा परमाणु रिएक्टर बनाने का निर्णय लिया गया था। रिएक्टर का उपयोग भविष्य के रिएक्टरों के संचालन के लिए कर्मियों को प्रशिक्षित करने और अनुसंधान के लिए किया जाएगा, जिसमें परमाणु भौतिकी में प्रयोग, विकिरण के प्रभावों का अध्ययन और चिकित्सा, कृषि और औद्योगिक अनुसंधान के लिए आइसोटोप का उत्पादन शामिल है।[5] 1955 में, यूनाइटेड किंगडम परमाणु ऊर्जा प्राधिकरण और भारतीय परमाणु ऊर्जा विभाग ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किए, जिसके तहत ब्रिटेन भारत द्वारा डिजाइन किए जाने वाले स्विमिंग पूल रिएक्टर के लिए यूरेनियम ईंधन तत्वों की आपूर्ति करेगा। समझौते ने "परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग के प्रचार और विकास में विभाग और प्राधिकरण के बीच घनिष्ठ सहयोग और पारस्परिक सहायता" को सुनिश्चित किया। मई 1956 में, ट्रॉम्बे में अनुसंधान रिएक्टरों के लिए एक यूरेनियम धातु संयंत्र और ईंधन तत्व निर्माण सुविधा का निर्माण शुरू हुआ, जनवरी 1959 में यूरेनियम संयंत्र चालू हुआ, इसके बाद फरवरी 1960 में ईंधन तत्व सुविधा शुरू हुई।[6] एईईटी (भाभा की मृत्यु के बाद 1967 में इसका नाम बदलकर भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र कर दिया गया) भारतीय परमाणु अनुसंधान के बढ़ते दायरे के साथ, 1948 के परमाणु ऊर्जा अधिनियम को 1961 में संशोधित किया गया और इसे नए परमाणु ऊर्जा अधिनियम के रूप में पारित किया गया, जो सितंबर 1962 में लागू हुआ।[7]

भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र में निम्न अनुसन्धान रिएक्टर हैं जो इस प्रकार हैं

1. अप्सरा- भारत और एशिया का पहला परमाणु रिएक्टर, अप्सरा 4 अगस्त 1956 को दोपहर 3:45 बजे क्रिटिकलिटी पर पहुंच गया और इसका उद्घाटन 20 जनवरी 1957 को प्रधानमंत्री नेहरू ने किया। यह एक तरण ताल (स्विमिंग पूल) किस्म का रिएक्टर है। इसमें ईंधन (फ्यूल) के रूप में यूरेनियम प्रयोग किया जाता है। इस प्रतिष्ठान का पूरा कार्य भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा किया गया। इसकी क्षमता 400 किलोवाट है।

2. साइरस (कनाडा, इण्डिया रिएक्टर यूटिलिटी सर्विस) भारत का दूसरा परमाणु रिएक्टर 10 जुलाई 1960 को कनाडा के सहयोग से साइरस नामक स्थान पर स्थापित किया गया जिसने पूर्ण क्षमता अक्टूबर में प्राप्त की। इस प्रतिष्ठान की क्षमता 40,000 किलोवाट है।[8] यह संसार में अपने किस्म के सबसे बड़े रिएक्टरों में से एक है। इसमें यूरेनियम और भारी पानी का उपयोग होता है।

3. जरलीना - तीसरा परमाणु रिएक्टर ट्राम्बे में ही 14 जनवरी 1961 को जरलीना नामक स्थान पर स्थापित किया गया, जो अल्प ऊर्जा वाला (100 मेगावाट क्षमता) रिएक्टर है। यह शून्य ऊर्जा का प्रायोगिक रिएक्टर है।

4. पूर्णिमा 1 - अप्सरा और जरलीना की भाँति चौथे परमाणु रिएक्टर की स्थापना ट्राम्बे के भारतीय वैज्ञानिकों ने 1972 में की। इसे जीरो ऐनर्जी कास्ट रिएक्टर कहते हैं। पूर्णिमा-II 10 मई 1984 को तथा पूर्णिमा-III मार्च 1990 में क्रिटिकल हुआ ।

5. ध्रुव-बार्क (भाभा एटोमिक रिसर्च सेन्टर) के वैज्ञानिकों तथा अभियन्ताओं ने भारत में नाभिकीय कार्यक्रमों के जनक डॉ० होमी जहाँगीर भाभा के जन्म दिन के अवसर पर 30 अक्टूबर 1975 को एक नई अनुसन्धान भट्टी का निर्माण कार्य आरम्भ किया जिसका नाम रखा आर-5, क्योंकि यह भारत की 5वीं अनुसन्धान परियोजना थी। 8 अगस्त 1983 को पहली बार इस भट्टी को चालू किया गया और जनवरी 1988 से यह पूर्ण क्षमता पर कार्य कर रही है। भारी जल द्वारा शीतल की जाने वाली 100 मेगावाट की यह तापीय अनुसन्धान भट्टी- ध्रुव विश्व की उच्च प्रवाह उत्पन्न करने वाली भट्टियों में से एक हैं। ध्रुव में प्रकृति में मिलने वाली धात्विक यूरेनियम (यू 235) ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इससे अत्यधिक गर्म (2000 केल्विन) और ठण्डा (115 केल्विन) न्यूट्रान प्रवाह प्राप्त किया जा सकता है। यह अपने ढंग का विश्व का सबसे बड़ा रिऐक्टर है।

परमाणु समझौते - सन 2016 तक, भारत ने 14 देशों के साथ असैन्य परमाणु समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं : अर्जेंटीना, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, चेक गणराज्य, फ्रांस, जापान, कजाकिस्तान, मंगोलिया, नामीबिया, रूस, दक्षिण कोरिया, यूनाइटेड किंगडम, संयुक्त राज्य अमेरिका और वियतनाम।[9] 48 देशों के एनएसजी ने 6 सितंबर 2008 को भारत को अन्य देशों से असैन्य परमाणु तकनीक और ईंधन तक पहुंच की छूट दी। भारत एकमात्र ऐसा ज्ञात परमाणु हथियार वाला देश है जो अप्रसार संधि (एनपीटी)का पक्ष नहीं है, लेकिन फिर भी उसे बाकी दुनिया के साथ परमाणु वाणिज्य करने की अनुमति है। 10 कजाकिस्तान भारत को यूरेनियम का सबसे बड़ा आपूर्तिकर्ता है, जिसने 2015-19 के दौरान 5,000 टन यूरेनियम उपलब्ध कराया।

निष्कर्ष

भारत ने परमाणु ऊर्जा और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति की है, जिससे उसकी ऊर्जा सुरक्षा और वैज्ञानिक क्षमताओं को महत्वपूर्ण बल मिला है। देश ने 1940 के दशक के अंत में परमाणु विज्ञान के क्षेत्र में कदम रखा और तब से लगातार इस क्षेत्र में अपनी क्षमता का विस्तार किया है। भारतीय परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम की नींव डॉ. होमी जहाँगीर भाभा के द्वारा रखी गई थी, जिसने कालान्तर में भारत को परमाणु शक्ति सम्पन्न देशों की सूची में शामिल किया। भारत ने अपनी परमाणु नीति में 'नो फस्ट यूज' का सिद्धांत अपनाया है, जिससे इसका उददे्श्य शांति और सुरक्षा की दिशा में काम करना है। इसके साथ ही, भारत ने एक त्रिस्तरीय परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम विकसित किया है, जिसमें प्राकृतिक यूरेनियम, थोरियम और प्लूटोनियम के उपयोग से ऊर्जा उत्पादन के लिए एक विस्तृत योजना बनाई गई है। भारत ने अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के तहत परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास को भी बढ़ावा दिया है, जिसमें फ्रांस, रूस और अमेरिका जैसे विभिन्न देशों के साथ परमाणु समझौतें किये हैं। परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में भारत की प्रगति के बावजूद, इसके सामने कई चुनौतियाँ भी हैं। परमाणु ऊर्जा संयंत्रों के निर्माण और संचालन में उच्च लागत, पर्यावरण ीय चिंताओं और सुरक्षा मुद्दों का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, परमाणु अपशिष्ट प्रबंधन और उसकी सुरक्षित निपटान की समस्याएँ भी महत्वपूर्ण हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए भारत को नई तकनीकों और नीतियों का विकास करना होगा। भारत ने परमाणु ऊर्जा और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं, लेकिन भविष्य में इसके प्रभावी और सुरक्षित उपयोग के लिए निरंतर अनुसंधान और विकास की आवश्यकता होगी। भारत की परमाणु नीति और कार्यक्रमों का उददे्श्य न केवल देश की ऊर्जा आवश्यकता को पूरा करना है, बल्कि वैश्विक स्तर पर शांति और सुरक्षा की दिशा में भी योगदान देना है। इस दिशा में सतत् प्रयास और तकनीकी नवाचार भारत को परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में एक प्रमुख शक्ति बना सकते हैं।

सन्दर्भ

1. सिंह डॉ बी.पी. 'राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा' चन्द्र प्रकाश एण्ड ब्रादर्स, हापुड़ पेज - 169
2. वही पेज - 170
3. परमाणु उर्जा आयोग : वार्षिक रिपोर्ट 2022-23
4. परमाणु उर्जा नियामक परिषद : ई : न्यूजलेटर
5. भारत का पहला परमाणु रिएक्टर - विज्ञान नोटस और समाचार, अगस्त 1956
6. द टाइम्स ऑफ इंडिया डायरेक्टरी एण्ड ईयर बुक, इनक्लूडिंग हूज हू : 1978
7. राज्य सभा वाद-विवाद 1961 परमाणु उर्जा अधिनियम में संशोधन का प्रस्ताव 13 दिसम्बर 1961
8. श्रीवास्तव व्योम शंकर भारत का परमाणु परीक्षण तथा उसकी परमाणु नीति नार्दर्न बुक सेन्टर नई दिल्ली 1992 पेज 51

9. भारत में परमाणु उर्जा वर्ल्ड-न्यूक्लीयर ओआरजी 04 मई 2017

10. एएफपी : भारत परमाणु समझौतें से उत्साहित 01 अक्टूबर 2008

"आजादी के अंजोर" मूलतः हाशिए की आवाज है

डॉ.संतोष पटेल

सार संक्षेप

भोजपुरी साहित्य में हाशिए के स्वर उसमें शामिल कवियों की रचनाओं में दर्ज हैं। आजादी के अंजोर, अरुण भोजपुरी की क्रांतिकारी रचना संग्रह है। इस संग्रह में संकलित रचनाओं में दलित, वंचित, दमित व स्त्रियों का आवाज दर्ज है।

मुख्य शब्दः आजादी, अंजोर, रैदास, बईमानवा आदि।

भोजपुरी कविता में आक्रोश दलित अस्मिता का मुख्य तत्व है। यह एक परिवर्तनकारी चिंतन है। हिंदी दलित कविता के सशक्त हस्ताक्षर ओम प्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है 'दलित कविता का आक्रोश उसकी पहचान बना। दलित कविता में आक्रोश उस भोगी हुई वेदना अपमान, और यातना के विरोध में है, जिसे दलित हजारों साल की संघर्ष- यात्रा में वहन करता है।'[1]

भोजपुरी काव्य संग्रह 'आजादी के अंजोर' भोजपुरी के ऐसे कवि की कृति है जो इस काव्य संग्रह के मुख्यपृष्ठ पर इस बात का दावा करता है कि वह संत शिरोमणि रविदास के वंश वृक्ष का एक हिस्सा है।

काव्य संग्रह के मुख्य पृष्ठ पर अरुण भोजपुरी ने संत कवि के वंश परंपरा पर प्रकाश डाला है। वह कहते हैं कि गुरु रैदास के बाद काशीदास, रामखेलावन दास, रामलखन दास, बिरदा दास, रामसिगासन, रामबसावन फिर स्वयं अरुण भोजपुरी। अरुण भोजपुरी यानी रैदास का आठवां पीढ़ी है। इसमें कितनी सच्चाई है यह अब भी गहन शोध की मांग करता है।

अरुण भोजपुरी का जन्म का जन्म 12 दिसम्बर, 196 को बक्सर जिला के सिकठी गाँव में हुआ था। उनके पिता श्री रामबसावन दास पटना तारघर में सहायक मुख्य अधीक्षक थे। अरुण शिवनारायणी सम्प्रदाय के अनुयायी थे जैसा कि एक और दलित कवि हरिहर प्रसाद किसलय भी शिव नारायण ी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इस क्षेत्र के अधिकतर दलित शिव नारायणी सम्प्रदाय से जुड़े थे। इस सम्प्रदाय के भक्त कवियों का भोजपुरी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है।

अरुण ने महर्षि विश्वामित्र महाविद्यालय, बक्सर से हिंदी में स्नातकोत्तर किया। अरुण भोजपुरी को 'भैया जी' के नाम से पुकारते थे। वे अपने समय के एक प्रख्यात क्रांतिकारी कवि, गीतकार, नाटककार थे। वे 'तरई' नामक भोजपुरी पत्रिका का संपादन भी किया करते थे।

अखिल भारतीय भोजपुरी साहित्य सम्मेलन से उनका जुड़ाव था और भोजपुरी में प्रकाशित रचनाओं में दियरी के जोत (1983), भोजपुरी नाटक- संत रैदास (1984), आनंद राशि, गुरु गोविंद सिंह (कविता) तीन फेरवा संग्रह (एकांकी) के अलावा कुछ अप्रकाशित रचनाएं भी शामिल हैं जैसे- सर्वहारा के शिव (प्रबंध काव्य) धारावाहिक रूप में पनघट नामक पत्रिका में प्रकाशित होता रहा। मरघट्टी के कुकुर (कहानी संकलन) प्रलय (उपन्यास) मानव और पत्थर एवं जेल के जंजीर से हिंदी काव्य संग्रह आदि अप्रकाशित कृतियां हैं।

आजादी के अंजोर में संकलित कविताओं का विश्लेषण

आजादी के अंजोर काव्यकृति का प्रकाशन फगुनी पुर्णिमा 1992 में हुआ है। कवि अरुण भोजपुरी इस संग्रह के समपर्ण में ही क्रांतिकारी मोड (उवकम) में आ गए है-

"झोपड़ी में ना दिहल
जे जे आजादी के अंजोर
ओह पुरुखन के पितृयज्ञ करीं
हे अरूण ले आव भोर।"

कवि दलित समाज समाज में व्याप्त ब्राह्मणवाद की मजबूत बुनियाद की चूल हिलाने के लिए चोट पर चोट करते हुए लिखता है-

"ना बुझलें अनपढ़ महंत के बानी बुड़वलें
अपने चलें जहाज कार से साइकिल इन्हें थमवलें
संपति रैदास गुरु के पारा ज्ञान ठोकरा के
अपना लिहलें अफसर नेता, ब्राह्मणवाद धंधा के।"

ब्राहमणवाद की नींव सदियों साल पुरानी है। कवि दलित समाज में पैठे इस वाद से अपने लोगों को आगाह करता है। ब्राहमणवाद का अस्तित्व इसलिए बरकरार है कि वह अपने को समयानुसार बदलता है और समाज पर राज करता है कवि इस बात को भली भांति समझता है वह उसका मुखर विरोध करता है और सबसे पहले समाज के मौजूद जातीय भेद का प्रतिकार करता है क्योंकि यही भेद ब्राहमणवाद का संपोषण करता है। उसके आक्रोश को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है-

"सउंसे बयार सहि के अबो खाड़ हई हम
कुछ लोग कहेला अटल पहाड़ हई हम
हक माँग के गुनाह कवन कर देली हजूर
कइली रिपोर्ट रउरा बड़ा राड़ हई हम ।"

(गजल, आजादी के अंजोर से उधृत)

'आधुनिक भोजपुरी काव्य में दलित चेतना : एक अनुशीलन' में संजय कुमार लिखते हैं कि भोजपुरी दलित कविता के वर्तमान समय के सब सामान्य प्रवृतियन के साथे कुछ अतिरिक्त दलित कविता भाव के

खास प्रवृति भी बाड़ी जह, जवना में परम्परा आ रूढ़ के प्रति विरोध, वर्ण व्यवस्था आ जाति व्यवस्था के विरोध, प्रतिक्रांति के आह्वान, नारी–उत्पीड़न के प्रति आक्रोश आ नारी अस्मिता, मानववाद के हिमायत, आ मानवता के चित्रण, हिन्दू धर्म आ संस्कृति के विरोध, कटु राजनीति आ व्यवस्था के विरोध, दलित आदिवासी जनजीवन के चित्रण, अपमानित पीड़ा के चित्रण, सांस्कृतिक विद्रोह आ इतिहास बोध आदि की प्रमुखता के साथे चित्रित भइल बा।'[2]

उपरोक्त अवधारणा से स्प्ष्ट है कि भोजपुरी काव्य में दलित चेतना के कवि परम्परा और रूढ़ का ही विरोध करता है बल्कि वह अपने सोये हुए समाज को जाने का भरसक प्रयत्न करता हैं।

'रे बेईमनवाश गीत में कवि बहुजन को मनुवादी फ्रांस से बाहर निकालने के लिए कुछ कड़े शब्दों का प्रयोग करता है। वंचित दलित समाज ब्राह्मणवादी फांस में ऐसा उलझा है कि धर्म कर्म के चक्कर में अपने साथ हो रहे शोषण के प्रति भी उदासीन है। उसे समाज के सवर्णवादी व्यवहार से कोई शिकायत नहीं परंतु अरुण अपने समाज को श्रे बेईमानवा' कहके जगाने का प्रयास कर रहे हैं–

'करम के ढोल मुसरवे बजवलीं
कर्म का दो फुटल रे बेईमनवा।

मकरा के जाल लागे भाग भगवनवा
सपन सब लूटल रे बेईमनवा।

जाग सर्वहारा शोषित अर्जक सुजनवा
काहे के अबो सुतल रे बेईमनवा।

इस कविता में सर्वहारा, शोषित अर्जक आदि शब्द दरअसल दलित बहुजन केलिए प्रयुक्त हुआ है। इस कविता में 'अर्जक' शब्द आया है कि इसकी चर्चा आवश्यक है कि अर्जक संघ की स्थापना 1 जून 1968 में महामना रामस्वरूप वर्मा ने की थी और जगदेव प्रसाद के साथ ब्राह्मणवाद, भाग्यवाद का प्रतिकार किया।

अर्जक संघ मानववादी संस्कृति का विकास करने का काम करता है। इसका मकसद मानव में समता का विकास करना, ऊंच–नीच के भेदभाव को दूर करना और सब की उन्नति के लिए काम करना है।

'रे बेईमनवाश कविता में अरुण भाग– भगवान का विरोध करते हैं और विज्ञान पर जोर देते लिखते हैं–
साँच इतिहास भूगोल विगेयनवा
फरकली जे कुटल रे बेईमनवा।

प्रो राजेंद्र प्रसाद सिंह लिखते हैं कि 'अर्जक संघ संस्थापक के रामस्वरूप वर्मा पुनर्जन्म, भाग्यवाद, जात पात, ऊंच नीच का भेदभाव और चमत्कार का भेदभाव और चमत्कार को ब्राह्मणवाद के पंचांग कहते हैं।'

अरुण हिंदी हिंदू धर्म में देवी देवता के अवतारवाद से पूरे दलित समाज को सचेत करते हैं। वे 'विश्वकर्मा जी ओरहन' नामक कविता में विश्वकर्मा, सरस्वती सहित अनेक देवी–देवताओं की सच्चाई उजागर करते हैं–

हमनी के पूजली विश्वकर्मा
रूस अमेरिका चान चढ़ल।
उल्टा वर दे दिलह देवता
अइसन तोहरा भांग चढ़ल।

दादा परदादा अठराजा ले
पूजल अइली हमनी के।
परगट होके तनी बतइत,
कवन कमी कइली हमनी के।
(आजादी के अंजोर)

बाबा साहब ने ब्राह्मणों की सिद्धान्तहीनता और स्वार्थ परायणता का चित्र खींचते लिखा है– ब्राह्मण प्रेम और शांति के देवता विष्णु का पुजारी है, प्रलय और संहार के देवता शिव का पुजारी है, करुणा के उपदेशक परम कारुणिक भगवान बुद्ध का भी पुजारी हो जाता है, जीव दया प्रचारक तीर्थंकर महावीर का भी पुजारी बन जाता है, रक्त की प्यासी प्रतिदिन पशु बलि चाहने वाली काली देवी का भी पुजारी है क्षत्रिय अवतार राम का भी पुजारी है और क्षत्रिय वंश संहारी परशुराम का भी पुजारी है और उस पीर का भी पुजारी बन जाता है जो ब्रह्मा विष्णु महेश को ईश्वर अल्लाह का साझीदार नहीं मानता इत्यादि।

इतने विपरीत गुण रखने वाले देव देवियों का पुजारी बनने वाले के लिए क्या कहा जा सकता है? सिवाय इसके कि वह स्वार्थनिष्ठ, धर्म, व्यव्सायी और भोगेश्वर्य प्रशस्त प्राणी है, इसके सिवा उसका न कोई सिद्धांत है न किसी पर विश्वास।'[3]

इन्हीं ब्राह्मणों के निर्मित बेसिर पैर के हिंदू धर्म के दलित अंधभक्त है जिस धर्म में छुआछूत और ऊंच –नीच, जाति भेद, वर्ण भेद का जबरदस्त समर्थन और कठोर आदेश है।

बाबा साहब श्सामाजिक गतिशीलताश शब्द के लिए एक शब्द उपयोग करते थे सोशल इंडोस्मोसिस (Social Endosmosis)।

सामाजिक गतिशीलता के संबंध में वे कहते हैं कि सामाजिक गतिशीलता जिससे समाज के सभी लोगों के बीच विचारों का, ज्ञान का, मूल्यों का, आदान–प्रदान सहजता से बिना किसी बाधा के हो। यह आर्थिक हो, सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक। यह आदान प्रदान केवल व्यक्ति के बीच ही नहीं तो समाज के वर्गों के बीच बिना किसी रोक टोक के हो।'

डॉ० अम्बेडकर के अनुसार सामाजिक गतिशीलता का दूसरा नाम बंधुता है और यही जनतंत्र भी है। भ्रातृत्व की भावना का विकास तभी संभव है जब समाज में गतिशीलता रहे।

आजादी के अंजोर में संकलित कविताएँ प्रतिरोध की संस्कृति जिसमें सिलेन्स नहीं बल्कि इसकी आवाज में लाउडनेस हैं। बोलती संस्कृति है। जबकि आलोचक बद्रीनारायण का मानना है कि 'नारी एवं दलित जिनकी

'चुप की संस्कृति है' जिसमें प्रतिरोध के अप्रत्यक्ष रूपों की भरमार है।'[4]

भोजपुरी काव्य में आधुनिक दलित कवि की रचनाओं में तीखा तेवर और तुर्शी देखने को मिलता है–

'मडई रोवेले हमार महलिया कजरी गावे ना
भूखे लइका छोड़ छोड़ करि रोपनिया हतेआरन के
ना टेघरेला काठ–करेजा जुल्मी जमींदारन के
हक मंगला पर मलकिनिया मोटकी गरिआवे ना।
करम भाग आ सरग नरक झूठा पाठ पढ़ा के
खींच रहलि बा टाँग व्यवस्था तरकुल चढ़ा चढ़ा के
जग में असली भगवान मजदूर आ किसान जब उपजावे ना।'

भोजपुरी क्षेत्र में प्रतिवर्ष दिवाली के दो दिन बाद दरिद्र खेदने यानी दरिद्रता भगाने के लिए हिंदू धर्म की महिलाएं सूर्योदय से पहले सूप बजा बजा कहती है

'ईसर पइस दरीदर भागो' जबकि अरुण एक कविता में व्यंग्य करते हुए लिखते हैं– दरिदर पइस, इसर भागो।

'हर साल पुजाली लक्ष्मी जी
दलीदरो त खेदाइल बा
हर गाँव छ्छाइले बा भूखे
अब कवन देव खिसियाइल बा ।'
(आजादी का अँजोर से)

अरुण भोजपुरी ने अंधविश्वास और अशिक्षा, भूत प्रेत ओझा डाइन आदि कुरीतियों से दलित समाज को जगाने का प्रयास करते हैं।

ओझाई गीत के माध्यम से उन्होंने दलित समाज में व्याप्त अंधविश्वास पर कुठाराघात किया है

'भूतवा गरीबी, अज्ञानता परेत बा
सांच कांस बांहि जांच=चांपत नरेट बा।
धरम के रणनीति चिन्हा ढोढा मंगरू
छीन कतवारू दुर्गा के तरुवरिया।'

आजादी ने अंजोर लाने के लिए कभी अन्हार दूर होखे कविता से लोगों का आह्वान करते हैं समाज में नारियों को बराबरी का अधिकार मिले जैसा कि बाबा साहब कहा करते थे कि 'मैं किसी भी समाज की प्रगति का अनुमान इस बात से लगाता हूं कि समाज की महिलाओं की प्रगति हुई है' औरतों की बराबरी का दर्जा देने के लिए लिखते हैं।

उमा वर्मा मानती है कि अब भी दलित लेखक प्रकाश में आये हैं। जो लोग प्रकाश में आये उसमें अरुण भोजपुरी का स्वर सबसे प्रखर है। उनकी भोजपुरी रचना में स्प्ष्ट विचार है, अभिव्यक्ति का तेवर आक्रमक है।'[5]

उनकी एक दलित कविता में आक्रोश का वेग देखा जा सकता है–

"कल्पोल कल्पित करनी
गा गा जे सुनावल
पाप पुण्य पुनर्जन्म स्वर्ग नरक
पचरा में पड़ि के बहुत पिरावल।"

इसी कपोल कल्पना से मुक्ति की बात अरुण भोजपुरी के रचना में है।

अरुण के रचना संसार में गरीब, दलित, वंचित और स्त्रियों के आवाज है और रचनाकार हाशिए के समाज को ही अपना समाज मानकर उनका बेहतरी के लिए उनकी आवाज बन कर नीति नियंताओं के कान तक पहुंचता है। समाज के भेदभाव और जातिवाद का मुखर प्रतिरोध करता है और मानवतावाद को स्थापित करने का भरसक प्रयास करता है। अरुण भोजपुरी का यह संग्रह वस्तुतः हाशिए का स्वर है।

संदर्भ

1. रविवारी, विमर्श : आक्रोश और साहित्य, बजरंग बिहारी तिवारी, जनसत्ता, नई दिल्ली, 22 अक्टूबर, 2017,पृष्ठ 2।
2. पृष्ठ 47, अंक 26– 27, भोजपुरी विश्व, पटना 1, सम्पादक– डॉ लाल बाबू तिवारी।
3. खुलासा, पृष्ठ 45– 46, चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु दलित वैचारिकी की दिशाएं संपादक बद्रीनारायण नई दिल्ली 2008।
4. प्रतिरोध की लोक संस्कृति, प्रतिरोध की संस्कृति, बद्री नारायण वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2012, पृष्ठ 8.।
5. अगली सदी में दलित साहित्य मुख्यधारा बनीं एकइसवी सदी में भोजपुरी, भोजपुरी साहित्य संस्थान, पटना, सम्पादक– नगेन्द्र प्रसाद सिंह व अन्य, पृष्ठ 58।

इतिहास लेखन की पौराणिक परम्परा

प्रो0 ओंकार नाथ द्विवेदी
इतिहास विभाग
एम0जी0पी0जी0 कॉलेज, फतेहपुर, उ0प्र0

पुराण संस्कृत वाङ्मय की अमूल्य निधि है। पुराण का शाब्दिक अर्थ है 'प्राचीन' या पुराना। भारतीय संस्कृति के सम्यक् ज्ञानार्थ हेतु पुराण साहित्य का अनुशीलन आवश्यक है। पुराण भारतीय संसकृति का मेरूदण्ड है। यह वह आधारपीठ है जिस पर आधुनिक भारतीय समाज अवलम्बित और प्रतिष्ठित है।

पुराण की परिभाषा- पुराण शब्द का अर्थ है प्राचीन काल में होने वाला। पाणिनी सूत्र- "सांयचिरप्राहवे प्रगेखव्यथेभ्यंष्ठटयुट्युलौ तुट्य च।" के अनुसार पुरा शब्द से 'ट्प्' प्रत्यय करने तथा लुट् के आगमन होने पर पुरातन शब्द निष्पन्न होता है। पुराण शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक बार हुआ है, वहाँ इसका अर्थ है- प्राचीन काल में होने वाला। यास्क के अनुसार- पुरानवं भवति इति पुराण: अर्थात् जो प्राचीन होकर भी नया बना रहता है वह पुराण है। वायु पुराण के अनुसार- यस्मात् पुरा हि अनिति इति पुराण में पुराएतत् अभूव अर्थात् प्राचीन काल में ऐसा हुआ यह अर्थ पुराण को परिभाषित करता है।

इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि पुराण साहित्य अतीत कालीन घटनाओं से सम्बद्ध है, परन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि यह न केवल अतीत कालीन घटनाओं का वर्णन करता है अपितु जगत् एवं जागतिक रहस्यों का उद्घाटन भी करता है। विष्णु पुराण में पुराण के 5 लक्षण बताए गये है- सर्गष्च प्रतिसर्गष्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंषानुचरितंचैव पुराणं पंचलक्षणम्।। अर्थात् सर्ग प्रतिसर्ग वंश मन्वन्तर वंषानुचरित ये पाँच प्रध ान विषय पुराणों में वर्णित है।

पुराण और इतिहास के सम्बन्ध :

पुराण और इतिहास के सम्बन्ध के विषय में पं0 भगवदत्त ने कहा है कि- "इतिहास आत्मा है और पुराण उसका शरीर है। इस पुराण शरीर के बिना इतिहास का क्रम स्मरण नहीं रह सकता। पुराण इतिहास की सूची है इतिहास को सुरक्षित रखने वाली ऐसी बहुमूल्य देन विश्व वाङ्मय में अन्यत्र नहीं है।" इतिहास और पुराण की अति समीपता के कारण ही कुछ इतिहासकार उसके लिए पुराणेतिहास शब्द का प्रयोग करते है। इतिहास और पुराण का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है कि दोनों युगपत रीति से इतिहास पुराण नाम से कई स्थानों पर उल्लिखित है। यास्क के अनुसार ऋग्वेद में ही त्रिविधि ब्रह्मा के अन्तर्गत 'इतिहास मिश्र' मन्त्र पाये जाते है।

"त्रितं कूपेखवहितमेतत् सुक्तम् प्रतिवभौ।
तत्र ब्राह्मेतिहास-मिश्रमिमिश्रं गाथामिश्र भवति।।"

उपनिषद् साहित्य में भी इतिहास पुराण परस्परा के साक्ष्य मिलते है। छान्दोग्योपनिषद में सनत्कुमार से विद्या सीखने पर अवसर पर नारद मुनि ने अपनी अधीत विद्याओं में इतिहास पुराण का भी उल्लेख किया है और उसे 'पंचमवेद' की संज्ञा दी है। महाभारत के लिए इतिहासोन्वय के साथ-साथ पुराण नाम का भी व्यवहार किया गया है। वायुपुराण अपने को पुरातन इतिहास कहता है। छान्दोग्योपनिषद के भाष्य में शंकराचार्य ने वेदों में इतिहास और पुराण दोनों का अस्तित्व होने की बात कही है। उर्वशी तथा पुरूरवा के संवाद को सूचित करने वाला- उर्वशी छाप्सरापुरुषसमैडं चकने (शतपथ ब्राह्मण, 11/5/1/1) इतिहास है जबकि असिद्धाइदम्ग्रासीत इत्यादि विवरण पुराण है। भाष्कर सायण ने भी वैदिक साहित्य में आख्यान तथा आख्यायिका के सूचक भागों को इतिहास तथा उर्वशी-पुरूरवा का सृप्ति प्रक्रिया वर्णन को पुराण माना है।

वैदिक युग में इतिहास पुराण परम्परा :

ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में यद्यपि पुराण शब्द का प्रयोग हुआ है, किन्तु इन स्थलों पर पुराण शब्द केवल प्राचीनता का ही बोधक है। अन्यत्र पुराण शब्द 'गाथा' शब्द के विश्लेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। बलदेव उपाध्याय का कहना है कि ऋग्वैदिक युग में कुछ ऐसी गाथाएं विद्यमान थी जिनका उदय किसी प्राचीन काल में हुआ था। डॉ0 वी0एस0 पाठक का मत है कि गाथा तथा नाराशंसी इतिहास तथा पुराण का प्रतिरूप है। जो इतिहास परम्परा के साथ-साथ अपनी मान्यता प्रकट करते है।

अथर्ववेद में पुराण शब्द इतिहास गाथा तथा नाराशंसी शब्दों के साथ एक विशिष्ट विद्या के रूप में उपलब्ध होता है, जो इतिहासशास्त्र के प्रारम्भिक रूप का प्रदर्शन है-

स वृहती दिशमनुष्य चलत् तमिति असश्च पुराणं च गाथाश्च।।
नाराशंसीश्चानुव्य चलत् इतिहासस्यच च स वै पुराणस्य च गाथानं च।
नाराशंसीनम् च प्रियं धाम भवति, य एवं वेद।।

अथर्ववेद के इस लेख से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि इतिहासशास्त्र के संरचना में गाथा, नाराशंसी एवं पुराण की मौखिक परम्परा उत्तर वैदिक काल में प्रचलित थी जो कालान्तर में इतिहास पुराण परम्परा के रूप में विकसित हुयी। डॉ0 बलदेव उपाध्याय का कहना है कि वैदिक काल में दो सामानान्तर धाराएं विद्यमान थी- वैदिक परम्परा और लौकिक परम्परा लौकिक धारा के अन्तर्गत लोक में प्रसिद्धि प्राप्त व्यक्तियों तथा लोकप्रसिद्ध वृत्त का वर्णन गाथा नाराशंसी आदि के रूप में किया जाता था। ऋग्वेद की दान स्तुतियाँ भी मन्त्रकर्ता ऋषि को अभूतदान देने वाले आश्रयदाता शासक की ऐतिहासिक वृत्ति से सम्बन्धित है। इन लौकिक वृत्तांतों को ही पुराण साहित्य के रूप में संकलित किया गया है।

ब्राह्मण-साहित्य और इतिहास पुराण परम्परा- संहिताओं की ही भाँति ब्राह्मण साहित्य में भी इतिहास पुराण परम्परा विद्यमान थी। गोपथ ब्राह्मण में लिखा गया है कि- एवमिमे सर्वेवेदा निर्माताः संकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः ऐतिहासाः सान्वाख्याताः सपुराणाः। अर्थात् कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषद्, इतिहास अन्वाख्यात् तथा पुराण के साथ सब वेद निर्मित हुये। इसी ग्रन्थ के एक दूसरे मन्त्र में 5 वेदों के निर्माण का

उल्लेख हुआ है। इसमें इतिहास वेद व पुराण वेद भी सम्मिलित है।

शतपथ ब्राह्मण में इतिहास पुराण वेद उदय की एक गाथा मिलती है- यदनुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहासपुराण गाथानाराशंस्य। य वेवं विद्वान् अनुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहासपुराणं गाथा। नाराशंसीरित्यहरत स्वाध्यायमधीयते। मधवाहुतिमिखे तद्देवांस्तर्पयति। अर्थात् विभिन्न वेदों का स्वाध्याय विभिन्न फल प्रदान करता है। अनुशासन, विद्या वाकोवाक्य, इतिहास पुराण गाथा तथा नाराशंसी का स्वाध्याय करने से देवों को मधु से पूर्ण आहुतियाँ प्राप्त होती है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण काल में इतिहास पुराण की परम्परा विद्यमान थी तथा एक विद्या अथवा एक शास्त्र के रूप में इतिहास शास्त्र का निर्माण हो रहा था।

आरण्यक तथा उपनिषद में इतिहास-पुराण परम्परा- आरण्यकों तथा उपनिषदों में भी इतिहास पुराण परम्परा का विकसित रूप दिखाई पड़ता है। वृहदारण्यक उपनिषद में पुराणों की उत्पत्ति वेदों के समान ही बतायी गयी है। छान्दोग्योपनिषद में इतिहास पुराण परम्परा को पंचम वेद की संज्ञा दी गयी है। इन उदाहरण ों से स्पष्ट होता है कि आरण्यक युग पुराणों की अवधारणा विकसित हो गयी थी। ग्रन्थ रूप में न सही तो आख्यान रूप में निज़्चित ही इतिहास पुराण परम्परा का प्रचलन हो गया था।

सूत्र ग्रन्थ एवं इतिहास पुराण परम्परा- सूत्र ग्रन्थों में भी इतिहास पुराण परम्परा के साक्ष्य मिलते है। आश्वालायन गृहसूत्र के अनुसार- अवस्वाध्यायमधीयते ऋषी यंजूषि सामान्यखथर्वागिरसो ब्राह्मणान् कल्तान् गाथा, नाराशंसी इतिहासपुरानिति अमृतादुतिभिः। अर्थात् चारों वेद, ब्राह्मण, कल्पगाथा, नाराशंसी इतिहास और पुराण का पाठ करने वाले मनुष्य के पितरों को अमृत की लहरें प्राप्त होती है। इसी प्रकार आपस्तम्धर्मसूत्र में भविष्यत् पुराण का उल्लेख होना यह संकेत करता है कि भविष्य में होने वाली घटनाओं का, राजाओं का तथा उनके ऐतिहासिक वृत्तों का वर्णन भविष्य पुराण में होना चाहिए।

महाकाव्यों में इतिहास पुराण परम्परा- रामायण में वाल्मीकि ने पुराणों की ऐतिहासिक विश्वसनीयता को स्पष्ट किया है कि राजा ने इसमें वर्णित कथाओं को सुनने का निर्देश दिया है। सुमन्त पुराणों के ज्ञाता थे, उन्होंने दशरथ से कहाँ कि पुराणों के ग्रन्थों में जो कुछ सुन रखा है वह श्रवण कीजिए- एतच्छ्त्वारहः सूतो राजानमिदं ब्रवीन। श्रूयतां यत्पुरावृत्तं पुराणेषु मयाश्रुतम्। महाभारत में भी पुराण इतिहास और आख्यानों के महत्व को कई स्थलों पर रेखांकित किया गया है-

(क) पुराणं इतिहासश्च तथाख्यानानि पानिच।

महात्मनां च चरितं श्रोतत्वयं नित्यमेव तत्।। (म0भा0 दानपर्व)

अर्थात् पुराण, इतिहास, आख्यान और महात्माओं के चरित्र नित्य श्रवण करने चाहिए।

(ख) इतिहासपुराणाभ्याम् वेदं समुदवृहन्ते (आदिपर्व 1/64)

अर्थात् इतिहास और पुराणों द्वारा वेद के अर्थ को विस्तृत करना चाहिए।

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि रामायण काल में पौराणिक कथाओं एवं आख्यानों की परम्परा प्रचलित थी, जबकि महाभारत काल में पौराणिक ग्रन्थों की रचना हो चुकी थी, वे इतिहास के रूप में मान्य थे किन्तु पुराण से पृथक इतिहास का स्वरूप निर्मित हो रहा था।

कौटिल्य एवं इतिहास पुराण परम्परा- कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अनेक स्थलों पर इतिहास पुराण की ओर निर्देश किया गया है- 'सामग्र्यजुर्वेदास्त्रयी अथर्ववेद इतिहास वेदौच वेदा:।' इस उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि मौर्य युग के प्रारम्भिक काल में वेद के समान ही इतिहास भी एक विशिष्ट ग्रन्थ का द्योतक था तथा वह उसी प्रकार पवित्र माना जाता था। जिस प्रकार वेदत्रयी। इसी ग्रन्थ में अन्यत्र उल्लिखित है कि- "पश्चिम इतिहास श्रवणे पुराण इतिवृत्त आख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रं अर्थशास्त्रं चेतीतिहास:।" अर्थात् कौटिल्य का निर्देश है कि दिन के पिछले भाग में राजा इतिहास का श्रवण करे इससे व्यक्त होता है कि चतुर्थ शताब्दी ई0पू0 में इतिहास साहित्य की एक विधा के रूप में मान्य हो चुका था।

धर्मशास्त्र और इतिहास पुराण परम्परा- धर्मशास्त्रों में बहुश्रुत नामक संज्ञा का प्रयोग हुआ है जिसके बारे में कहा गया है कि वह लोक वेद, वेदांग, वाकोवाक्य इतिहास तथा पुराण का ज्ञाता होता है- "स एश बहुश्रुतो भवति लोकवेद वेदांगवित वाकोवाक्य इतिहास पुराण कुशल:।

व्यासस्मृति में कहा गया है कि वेद का पारंगत विद्वान होने के लिए छ: वेदांगों के साथ-साथ पुराणों की भी मीमांसा करने का ज्ञन आवश्यक है- मीमांसते च यो वेदान शड्मिरंगै: सविस्तरै:।

इस प्रकार संस्कृत वा्मय के विभिन्न अंगों में हमें इतिहास पुराण परम्परा विषयक साक्ष्य पर्याप्त मात्र में प्राप्त होते है, जो भारतीयों के इतिहास बोध के जीवंत प्रमाण है।

पुराणों में संग्रहीत ऐतिहासिक सामग्री- पुराण साहित्य के निर्माण की जो प्रक्रिया ऋग्वैदिक काल में प्रारम्भ हुयी वह अनेक अंगों उपांगों और उपकरणों को समेटकर दीर्घकाल तक चलती रही। विष्णु पुराण में एक ऐतिहासिक प्रक्रिया का संक्षिप्त परिचय निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभि: कल्पसिद्धिभ:।
पुराण संहिताचक्र पुरणार्थ विशारदा:।।

अर्थात् आख्यान, उपाख्यान, गाथा तथा कल्पशुद्धि के आधार ग्रहण कर पुराण संहिता का विकास हुआ। इन उपकरणों को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है-

गाथा : भारतीय वाड्मय में वेद, ब्राह्मण, सूत्र, साहित्य तथा स्मृति ग्रन्थों में ऐसे उद्धारण प्राप्त होते है जो किसी मान्य महीपति के असामान्य शौर्य तथा उसको दान प्रवृत्ति का प्रतिपादन करते हुए लिखे गये थे। इन्हें गाथा कहा जाता था। इनका पुराण साहित्य के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान है। मार्कण्डेय पुराण की एक गाथा इस प्रकार है-

पितृगीता स्तथैवाम् गीयन्ते ब्रह्मवादिभि:।
या गीता पितृभि: पूर्वम् ऐलख्यासन् महीपते:।

कदा न सन्ततावग्रयः कस्यः चत्भविता सुतः।
यी योगी मुक्तशेषान्नात् भुवि पिण्डान् प्रदास्यति।।

इस प्रकार की गाथाएं वायु पुराण, विष्णु पुराण आदि ग्रन्थों में भी विद्यमान है ये गाथाएं प्रारम्भ में मौखिक परम्परा से श्रुतज्ञान में विद्यमान थी जिसको आधार बनाकर वेद व्यास ने पुराण संहिता को ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार कर ग्रन्थ का प्रणयन किया।

आख्यान : आख्यान का अर्थ किसी प्राचीन कहानी की ओर निर्देश करना है- 'आख्यान पूर्व वृत्तोक्ति' श्रीधर स्वामी ने आख्यान की व्याख्या में लिखा है- "स्वयं दृष्ट्यार्थ कथनं प्रहुराख्यानम् बुधाः। श्रुतस्या अर्थस्य कथनम् उपाख्यानम् प्रचक्षते। अर्थात् स्वयं दृष्ट अर्थ का कथन ही आख्यान है। आख्यान भी मानव जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित होने के कारण ऐतिहासिक सामग्री के रूप में ग्राह्य है।

उपाख्यान : विष्णु पुराण में कहा गया है कि वक्ता द्वारा परम्परा से सुने गये अर्थ का प्रकाशन उपाख्यान है। उपाख्यानों के अनेक प्रसंग पुराणों में उपलब्ध है, जो परम्परा से श्रुत थे। उन्ही श्रुत उपाख्यानों को व्यास ने पुराण रचना में समाहित किया है।

कल्पशुद्धि : कल्पशुद्धि का सामान्य अर्थ है- भिन्न-भिन्न कल्पों (समय विशेष) में उत्पन्न होने वाले विषयों का कथन या विवरण। पुराणों का यह अंग समय विशेष में उत्पन्न होने वाले विषयों का समायोजन कर कालान्तर में उत्पन्न परिवर्तनों को आत्मसात् कर लेता है जो समय के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन की सूचना देता है।

नाराशंसी : पुराणों के निर्माण में नाराशंसी का महत्वपूर्ण योगदान है। नाराशंसी का वैदिक ग्रन्थों में बहुशः उल्लेख हुआ है, जिसके अन्तर्गत राजपुरुषों के महनीय कार्यों की प्रशंसा की गयी है। महर्षि वेदव्यास ने वैदिक कालीन नाराशंसियों की मौखिक परम्परा को लिखित रूप में पुराण संहिता के रूप में प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष :

इतिहास पुराण परम्परा वैदिक काल से ही प्रचलित थी। निरूक्तकार के अनुसार- इस काल में वैदिक मन्त्रों के अर्थ को ऐतिहासिक रूप में प्रस्तुत करने वाले विद्वान का एक ऐसा वर्ग विद्यमान था जिन्हें 'इति ऐतिहासिक' कहा जाता था। वह वर्ग वैदिक ऋचाओं की व्याख्या वैदिक दृष्टि से करता था। ब्राह्मण ग्रन्थों की कथाओं को भी 'इतिहासाऽचक्षते' कहकर उद्धृत किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में निश्चित रूप से होने वाली घटना इतिहास के द्वारा उद्धृत किया गया है या निर्दिष्ट किया गया है। दुर्गाचार्य ने निरूक्तभाष्यवृत्ति में लिखा है कि- 'इतिहैवमासीत इति यः उच्यते स इतिहासः' अर्थात् यह निश्चित रूप से हुआ था यह कहने वाला इतिहास है। अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में यह शब्द पुराणों से भिन्न स्वतंत्र रूप में इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यास्क ने निश्चित रूप से देवापि और शान्तनु की कथा और विश्वामित्र को 'सुदास पैजवन' का पुरोहित बनने की घटना को इतिहास कहा है। पुराणों में कालान्तर में इतिहास शब्द का

प्रयोग 'इतिवृत्त के रूप में होने लगा। काल्पनिक कथा या आख्यान को पुराण नाम से वास्तविक घटना को इतिहास नाम से पुकारा गया। महर्षि व्यास ने स्वयं पुराणों से पृथक कर महाभारत को उत्तम इतिहास के रूप में प्रस्तुत किया है। इसलिए वेदव्यास को विश्व के प्रथम इतिहास के रूप में जाना गया और इन्हें ही इतिहास के पिता (Father of History) कहा गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. पाणिनी सूत्र, 4/3/23
2. यास्क निरूक्त, 3/19
3. वायु पुराण, 1/203
4. ब्रह्माण्ड पुराण, 1/1/173
5. विष्णु पुराण, 3/6/24
6. पं0 भगवदत्त, भारत वर्ष का वृहत् इतिहास, प्रथम भाग, पृ0 19
7. यास्क निरूक्त, 4/6
8. शांकर भाष्य
9. डॉ0 बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, पृ0 8
10. Dr. V.S. Pathak, Ancient Historiyans of India, Pg. 2
11. गोपथ ब्राह्मण, पूर्व भाग 2/10
12. आश्वालयन गृहसूत्र 3/3/1
13. रामायण, अयोध्याकाण्ड
14. अर्थशास्त्र, 1/3
15. हेमाद्रिकृत चतुवर्ग चिन्तामणि परिशेष खण्ड, श्राद्धकल्प अ0-6
16. महाभारत, उद्योग पर्व, 136/18

भारतीय इतिहास लेखन एवं जैन आदि पुराण

प्रो0 ओंकार नाथ द्विवेदी
इतिहास विभाग
एम0जी0पी0जी0 कॉलेज, फतेहपुर, उ0प्र0

आचार्य जिनसेन कृत आदि पुराण जैन परम्परा के सर्वोत्कृष्ट पुराणों में परिगणित है। तीर्थंकरों की अभ्यर्चना से अभिपुरित यह ग्रन्थ अनेकानेक विशिष्टताएँ समेटे हुए है। वस्तुतः ब्राह्मण पुराण परम्परा के समानान्तर जैन मुनियों ने तीर्थंकरों के व्यक्तित्व को व्यापक रूप देने के निमित्त इस तरह के पुराणों का प्रणयन किया। निश्चित रूप से इस काल तक भारत में ब्राह्मण पुराणों की लम्बी परम्परा विद्यमान थी; जिसके समानान्तर जैन लेखकों ने पुराण इतिवृत्तों को अपनी लेखनी का आधार बनाया। वैदिक आख्यान् चरित परम्परा सतत् रूप से भारतीय लेखन में प्रवाहित रही। सूत, मगध, भृग्वांगिरस परम्परा सतत् रूप से भारतीय इतिहास के पूर्व मध्य काल तक के लेख में किसी न किसी रूप में दिखाई देती है। जैन लेखन भी इस परम्परा से अछूता नहीं रहा है। जिनसेन से लेकर पूर्व मध्य युगीन हेमचन्द्र आदि सभी ने पूर्व परम्परा को अपनाकर अपने ग्रन्थों का प्रणयन किया। प्रो0 ए0के0 बार्डर ने अपने ग्रन्थ "An Introduction of India Histrography" में आदि पुराण के इतिहास लेख्न की तरफ संकेत किया है।

जैन परम्परा में इतिहास लेखन का यह प्रथम प्रयास नहीं था, अपितु यहाँ भी इतिहास लेखन की सुदीर्घ परम्परा दिखाई देती है। आचारांग, व्याख्या प्रज्ञाप्ति, स्थानांग सुत्त आदि ग्रन्थों में जैन इतिहास लेखन के सभी सूत्र देखे जा सकते है। अन्तकृत दशक, ज्ञात, धर्मकथा तथा एक अन्य जिनसेन कृत हरिवंश पुराण में भी इतिहास लेखन की परम्परा दिखाई पड़ती है। पूर्व मध्ययुगीन जैन इतिहास लेखन की दृष्टि से प्रभाचन्द्र के प्रभावक चरित, मेरूतुंग कृत प्रबन्ध चिन्तामणि, राजशेखर का प्रबन्धकोश तथा हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाका पुरुष जैसे ग्रन्थों को भी यहाँ उद्धृत करना प्रासंगिक होगा।

आचार्य जिनसेन उस पंचस्तूप नामक अन्वय में हुए जो कि आगे चलकर 'सेनान्वय' या 'सेनसंघ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। चूँकि मुनियों की परम्परा उनके गुरुओं की परम्परा से आरम्भ होती है और आचार्य जिनसेन स्वामी आचार्य वीरसेन के शिष्य थे। अतः इन दोनों ने ही अपने वंश का परिचय 'पंचस्तूपान्वय' दिया है। अभी के अनुसंधान से इनके गुरु वंश की परम्परा आचार्य चन्द्रसेन तक ही पहुँच सकी है, अर्थात् चन्द्रसेन के शिष्य आर्यनन्दी, आर्यनन्दी के शिष्य वीरसेन, वीरसेन के शिष्य जिनसेन, जिनसेन के शिष्य गुणभद्र और गुणभद्र के शिष्य लोकसेन थे।

दिगम्बर मुनियों को पक्षियों की तरह अनियतवास बताया गया है। अर्थात् जिस प्रकार पक्षियों का कोई निश्चित आवास नहीं होता, उसी प्रकार मुनियों का भी कोई निश्चित आवास नहीं होता, किन्तु इनके सम्बन्ध

में इनके निजग्रंथों में वंकापुर वाटग्राम और चित्रकूट का उल्लेख प्राप्त होता है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह कर्नाटक प्रांत के रहने वाले होंगे। वंकापुर उस समय वनवास देश की राजधानी थी और इस समय कर्नाटक प्रान्त के धारवाड़ जिले में है। इसे राष्ट्रकूट अकाल वर्ष के सामन्त लोकादित्य के पिता वंकेचरसेन ने अपने नाम से राजधानी बसाया था, जिसका उल्लेख उत्तरपुराण प्रशस्ति से प्राप्त होता है। वाटग्राम की स्थिति के विषय में सूचना प्राप्त होती है कि यह राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष के राज्य में था। अमोघवर्ष का राज्य उत्तर में मालवा से लेकर दक्षिण में कोचीपुर तक फैला हुआ था। अमोघवर्ष का राज्यकाल शक् सम्वत् 788 की एक प्रशस्ति में लिखा गया है कि- "गोविन्दराज जिसके उत्तराधिकारी अमोघवर्ष थे- केरल, मालवा, गुर्जर और चित्रकूट को जीता था। इन सब देशों के राजा अमोघवर्ष की सेवा में रहते थे।

जिनसेन स्वामी के सम्पर्क में रहने वाले राजाओं में अमोघवर्ष का नाम सर्वोपरि है। इनका धारू नाम वोद्दरण राव था। नृपतुण्ड, सर्वशण्ड, अतिशयधावल, वीरनारायण, पृथ्वीवल्लभ, लक्ष्मीवल्लभ, महाराजाधिराज, भटार, परमभट्टारक आादि इनकी उपाधियाँ थी। जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह बहुत पराक्रमी शासक था। इन्होंने बहुत बड़ी उम्र पायी और इन्होंने लगभग 63 वर्षों तक शासन किया। इतिहासकारों ने इनका काल शक सम्वत् 736 से 799 तक निश्चित किया है।

अमोघवर्ष ने अपनी दानशीलता व न्यायपरायणता से अपने नाम को इतना प्रसिद्ध कर दिया कि पीछे से यह एक प्रकार की पदवी समझी जाने लगी और इसे राठौर वंश के तीन चार राजाओं तथा परमार वंश के महाराज मुंज ने अपनी प्रतिष्ठा का कारण समझकर धारण किया। वे पिछले तीन-चार अमोघवर्ष जिनसेन स्वामी के चरण कमलों में अपना मस्तक रखकर अपने आपको पवित्र मानते थे और उनका सदा स्मरण करते थे। ये राजा ही नहीं विद्वान भी थे और विद्वानों के आश्रयदाता भी। इन्होंने 'प्रश्नोत्तरमालिका' की रचना की थी। इन्होंने अपने भुजाओं के बल से पृथ्वी का भार दूर कर दिया था। प्रश्नोत्तरमालिका के अतिरिक्त 'कविराजमार्ग' नामक अलंकार ग्रन्थ भी इनके द्वारा लिखा गया था। यह कन्नड़ भाषा में है और विद्वानों में इसकी बड़ी ख्याति भी है। इनकी राजधानी 'मान्यखेट' थी जो अपनी ख्याति से इन्द्रपुरी को भी हँसाती थी- यो मन्रूखेटममरेन्द्र पुरोपहासि, गीर्वाणि गर्वमिव खर्वयितुं व्यधात्त।

अमोघवर्ष ने जैन मन्दिरों एवं वसतिकाओं को अच्छा दान दिया था। शक् सम्वत् 788 के ताम्रपत्र से यह विदित होता है कि इन्होंने स्वयं मान्यखेट में जैनाचार्य को दान दिया था, यह दानपत्र इनके राज्याभिषेक के 52वें वर्ष का है। शक् सम्वत् 797 का एक लेख कृष्ण (द्वितीय) महासायन्त पृथ्वी राय का मिला है जिसमें उनके द्वारा सोनदन्ति के लिए कुछ भूमि दान करने का उल्लेख है।

अमोघवर्श की राजधानी मान्यखेट थी, जो उस समय कर्नाटक एवं महाराष्ट्र इन दो राज्यों की राजधानी थी। इस समय वह मलखेड़ नाम से प्रसिद्ध है तथा हैदराबाद रेलवे लाइन पर मलखेड़ गेट नामक छोटे से स्टेशन से चार पाँच मील की दूरी पर है। अमोघवर्ष भी जिनसेन स्वामी का अनन्य भक्त था, अतः यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि आचार्य श्री जिनसेन स्वामी ने मान्यखेट में ही निवास कर अपने ग्रन्थ आदि पुराण की रचना की होगी। इनकी मृत्यु शक सम्बत् 765 में स्वीकार की जाती है।

जिनसेन स्वामी आचार्य वीरसेन स्वामी के शिष्य थे, इनके विषय में गुणभद्राचार्य ने उत्तर पुराण की प्रशस्ति में लिखा है कि जिस प्रकार गंगा का प्रवाह सर्वज्ञ के मुख से और देदीप्यमान सूरज का उदय पूर्वाचल से होता है उसी प्रकार वीरसेन स्वामी का उदय हुआ। जयधावला की प्रशस्ति में आचार्य जिनसेन ने अपना परिचय बड़े ही अलंकारिक ढंग से दिया है–

"तस्य शिष्योखवच्छ्रीमान जिनसेन समिद्धधी।
अविद्धावपि यत्कर्णो विद्यौ ज्ञान शलाकाया।।
यस्मिन्नसन्नभव्यत्वान्मुक्तिलक्ष्मी: समुत्सुका:।
स्वयंवरीतुकामेव श्रौति मालाययूयुजत।।
येनानुचरितंवाल्याद् महाव्रतखण्डित।
स्वयंवर विधानेन चित्रमूढ़ा सरस्वती।।
तयाप्यन्नशरणा यं सरस्वत्युपारचत्।।
ज्ञानाराधाया यस्य गत कालो निरन्तम्।
ततोज्ञानमयं पिंड यमाहुस्तत्वदर्शिन:।।"

आचार्य जिनसेन स्वामी सिद्धान्तज्ञ तो थे ही साथ ही उच्चकोटि के कवि भी थे। जहाँ जिसकी आवश्यकता हुयी वहाँ कवि ने उसी भावों को स्थान दिया और उसी शैली को प्रकट किया। वे स्तुत्व का यथार्थ विवेचन करना पसन्द करते थे। दूसरों को प्रसन्न करने के लिए वस्तुत्व को तोड़मरोड़ कर अन्यथा कहना श्री जिनसेन स्वामी को कत्तई पसन्द नहीं था। अब तक उनके द्वारा निम्नांकित ग्रन्थों के प्रणयन का पता चला है–

1. पार्श्वाभ्युदय :

जिनसेन स्वामी का पार्श्वाभ्युदय काव्य जो कि 364 वृत्तों में पूर्ण हुआ है। यह कालिदास के मेघदूत का समस्या पूर्ति रूप है। इसमें मेघदूत के कही एक तो कही दो पदों को लेकर श्लोक की रचना की गयी है। इस प्रकार सम्पूर्ण मेघदूत पार्श्वाभ्युदय काव्य में अन्तर्विलीन हो गया है। पार्श्वाभ्युदय मेघदूत के ऊपर समस्यापूर्ति के रूप में लिखा गया सर्वप्रथम स्वतंत्र ग्रन्थ है। इसकी भाषा और शैली बहुत मनोहर है।

2. वर्धमान पुराण :

आचार्य जिनसेन स्वामी का द्वितीय रचना वर्धमान पुराण है। जिसका उल्लेख जिनसेन (द्वितीय) ने अपने हरिवंश पुराण में किया है। इसके नाम से स्पष्ट है कि यह जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान स्वामी का कथानक है।

3. जयधवला टीका :

कषाय प्रभृति के पहले स्कन्द की चारों विभक्तियों पर जयधवला नाम के 20,000 श्लोक प्रमाणटीका लिखकर जब श्री गुरू वीरसेनाचार्य स्वर्ग को सिधार चुके थे तब; उनके शिष्य श्री जिनसेन स्वामी ने उनके अवशिष्ट भाग पर 40,000 श्लोक लिखकर उसे पूरा किया। यह टीका 'जयधवला' अथवा 'वीरसेनीपा' नाम से प्रसिद्ध है। इस टीका में श्री जिनसेन ने श्री वीरसेन की शैली को अपनाया है। इन्होंने कही संस्कृत तो कहीं प्राकृत के द्वारा पदार्थ का सूक्ष्मतम अध्ययन किया है।

आदि पुराण महापुराण का आद्य भाग है। उत्तरभाग का नाम उत्तर पुराण है। आदि पुराण में 47 पर्व है जिसमें प्रारम्भ के 42वें पर्व के तीन श्लोक श्री जिनसेनाचार्य द्वारा रचित है। शेष पर्वो के 1620 श्लोक उनके शिष्य भदन्त गुणभद्राचार्य द्वारा विरचित है। जिनसेनाचार्य ने आदि पुराण के पीठिका बन्ध में जयसेन गुरू की स्तुति के बाद कवि परमेश्वर का उल्लेख किया है तथा उनके विषय में कहा है–

स: पूज्य: कविभिर्लोके कविना परमेश्वर:
वागर्थ संग्रह कृत्स्नं पुराणं य: समग्रहीत।।60।।

अर्थात् वे कवि परमेश्वर लोक में कवियों द्वारा पूजने योग्य है, जिन्होंने कि शब्द और अर्थ के संग्रह स्वरूप समाप्त पुराण का संग्रह किया था।

जैसा कि इस ग्रन्थ के नाम से ही स्पष्ट होता है कि यह ग्रन्थ जैन धर्म के आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के जीवन चरित्र का विस्तार से वर्णन करने के उद्देश्य को लेकर प्रणीत किया गया है। आदि पुराण के अन्तिम सर्ग के रचयिता तथा ग्रन्थ के पूरक के रूप में उत्तरपुराण के रचनाकार आचार्य प्रवर जिनसेन के शिष्य गुणभद्राचार्य ने आदिपुराण की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि– "यह आदिनाथ के चरित कवि परमेश्वर के द्वारा कही गद्य कथा के आधार पर बनाया गया है। इसमें समस्त छन्द तथा अलंकारों का लक्षण है। इसमें सूक्ष्म अर्थ तथा गूढ़ पदों की रचना है..... इसे सिद्धान्त ग्रन्थों के टीका करने वाले तथा गुणभद्रसूरि के अतिविस्तार के भय से और हीनकाल के अनुरोध से संक्षेप में किया गया है।"

इस महापुराण के कथानायक त्रिषष्टिशलाका पुरुष है– 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलभद्र, 9 नारायण और 9 प्रतिनारायण ये त्रेषठ शलाका पुरुष है। इनमें से आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभनाथ और उनके पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरत का ही वर्णन हो पाया है। अन्य पुरुषों का वर्णन गुणभद्राचार्य प्रणीत उत्तर पुराण में हुआ है। आचार्य जिनसेन स्वामी ने जिस रीति से प्रथम तीर्थंकर एवं भरत चक्रवर्ती का वर्णन किया है। यदि वह जीवित रहते और उसी रीति से अन्य कथानकों का वर्णन करते तो यह पुराण समस्त पुराण एवं काव्यों में महान होता। श्री जिनसेनाचार्य की मृत्यु के पश्चात् गुणभद्राचार्य ने अवशिष्ट भाग को अत्यन्त संक्षिप्त रीति से पूर्ण किया है, परन्तु उन्होंने संक्षिप्त रीति से लिखने पर भी सारपूर्ण बातों का समुल्लेख किया है। जिनसेन और दशरथ गुरू के शिष्य गुणभद्राचार्य भी अपने समय के बहुत बड़े विद्वान थे। ये उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त

पक्षोपवासी, परस्वी और भावालिंगी मुनिराज थे। इन्होंने आदि पुराण के अन्त में 1620 श्लोक रचकर उसे पूरा किया और उसके बाद उत्तर पुराण की रचना की जो 8000 श्लोकों में निबद्ध है, वे अत्यन्त गुरुभक्त शिष्य थे। आदिपुराण के 43वें पर्व के प्रारम्भ में जहाँ से अपनी रचना प्रारम्भ करते है, वहाँ इन्होंने जो पद लिखे है उनसे इनके गुरुभक्त हृदय का अच्छा साक्षात्कार हो जाता है। इनके द्वारा रचित निम्नलिखित ग्रन्थ उपलब्ध है–

1. **उत्तरपुराण**– यह महापुराण का उत्तर भाग है, इसमें अजितनाथ आदि को लेकर 23 तीर्थंकर, 11 चक्रवर्ती, 9 नारायण, 9 बलभद्र, 9 प्रतिनारायण तथा जीवन्धर स्वामी आदि कुछ विशिष्ट पुरुषों के कथानक दिये गये है।

2. **आत्मानुशासन**– यह भर्तृहरि के वैराग्य शतक शैली में लिखा हुआ 272 पद्यों का बड़ा सुन्दर ग्रन्थ है। इसकी सरस और सरल रचना हृदय पर तत्काल असर डालती है। इसकी संस्कृत टीका प्रभा चन्द्राचार्य ने की है। हिन्दी टीकाएं भी श्री स्व0 पं0 टोडर मल तथा पं0 वंशीधर शास्त्री सोलापुर ने की है। जैन समाज में इसका प्रचार भी खूब है।

3. **जिनदत्त चरित्र**– यह नवसर्गात्मक छोटा सा ग्रन्थ है। अनुष्टुप श्लोकों में रचा गया है। इसकी कथा बड़ी कौतुकावह है। शब्द विन्यास अल्प होने पर भी कही–कही भाव बहुत गम्भीर है। श्री लाल जी काव्यतीर्थ द्व ारा हिन्दी में भी अनुवाद हो चुका है।

निष्कर्ष :

आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण में अपने पूववर्ती जिन विद्वानों का उल्लेख किया है; उसमें सिद्धसेन, समन्तभद्र, श्रीदत्त, यशोभद्र, प्रभाचन्द्र, शिवकोटि, जटाचार्य (सिंहनन्दी) काणभिक्षु, देव अकलंक भट्ट, श्रीपाल, पात्रकेशरी, वादिसिंह, वीरसेन, जयसेन और कवि परमेश्वर आदि प्रमुख है।

इसके अतिरिक्त आदिपुराण में कतिपय देशों का भी नामोल्लेख प्राप्त होता है, जिसमें सुकोशल, अवन्ति, पुण्ड्र, काशी, कलिंग, अंग, बंग, सुह्य, कश्मीर, आनर्त, वत्स, पंचनद, मालव, पांचाल, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, कोंकण, बनवास, आन्ध्रा, कर्णाट्, कोसल, चोल, केरल, शूरसेन, विदेह, सिन्धु, गान्धार, यवन, चेदि, पल्लव, कम्बोज, आरट्ट, तुरूष्क, शक, सौवीर, केकय आदि प्रमुख देश है।

आचार्य जिनसेन ने जैन परम्परा के प्रेषक शलाका पुरुषों का चरित वर्णन की इच्छा से आदि पुराण का प्रणयन किया अथवा मात्र इन शलाकापुरुषों में प्रथम आदिनाथ व भरत चक्रवर्ती का वर्णन ही इस ग्रन्थ का अभिशप्त था यह कहना कठिन है। यद्यपि आदिपुराण के प्रारम्भ में ही स्वयं जिनसेन इस ग्रन्थ में त्रेषठशलाका पुरुषों से सम्बन्धित आख्यानों का वर्णन करने की इच्छा प्रकट की है–

इत्याप्राप्तवचः स्तोत्रैः कृमंगलसत्क्रिय।
पुराणं संग्रहीष्यामि त्रिषष्टिपुरूपाश्रितम्।।
तीर्थेशामपि चक्रेषां हलिनामर्ध चक्रिणाम्।
त्रिषष्टि लक्षणं वक्ष्ये पुराण तद्ष्ठिषामपि।।

पुरातनं पुराणं स्यात् तन्हन्महदाश्रयात्।
महादिभरूपपदिष्टत्वात् महाश्रेयोखनुशासनात्।।

दुर्भाग्यवश इस पुराण के 43वें सर्ग के पूरा होते-होते आचार्य प्रवर का देहावसान हो गया। उनका यह ग्रन्थ कालान्तर में उनके योग्य शिष्य ने गुरू की प्रतिज्ञा को शिरोधार्य कर बाकी अन्य शलाका पुरुषों के चरित वर्णन रूप उत्तर पुराण की भी रचना की।

इतिहास पुराण परम्परा के मर्मज्ञ आचार्य जिनसेन ने न केवल पुराणों की यथार्थ को स्पष्ट किया है, अपितु इतिहास का यथार्थ भी निरूपित किया है।

इतिहास इतीष्टं तद् इतिह हासीदिति श्रुतेः।
इतिवृत्तमथैतिसमान्नायं चामन्ति तत्।
पुराणमितिहासाख्यं यत्प्रोवाच गणधिपः।
तत्किलाहमधीर्वक्ष्ये केवलं भक्तिचोदितः।

जैने आदिपुराण का इतिहास लेखन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। इस ग्रन्थ में न केवल तमाम महापुरुषों के जीवन चरित्र का वर्णन किया किया है, अपितु भौगोलिक दृष्टि से भी अनेक स्थल प्रकाश में आये है। एक इतिहास ग्रन्थ के रूप में इसकी उपयोगिता उपरोक्त तथ्यों से प्रमाणित होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. Pathak, V.S., Ancient Histrience of India, Chapter-1
2. बार्डर, ए0के0, एन इन्ट्रोडक्शन टू दी इण्डियन हिस्ट्रोग्राफी, पृ0 34
3. वही, पृ0 32
4. स्वामी श्री जिनसेन, जयधवला टीका, श्लोक-4
5. एपिग्राफिआ इण्डिका, भाग-6, पृ0 102
6. ध्रुवराज का दान पत्र, इण्डियन एण्टिक्वेरी, पृ0 12-181
7. गुणभद्राचार्य कृत उ0 पुराण प्रशस्ति, श्लोक-8
8. एपिग्राफिआ इण्डिका जिल्द, पृ0 192-196
9. आदिपुराण प्रस्तावना पाद टिप्पणी, पृ0 22
10. जिनसेन कृत जयधवलाटीका श्लोक, 289, 29, 30, 34
11. आदिपुराण, प्रथम पर्व, श्लोक-60
12. उ0पुराण प्रशस्ति, श्लोक 17-20
13. दर्शनसार
14. पं0 सीतराम जयराम जोशी और पं0 विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज कृत 'संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास'
15. आदिपुराण प्रथम पर्व, श्लोक संख्या 19, 20, 21

16. आदिपुराण, प्रथम पर्व, श्लोक संख्या 19, 20, 21

शमशेर की काव्य साधना

डॉ0 अश्विनी कुमार पाण्डेय
एसोसियेट प्रोफेसर,
हिन्दी-विभाग,
हलीम मुस्लिम पी0जी0कालेज,
कानपुर नगर

हिन्दी साहित्य की प्रगतिशील काव्य धारा में शमशेर बहादुर सिंह का नाम अपनी एक विशिष्ट पहचान रखता है। मुक्तिबोध, नागार्जुन केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन और मुन्नूलाल शील के साथ शमशेर बहादुर सिंह अपनी शपशेरियत अर्थात् अपने क्लासिक अंदाज के लिये विशेष रूप से जाने जाते है। बकौल मुक्तिबोध उनकी कविता क्लासिक ऊँचाई की कविता है।"

शमशेर जी का जन्म सन् 1911 में मुजफ्फरपुर के "एलम" गाँव में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा अपने ननिहाल देहरादूर में ही हुई थी। बाद की शिक्षा उन्होनें गोंडा और इलाहाबाद में पूरी की थी। 1935 ई0 में ही उनकी पत्नी का देहान्त हो गया था। उसके बाद उन्होनें विवाह नहीं किया। उनकी शिष्या श्रीमती रंजना अरगड़े उन्हें अपने साथ अहमदाबाद लिवा लाई थी। अन्त समय में उन्होने ही उनकी सेवा सुश्रुषा की। शमशेर जी की मृत्यु 12 फरवरी 1993 ई0 में अहमदाबाद में ही हुई। श्रीमती रंजना जी ने ही उन्हें मुखग्नि दी थी।

आजीवन इतना कष्टपूर्ण या अवसादग्रस्त जीवन व्यतीत करने वाले इस महाकवि का जीवन ही था कि उसने हिन्दी साहित्य को अपनी कालजयी कृतियों से समृद्ध किया। प्रारम्भ में उन्होनें "चित्रकला" से अपने केरियर की शुरूवात की थी इसी कारण उनकी काव्य रचनाओं में इसकी झलक स्पष्ट दिखाई देती है। इनकी चित्रात्मक, विम्बप्रधान इम्प्रेषनिस्टिक शैली की कविताएँ इनके चित्रकार रूप को स्पष्ट करती है। उन्होनें गजल, गीत तथा अन्य सभी काव्य रूपों में रचना की है। उनकी प्रमुख रचनाओं में, दूसरे सप्तक की कविताएँ, उदिता (1980) कुछ कविताएँ (1953) कुछ और रचनायें (1961), चुका भी नहीं हूँ मैं (1975), इतने पास अपने (1980) काल तुझसे होड़ है मेरी (1981) को परिगणित किया जा सकता है। सारा जीवन वे कला और समाज दोनों की जुस्तजू से मुठभेड़ करते रहे, गरल पीकर अमृत बांटते रहे। उन्होनें स्वयं लिखा है- "कला का संधर्ष समाज के संधर्ष से एकदम अलग कोई चींज नहीं हो सकता और इतिहास आज इन संधर्षो का साक्ष्य दे रहा है। टूटते हुये मध्यवर्ग के मुझ जैसे कवि उस भेद को, जहाँ वे हैं, वहीं पे पा सकते हैं, वे उसको पाने की कोशिश में लगे हुये हैं।"[1]

कवि कहना चाहता है कि जब तक कवि, साहित्यकार कलाकार अपने बुर्जुआ स्वभाव को छोड़कर जन संधर्षो में शामिल नहीं होगें, वे सच्चे कवि नहीं बन सकते।

शमशेर की संवेदनशीलता उन्हें एक बड़ा और विशिष्ट कवि बनाती है प्रगतिवादी चेतना और प्रयोगवादी चेतना के परस्पर अन्तर्विरोध उनकी कविताओं में धुल मिल जाते हैं और एक आकर्षक सामंजस्य की सृष्टि करते है। वे अनुभूति की सच्चाई पर बल देते हैं। यह सच्चाई ही उन्हें फिर यथार्थपरक अभिव्यक्ति और मानवीय भावना का कवि बनाती हैं। शमशेर की अनुभूतियाँ इतनी जटिल और विविध हैं कि वह किसी पारम्परिक ढांचे में अभिव्यक्त नहीं हो सकती थी यही कारण है कि वे अपना स्वयं का शिल्प विकसित करते हैं, उनकी कविताओं का शिल्प अनूठा है जिसे उन्होने किसी शिल्पकार की तरह प्रयोग किया है।

अपनी काव्य यात्रा के प्रारम्भिक दौर में उन पर एक ओर छायावाद का प्रभाव है, दूसरी ओर छायावाद से हटकर नये भाव विषयों और शिल्प के निर्माण की कोशिश दिखायी देती है। आगे चलकर वे मार्क्सवाद से प्रभावित होकर बामपंथ में पूरी आस्था से जुड़कर गहरे सरोकारों के साथ अपना श्रेष्ठतम मृजन कर्म सम्भव कर सके हैं। मार्क्सवाद से जुड़ कर उनकी चेतना राष्ट्रीय से अर्न्राष्ट्रीय स्तरों का स्पर्श करने लगती है और वह विश्व के शोषितों पीड़ितों के पक्ष में वैश्विक धरातल पर अपने सृजन को समर्पित करते है। उनकी कविता "अमन का राग" की कुछ पंक्तियाँ उदाहरण स्वरूप देखें-

"ये पूरब पश्चिम मेरी आत्मा के ताने बाने हैं
मैंने एशिया की सतरंगी किरणों को
अपनी दिशाओं के गिर्द लपेट लिया है
और मैं यूरोप और अमेरिका की
नर्म आँच की धूप छाँव पर
बहुत हौले-हौले नाच रहा हूँ
सब संस्कृतियाँ मेरे सरगम में विभोर है
क्योंकि मैं हृदय की सच्ची सुख शान्ति का राग हूँ
बहुत आदिम बहुत अभिनव।"[2]

शमशेर की उपरोक्त कविता अन्तर्राष्ट्रीय फलक का स्पर्श करती हुई अन्तर्राष्ट्रीय एकता और मानवीयता के सोपानों का स्पर्श करती है। इसमें निहित सामाजिक व मानवीय सरोकार वामपंथियों को पीछे छोड़ देता है और शिल्शत सौन्दर्य कलावादियों को परास्त करता प्रतीत होता है। उनकी कविता में व्याप्त कलात्मकता और क्लासिक ऊँचाइयों को देखकर भ्रमित कुछ आलोचक उन पर रूपवादी व फलवादी होने का आरोप लगाते है परन्तु वे रूपवादी न होकर विशुद्ध वामपंथी है।

"शमशेर पर बात करते हुए यह स्मरण रखना होगा कि वह प्रगतिशील आन्दोलन से पूरी तरह सम्बद्ध थे और उनकी विचारधारा पर संदेह करने की कोई गुंजाइश नही है। वह भी मार्क्स और अन्य कम्युनिस्टों की तरह रचना की कसौटी, कथ्य की प्रगतिशीलता के बावजूद अपनी काव्यात्मकता को ही मानते हैं। इसलिए उनकी कतिवताएँ अपनी भाषा शैली के स्तर पर अधिक कलात्मक हैं बहुत मुखर नही ंतो यह कवि के रूप में उनका वैशिष्ट्य है उनकी सीमा नहीं।"[3]

ज्ञात हो कि शमशेर एक चित्रकार भी थे, संगीत में भी उनकी रूचि थीं। उनका सौंदर्यबोध और रचना दृष्टि स्वभावत: दूसरों से भिन्न होगी। किसी रचनाकार के मूल्यांकन की कसौटी उसकी रचना ही होती है। उसके बाहर जाना रचना व रचनाकार के साथ ज्यादती होगी। शमशेर अपनी रचना के विषय में स्वयं स्वीकारते हैं कि "मैं सदा ही अपने मानसिक परिवेश को ही चित्रित करता हूँ परिवेश के साथ-साथ उसके माहौल को भी "अपने पास" इतने पास खींचता रहा हूँ कि मेरा अन्दरूनी व्यक्तित्व कवि और चित्रकार, अपने उक्त को उसमें उतारने से बाज नहीं रख सके।"[4] इस आलोक में शमशेर अपने समकालीनों से अलग तरह के और अनूठे कवि हैं, जो अपनी कविताओं में दोहरी सृजनशीलता को समावेशित करते हैं, ये दोनों आयाम मिलकर उनकी कविताओं को पूरकता प्रदान कर उन्हें विशिष्टता व कलात्मकता प्रदान करते हैं। शमशेर के शिल्प की विशेषता को सूक्ष्मता से रेखांकित करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है- "अपने स्वयं के शिल्प का विकास केवल वही कवि कर सकता है, जिसके पास अपने निज का कोई मौलिक विशेष हो, जो यह चाहता हो कि उसकी अभिव्यक्ति उसी के मनस्तत्वों के आकार की उन्हीं मनस्तत्वों के रंग की उन्हीं के स्पर्श और गंधा की हो।"[5]

इस प्रकार मुक्तिबोध मानते हैं कि शमशेर की कविता में वस्तुत: अनकी रोमांटिक विदग्धता के सूत्र जब तक हमारे हाथ में नहीं आते, उनकी काव्यानुभूति तक हमारा पहुँचना असम्भव है। शमशेर की पहचान कवि रूप में है और कवि भी सामान्य नहीं दुरूह कवि, जिसे उसकी कविताओं में आये शब्दों से नहीं, शब्दों के पीछे कविता की संवेदना और उसके गहरे जीवनानुभवों की अनुभूति के साथ ही समझा जा सकता है।

"इन्द्रिय सौंदर्य के सबसे संवेदनापूर्ण चित्र देकर भी वे अज्ञेय की तरह सौन्दर्यवादी नहीं हैं। उनमें एक ऐसा कडियलपन है जो उनकी विनम्रता को ढुलमुल नहीं बनने देता। साथ ही किसी एक चौखट में बंधने नहीं देता। वे खुद मानते हैं कि इलियट, एजरा पाउण्ड, उर्दू की दरबारी कविता का रूग्ण प्रभाव उन पर है, लेकिन उनका स्वस्थ सौंदर्यबोध इस प्रभाव से ग्रस्त नहीं है। वे सौंदर्य के अनूठे चित्रों के सृश्टा के रूप में हिन्दी में सर्वमान्य हैं।"[6] उनकी प्रकृति विषयक कविताओं जिसमें प्रकृति और नारी की मिश्रित छवि उभरती है का एक चित्र प्रस्तुत है -

मोटी धुली लॉन की दूब।
साफ मखमल की कालीन।
मीठी चुस्की जैसी बातें।
तुम्हारे फूल से पाँव।
अकेला हूँ आओ।"[7]

अपनी कलात्मकता के कारण शमशेर को दक्षिण पंथी विचारक अपने खेने में घसीटने की कोशिश करते रहे हैं। अलाव के सम्पादक प्रसिद्ध जनवादी साहित्यकार राम कुमार कृषक अपने सम्पादकीय में कहते हैं "शमशेर उनके यहाँ इसलिए महफूज हैं, क्योंकि अपनी अनेक कविताओं के जटिल शिल्प विधान के चलते वे उन्हें इसका अवसर देते रहे हैं। विचार व्यवहार में अगर शमशेर प्रगतिशील मूल्यों का निर्वाह करते है तो काव्य शिल्प में प्रयोगवादी कला मूल्यों का। इतिहास गवाह है कि इसी के चलते अज्ञेय ने मुक्तिबोध को भी इस्तेमाल करने की कोशिश की थी।"[8]

वस्तुत: शमशेर की कविताओं में व्यक्ति सत्य और समाज-सत्य दोनों धुले मिले हैं। शमशेर के संदर्भ में जहां एक तरफ उनके वैयक्तिक पक्ष से प्रेरित कविताओं में विम्बात्मकता और इम्प्रेशनिस्टिक कला का आग्रह दिखाई पड़ता है वहीं दूसरी ओर सामाजिक पक्ष से प्रेरित रचनाओं के प्रति भी उनका आग्रह कुछ कम नहीं दिखता "सच तो यह है कि शमशेर जिनी सत्य और समाज सत्य दोनों के द्वन्द को रचनाकार के स्तर पर कृत्रिम मानते हैं, क्योंकि रचनाकार के पास समावेशी दृष्टि होती है जिसमें ये सारे द्वन्द धुल जाते हैं और रचना सार्वजनिक स्तर पा लेती है। कम से कम शमशेर के संदर्भ में यह सार्वजनिकता सच साबित होती है। जहाँ तक रचना की कलात्मकता का प्रश्न है शमशेर मानते हैं कि अनुभूति के बाह्य विस्फोट के साथ-साथ रचना के शिल्प के लिए रचनाकार को भाषा के स्तर पर विशेष साधना करनी चाहिये।"[9]

शमशेर को छायावादी रूमानियत और बिम्बवादी कवि कहना या उन्हें प्रयोगवाद और कलावादी कविता से जोड़ना यह उनका प्रारम्भिक मूल्यांकन था जो उनके समकालीनों के द्वारा किया गया। "दरअसल शमशेर ने मार्क्सवादी दर्शन को पूर्णत: आत्मसात किया था, इसलिए उनमें अपने को माक्सवादी कहलाने का आग्रह नहीं पाया जाता। प्रकृति और मानव के अंतहीन रहस्यों तथा अनगिनत रंगों को विस्मय की फटी आँखों से देखने की मानव सुलभ जिज्ञासाओं ने, बहुत सारे लोगों को भरमाया है। उन्हें (डॉ0 राम विलास शर्मा) रहस्य साधना की प्रेतछाया से आशंकित बताते है। जनमन के कवि को "कवियों" का कवि घोषित करने के लिए उत्साहित किया हैं।"[10] दरअसल खण्डित मनुष्यता के आज के समय में मार्क्स के शब्दों में, मानवोचित किसी भी वस्तु से उन्हें कोई परहेज नहीं था। यद्यपि उनकी काव्य दृष्टि बहुत ही सुदीर्ध और बहुआयामी है पर उसमें एक प्रकार का अन्तर्द्वनद विद्यमान है इसीलिए उनका काव्य जगत बहुत ही अनुकूल व शान्त हैं। शमशेर का काव्य लक्ष्य अपने आपको देख पाना है उनकी बात बोलेगी कविता इस तथ्य का उदाहरण है।

"बात बोलेगी/हम नही/भेदखोलेगी/बात ही।
सत्य का/क्या रंग/पूछो, एक संग/एक जनता का दुख एक।
हवा में उड़ती पताकायें अनेक/दैन्य दानव/क्रूर स्थिति
कंगाल बृद्धि/मजदूर घर भर/एक जनता को अगर वर।
एकता स्वर/अन्यथा स्वतंत्रत इति।"[11]

इसके विपरीत इनकी प्रकृति व प्रेम विषयक कविताएँ देखी जा सकती है जिसका अपना कलात्मक सौदर्य है फिर भी प्रकृति व मनुष्य को एककार कर देने वाली मनोगत ध्वनियों की क्रीडाएँ दोनों प्रकार की कविताओं में है।

देखे "उषा" का एक चित्र (बिम्ब प्रधान)

"प्रात नभ था बहुत नीला भांख जैसे
भोर का नभ
राख से लीपा हुआ चौका
(अभी गीला पड़ा है)
बहुत काली सिल जरा से केसर से

कि जैसे धुल गई हो
स्लेट पर या लाल खड़िका चाक
मल दी हो किसी ने
नील जल में या किसी की
गौर झिलमिल देह
जैसे हिल रही हो।
और.....
जादू टूटता है इस उषा का अब
सूर्योदय हो रहा है।"[12]

शमशेर के प्रेम का भी अपना एक दर्शन है :-

"हाँ, तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मछलियाँ लहरों से करती हैं
..... जिनमें वह फसने नहीं आती
जैसे हवाएँ मेरे सीने से करती है
जिसको वह गहराई तक दबा नहीं पाती
तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मैं तुमसे करता हूँ।"[13]

आयु की प्रौढ़ता के साथ उनका प्रेम प्रगाढ़ होता चला जाता है। प्रेम की एक विशिष्ट अभिव्यक्ति देखे-

"कहां किया मैने प्रेम अभी/जब करूंगा प्रेम/बिछल उठेंगे।
युगों के भूधर/उफन उठेगें सात सागर/सरल से भी गूढ गूढतर
तत्व निकलेंगे/अमित विषयक/न मथेगा प्रेम सागर/हृदय"[14]

उनकी सौंदर्य प्रियता में एक विशेष प्रकार की रोमानियत, जिजीविशा और मांसलता व्यक्त होती है। इस संदर्भ में देखे उनकी कविता "एक ठोस बदन अश्ट धातु का सा सचमुच?/ जटाएँ दो ठोस दरिया। है रे हुए से/मगर जानता हूँ कि वो/बराबर बराबर बहुत तेज/रे में है। ठहरा हुआ सा मैं भी हूँ मेरी/दृश्टि एकटक/ठोस वक्ष कपोल उभरे हुए चारो/निमंत्रण देते चेलैंज सा।"[15]

वे पूर्ण कलात्मकता से व्यक्त करते है -

"मैं इस तरह मुस्कुराया
जैसे शाम के पानी में
डूबते पहाड़ मुस्कुराते हैं।[18]
या
शाम का आखिरी गाना
तुम आना न आना
एक है आज तो भूलना, याद दिलाना
शाम का आखिरी गाना।[17]

शमशेर की चेतना व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर है। वैयक्तिक वेदना प्रदत्त होकर जब सामाजिक वेदना की पड़ताल करती है तो वैश्विक रूप ले लेती है।

"आज मैने गोर्की को होरी के आंगन में देखा
और ताज के साये में राजर्शि सुंग को पाया
लिंकन के हाथ में हाथ दिये हुए
और तालस्ताय मेरे देहाती यूपियन होठ से बोल उठा
और उरांगा की आंखों में नया इतिहास
मेरे दिल की कहानी की सुर्खी बन गया।[18]

अपनी गजलों में वे सरल व सहज हैं–देखे एक ग़ज़ल का एक शेर–

वही उम्र का एक पल कोई लाए
तड़पती हुई सी ग़ज़ल कोई लाये
हकीकत को लाए तखलुस्सा से बाहर। मेरी मुश्किलों को कोई लाये।[19]

समग्र रूप से हम कह सकते हैं कि शमशेर मूलत: एक प्रगतिशील चेतना से सम्पन्न कवि हैं पर कलात्मकता का दामन नहीं छोड़ते। उन्हें प्रगतिशील प्रयोगवादी कवित कहना अतिशयोक्ति न होगी। हम यह कह सकते हैं निजी स्तर पर आदमी में आदमियत की तलाश करने वाला यह महाकवि (शमशेर) सामूहिक जीवन के सुखद सपनों को पूर्ण करने की राह खोजता रहा, यह तलाश उसके जीवन की वह कविता रही जो कभी पूर्ण न हुई हो मगर साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में इसलिए लिख ली गई कि उक्त तलाश पूर्णता की तलाश थी मानव मुक्ति की तलाश थी, जो उनके विचारों की रोशनी में अभी भी जारी है।"

हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में समानाधिकार से लिखने वाले कवि, शायर शमशेर बहादुर सिंह की कविताओं को किसी वाद के खाँचे में फिट नहीं किया जा सकता। हम उन्हें "प्रगतिशील धारा के प्रयोगवादी कवि" कह सकते हैं उनकी दृश्टि में व्यक्ति और समाज में कोई विरोध नहीं है। इसी कारण जहाँ एक ओर उनकी कविता में व्यक्तिगत भावनाओं, प्रकृति, नारी के सौंदर्य के व्यापक बिम्ब और चित्र कलात्मकता के साथ मिलते हैं वहीं आम जनता के दुख दर्द विशाद के भी क्रांतिकारी चित्र दृष्टव्य हैं। वे हिन्दी उर्दू में भेद नहीं मानते हैं। उन्होनें लिखा है–

वो अपनो की बातें वो अपनों की खुशबू
हमारी ही हिन्दी हमारी ही उर्दू
ये कोयल, ये बुलबुल के मीठे तराने
हमारे सिवा इनका रस कौन जाने।[20]

डॉ0 नामवर सिंह के शब्दों में –

शमशेर के लिये इतना ही काफी है कि वे कवि है– सिर्फ कवि ही नही वरन शुद्ध कविता का कवि, न कवियों का कवि, न प्रयोग का कवि न प्रगति का कवि। कुछ कवि ऐसे होते हैं जिन्हें हर विशेषण छोटा

कर देता है।"[21]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शमशेर बहादुर सिंह-आलेख सुरेन्द्र प्रसाद कृत "प्रगति के प्रयोगवादी कवि शमशेर उद्धृत पत्रिका समकालीन चुनौती का शमशेर विशेषांक अंक अक्टूबर 2010 से मार्च 2011 संपा0 सुरेन्द्र प्रसाद पृष्ठ-41
2. शमशेर बहादुर सिंह-कविता "अमन का राग" उद्धृत संग्रह कुछ और कविताएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली वर्ष 1961 पृष्ठ-1
3. नन्द किशोर नन्द आलेख शमशेर की कविता में मनुष्य और समय उद्धृत समकालीन चुनौती शमशेर विशेषांक अंक अक्टूबर 2010 से मार्च 2011 पृष्ठ-57
4. शमशेर बहादुर सिंह उपरोक्त पृष्ठ-58
5. मुक्तिबोध, शमशेर मेरी दृश्टि में उद्धृत समकालीन चुनौती शमशेर विशेषांक अक्टूबर 2010 मार्च 2011 पृष्ठ-16
6. शैलेन्द्र चौहान, आलेख "शमशेर की कविता" उद्धृत पत्रिका अलाव अंक मार्च-अप्रैल 2011 सम्पादक राम कुमार कृषक पृष्ठ-11
7. शमशेर बहादुर सिंह, कुछ कविताएँ, उद्धृत कविता दूब प्रकाशन, जगत शंखधर, वाराणसी, वर्ष मई 1959 पृष्ठ-59
8. रामकुमार कृषक सम्पादकीय आलेख बौद्धिक तुच्छताओं से परे अलाव पत्रिका मार्च अप्रैल 2011, पृष्ठ-3
9. डॉ0 मंजू रानी, कवि शमशेर रचना प्रक्रिया और जीवन उद्धृत समकालीन चुनौती अक्टूबर 2010 मार्च 2011 पृष्ठ-68
10. शैलेन्द्र चौहान-शमशेर की कविता उद्धृत आलेख अलाव पत्रिका अंक मार्च अप्रैल अंक 2011 पृष्ठ-16
11. शमशेर बहादुर सिंह-कविता बात बोलेगी, उद्धृत कुछ और कविताएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1961
12. शमशेर बहादुर सिंह उद्धृत कविता "उषा" संग्रह "कुछ कवितायें" जगत शंखधर वाराणसी वर्ष 1 मई 1959
13. शमशेर बहादुर सिंह-कविता टूटी हुई बिखरी हुई उद्धृत प्रतिनिधि कविताएँ संपा0 अशोक बाजपेई राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली वर्ष 2008 (कविता कोष)
14. शमशेर बहादुर सिंह "चुका भी हूँ मैं नहीं उद्धृत संग्रह चुका भी हूँ मैं नहीं, कविता कोष से साभार।
15. शमशेर बहादुर सिंह "एक बदन अष्टधातु" उद्धृत पुस्तक "टूटी हुई बिखरी हुई।" राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011 पृष्ठ-154
16. शमशेर बहादुर सिंह "टूटी हुई बिखरी हुई पूर्ववत।"
17. शमशेर बहादुर सिंह, गीत शाम का आखिरी गाना (1941) कविता कोष से साभार
18. शमशेर बहादुर सिंह अम्न का राग, उद्धृत कुछ और कविताएँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2004 (रचनाकाल 1952) पृष्ठ-8
19. शमशेर बहादुर सिंह सुकून की तलाश (ग़ज़ल संग्रह) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1996 पृष्ठ-8
20. शमशेर बहादुर सिंह ग़ज़ल इनका रस हम ही जाने संग्रहित कविता कोष में साकर (टूटी हुई बिखरी हुई) तथा अशोक बाजपेई राधा कृष्ण प्रकाशन सं0 2004
21. नामवर सिंह नामवर सिंह का वक्तव्य नेट पर उपलब्ध है।

साहित्य का यथार्थवादी रूपः व्यंग्य

डॉ. राधा मिश्रा
(शोध-निर्देशक), सहायक प्राध्यापक,
हिंदी विभाग, डीएवी कॉलेज, कानपुर
****आकाश पाल***
(शोध-छात्र), हिंदी विभाग,
डीएवी कालेज, कानपुर

शोध-सार

व्यंग्य साहित्य का यथार्थकारी रूप है। सामान्यतः समसामयिक जीवन में घट रही घटनाएं ही इसका कथ्य बनती हैं। कोई भी रचनाकार जब समाज में व्याप्त विसंगति अर्थात् कथनी और करनी में भिन्नता को देखता है तो वह इसे दूर करने की कोशिश करता है। लेकिन जब वह इसे दूर कर एक आदर्श स्थिति के निर्माण करने में अपने आप को असमर्थ पाता है तो वह प्रहारक व्यंग्य के माध्यम से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। व्यंग्य का कार्य मानवीय गुणों में पतनशीलता को उजागर करना है। आर्थिक विषमता, चरित्रहीनता, सबल द्वारा निर्बल पर अत्याचार, शोषण आदि सब बातें मानव-विरोधी हैं। व्यंग्य इन्हीं विद्रूपताओं पर प्रहार करने के लिए सदैव तत्पर रहता है। व्यंग्य का प्रहार जिस पर किया जाता है यदि वह व्यंग्य की चोट से तिलमिला जाता है और अपने आप को लज्जित महसूस करता है तो व्यंग्य का सुधारात्मक लक्ष्य पूर्ण हो जाता है। जिस बात को कहने का साहस आम आदमी नहीं कर सकता, व्यंग्य उसे स्पष्ट रूप में कह देता है। इस अर्थ में व्यंग्य समाज का स्वर बन जाता है। वह समाज विरोधी एवं जन विरोधी शक्तियों के विरोध में खड़े होकर ही अपनी पहचान बनाता है। इसके लिए अत्यधिक साहस एवं विराट जीवटता की आवश्यकता होती है। व्यंग्य खतरा मोल लेकर ही प्रभावी बन पाता है। व्यंग्य में उपस्थित निर्भीकता उसकी धार को और तेज कर देती है। टूटने की ओर अग्रसर जर्जर व्यवस्था व्यंग्य के प्रहार से ढह जाती है। विकृतियों का उन्मूलन ही व्यंग्य का परम लक्ष्य होता है, इसीलिए उसकी नजर सर्वदा विकृतियों पर ही बनी रहती है। विकृति पर केंद्रित होने के कारण इसमें नकारात्मक रचना होने का दोषारोपण भी किया जाता रहा है, परंतु व्यंग्य के मूल में रचनात्मकता, बदलाव एवं सुधार की कामना होती है।

बीज-शब्द- व्यंग्य, यथार्थ, विसंगति, विद्रूपता, विकृति, प्रहार, सामाजिकता, सृजनशीलता, शोषण, चरित्रहीनता, रचनात्मकता, संवेदनशीलता, आर्थिक विषमता आदि।

मूल आलेख

व्यंग्य साहित्य का यथार्थकारी रूप है। सामाजिक जीवन में घटित घटनाएं एवं प्रसंग ही इसका कथ्य हैं। समाज मे घटित घटनाएं ही व्यंग्य को प्रेरक भूमि प्रदान करती हैं। ये घटनाएं बड़ी विकृत होती हैं, अर्थात जो नहीं होना चाहिए वो होता देख एक सृजनशील ईमानदार कलाकार के अंतस में एक प्रकार की हलचल का निर्माण होता है। अत: वह चुप नहीं रह पाता और जब वह अपने मन की अकुलाहट को संयमित ढंग एवं कलापूर्ण माध्यम से अभिव्यक्त करता है तो उसकी यह अभिव्यक्ति व्यंग्य का रूप ले लेती है। इस तरह वह व्यंग्य में नास्ति में अस्ति का भाव देखने लगता है।

व्यंग्यकार जब समाज में व्यक्ति के व्यवहार में अर्थात कथनी और करनी में अंतर देखता है तो वह इसे दूर करने की कोशिश करता है। परंतु जब इसे दूर कर आदर्श स्थिति के निर्माण करने में अपने आप को असमर्थ पाता है तो उसके मन में क्षोभ और निराशा पैदा होती है और फिर इस निराशा और क्षोभ की प्रतिक्रिया प्रहारक व्यंग्य के रूप में प्रस्फुटित होती है। यहां सीधे प्रहार न कर पाने की विवशता अवश्य है, किंतु सीधे मार की अपेक्षा बौद्धिक मार अधिक कारगर साबित होती है ।

विसंगतियों एवं विद्रूपताओं के बीच रहकर एक संवेदनशील ईमानदार और जागरूक कलाकार अपना मानसिक संतुलन बनाये रखने के लिए व्यंग्य का सहारा लेता है। इस संदर्भ में डा. बालेंदु शेखर तिवारी लिखते हैं- "आज का जीवन व्यंग्य रचनाओं में ही सबसे अधिक सफलता के साथ संग्रहित है। देश जितना बिका हुआ है और इसके खण्ड-खण्ड होने की प्रक्रिया जितनी मार्मिक है, वह विभीषिका को न दुखी होकर, न रोकर चित्रित किया जा सकता है और न इन सारी विद्रूपताओं से आँखें मूंदकर ही जिया जा सकता है। वातावरण की इस अन्तर्विरोधपूर्ण स्थिति को अभिव्यक्त करने का संभवत: यही सबसे उपयुक्त रास्ता रह गया है कि इस पर व्यंग्य किया जाये।"[1] ऐसी दशा में व्यंग्य भावपूर्ण कविता का सृजन नहीं हो सकता, क्योंकि कविता में जहाँ एक प्रकार की सौम्यता, मृदुलता, आल्हादता का बोध होता है; वहीं व्यंग्य कठोरता, निर्ममता और आवेश का प्रतिरूप होता है। इसलिए यदि हम व्यंग्य को विचार की विधा मान लें तो यह अत्युक्तिपूर्ण नहीं होगा।

व्यंग्य में जब अमानवीय तथा मनुष्य विरोधी विसंगतियों पर प्रहार करने की भंगिमा को अपनाया जाता है, तब यह हास्य से बहुत दूर हो जाता है। व्यंग्य मानवीय गुणों में पतनशीलता को उजागर करता है। आर्थिक विषमता, चरित्रहीनता, सबल द्वारा निर्बल पर अत्याचार, शोषण आदि यह सब बातें मानव-विरोधी होती हैं। व्यंग्य इन्हें अपनी प्रहारात्मकता से समूल उखाड़ फेंकने के लिए आकुल-व्याकुल होता है। व्यंग्यकार की इस विसंगति विरोधी प्रहारात्मक शक्ति के बारे में डॉ. सुरेश माहेश्वरी कहते है- "व्यंग्यकार आँखें तरेरता हुआ, हंटर हिलाता हुआ और होठों पर कुटिल मुस्कान लिए गलत रीतियों, पथभ्रष्ट पीढ़ियों और तरक्की की बेबुनियाद सीढ़ियों को झकझोरता है, उनकी खोखली नींवों को और खोखला करता है तो दूसरी ओर पराजित ईमानदारों और खस्ताहाल उच्च मान्यताओं की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करता है।"[2]

व्यंग्य की इसी विशेषता ने एक ओर जहाँ निराला, नागार्जुन, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी जैसे समर्थ व्यंग्यकार दिये; वहीं दूसरी ओर रामधारी सिंह 'दिनकर', मैथिलीशरण गुप्त जैसे राष्ट्रभक्त कवि भी व्यंग्य से

प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाए और वे न चाहते हुए भी तीखी व्यंग्यात्मक रचनाएँ लिखने को मजबूर हुए। व्यंग्य विधा सर्वाधिक लोकप्रिय होने के साथ-साथ सर्वाधिक विवादास्पद भी रही है। यह वाद दो तरह का है- एक तो व्यंग्य को हास्य से जोड़कर देखा जाता है। इससे यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि व्यंग्य में हास्य की मात्रा कितनी हो? और दूसरा यह है, कि व्यंग्य विधा नहीं है यह तो एक शैली मात्र है। इन विवादों के परिणाम स्वरूप व्यंग्य का और व्यंग्य सृजनकर्ता का भली प्रकार मूल्यांकन नहीं हो पाया। व्यंग्य तो उपेक्षित रहा ही साथ में लेखक भी रहा। समीक्षा के मानदण्ड, व्यंग्य के शास्त्रीय पक्ष और व्यंग्य के स्वरूप पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। व्यंग्य के साथ हास्य जुड़ा तो इससे अनेक भ्रांतियाँ पैदा हुईं। हास्य और व्यंग्य के मध्य मात्र हाइफन होने के कारण हल्की-फुल्की हास्य रचनाओं और गंभीर वैचारिक व्यंग्य रचनाओं को एक ही पक्ति में बिठाया गया। जिस कारण इस स्थिति से स्वयं व्यंग्यकार भी असंतुष्ट हुए। श्रीलाल शुक्ल लिखते हैं- "हिंदी में व्यंग्य के साथ सबसे बड़ा व्यंग्य यह है कि उसे प्राय: हास्य के साथ जोड़कर उसका सहभागी या अनुपूरक मान लिया जाता है।"[3]

रवीन्द्रनाथ त्यागी ने हास्य के माध्यम से व्यंग्य लिखा है फिर भी वे भी लिखते हैं- "हास्य और व्यंग्य अलग-अलग चीजें हैं और दोनों में शुद्ध रूप से पृथकता रखते हुए भी कलाकार प्रथम श्रेणी की रचनाएँ दे सकता है।"[4] इस तरह से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हास्य और व्यंग्य दोनों स्वतंत्र विधाएँ हैं।

व्यंग्य हास्य की तरह अस्थाई नहीं है, क्योंकि हास्य में क्षणिक आवेश होता है और वह ठहाके लगाकर आनन्द की प्रतीति कराता है। इसके बाद हम सामान्य हो जाते हैं, परंतु व्यंग्य में हास्य के जैसा क्षणिक आवेश नहीं होता; बल्कि उसमें ऐसी तिक्तता होती है, जो जलन के साथ आनंदानुभूति देती है। यही कारण है कि व्यंग्य को पढ़ते ही चेतना में हलचल मच जाती है और कही गई बातों पर चिंतन के लिए पाठक विवश हो जाता है। "अच्छा व्यंग्य सहानुभूति का सबसे उत्कृष्ट रूप होता है।"[5]

एक ओर व्यंग्य में आलम्बन के प्रति जहाँ आक्रोश का प्रबल भाव होता है; वहीं दूसरी ओर पीड़ितों, शोषितों तथा गरीब दुर्बल लोगों के प्रति करुणा का भाव भी होता है। प्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की रचना 'मुन्ने भैया की बारात में' में बारातियों के उज्जड़पन, कारनामें और वर पक्ष की फिजूल माँगों आदि के चित्रण में जहाँ व्यंग्यकार का इनके खिलाफ आक्रोश फूटा है; वहीं लड़की के पिता की मजबूरी, असहायता और अंत में लड़की के पिता के द्वारा प्राण त्याग के चित्रण ने लेखक के मन में करुणा का भाव भी जगाया है।

साहित्य परिवेश की अनुभूत्यात्मक अभिव्यक्ति है। यह अभिव्यक्ति बहु-आयामी होती है। व्यंग्य की प्रेरणा भी आस-पास के परिवेश से ही जन्म लेती है। व्यंग्य में यह परिवेश असंगत, विद्रूप तथा भयावह की अनुभूत्यात्मक प्रतिक्रिया है। व्यंग्यकार के मन में आलंबन के प्रति घृणा और द्वेष विद्यमान रहता है। जो पूर्ण रूप से निकृष्ट और जघन्य है, वह व्यंग्य की प्रेरणा कदापि नहीं बन सकता। किन्तु जहाँ कहीं भी कुछ थोडी बहुत सुधार की संभावना है, उस पर व्यंग्य जम कर प्रहार करता है। अत: व्यंग्यकार की प्रेरणा विद्रूपता पर शोधन और परिवर्तन है। व्यंग्यकार मूढ़ता और जड़ता का उपहास करता है। अनाचार की भर्त्सना करता है और उन्हें समूल उखाड़ फेंकने का प्रयास करता है।

प्राय: यह कहा जाता है कि 'व्यंग्य का काम प्रहार करना है ध्वंस करना नहीं है'। क्योंकि व्यंग्यकार अपने उद्देश्य में तभी सफल हो सकता है, जब वह अपने लक्ष्य को साफ करे और चमकाए। एक व्यंग्यकार अपने व्यंग्य के माध्यम से माइक्रोस्कोप की तरह दुर्बलताओं को बृहदाकार रूप में लाकर हमारे सामने रखता है। ढोंग एवं पाखंड को अनावृत्त करता है। विसंगतियों की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। व्यंग्य के संबंध में परसाई लिखते हैं- "व्यंग्य में जितना व्यापक परिवेश होगा, जितनी गहरी विसंगति होगी और जितनी तिलमिला देने वाली अभिव्यक्ति होगी, व्यंग्य उतना ही सार्थक होगा।"[6]

हरिशंकर परसाई ने 'तिरछी रेखाएँ की भूमिका' व्यंग्य क्यों, केसे और किसलिए में व्यंग्य की व्युत्पत्ति का मूल कारण संगतियों सामजस्यों एवं अनुपातों में उत्पन्न गड़बड़ को माना है। क्योंकि "जब संगति में गड़बड़ होती है, तब चेतना में चमक पैदा होती है। इस चमक से हँसी भी आ सकती है और चेतना में हलचल भी पैदा हो सकती है।"[7]

हरिशंकर परसाई ने अपने व्यंग्य-कर्म की प्रेरणा के बारे में कहा है- "व्यंग्य विसंगतियों में से जन्म लेता है। सवाल यह है कि कोई लेखक अपने युग की विसंगतियों को कितने गहरे खोजता है। उस विसंगति की व्यापकता क्या है और वह जीवन में कितनी अहमियत रखती है। मात्र व्यक्ति की ऊपरी विसंगति- शरीर रचना कभी, व्यवहार की, बात के लहजे की एक चीज है और व्यक्ति तथा समाज के जीवन की भीतरी तहों में जाकर विसंगति को खोजना, उन्हें अर्थ देना तथा उसे विरोधाभास से पृथक करके जीवन से साक्षात्कार कराना दूसरी बात है। पाखण्ड के बारे में कहानी कविता और कई तरह के लेख लिखे जाते हैं।"[8]

व्यंग्य की विशेषता है कि यह अपने कथ्य के अनुरूप सभी साहित्यरूपों को अपने भीतर समेटने की सामर्थ्य रखता है। इस कारण वह अन्य सभी विधाओं से भी अलग है। व्यंग्य की इस विशेषता को लोग व्यंग्य की खामी मान लेने की भूल कर बैठते हैं और इसी कारण वे व्यंग्य को एक स्वतंत्र विधा मानने में हिचकिचाते हैं। कुछ व्यंग्यकार तो यह भी मानते हैं कि यदि व्यंग्य स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित हुआ तो उसकी व्यापकता को सीमित कर दिया जाएगा। किन्तु स्वयं परसाई ने स्वीकार किया है कि व्यंग्य का दायरा इतना विस्तृत है कि वह सब विधाओं को ओढ लेता है। परसाई इस विषय पर इस तरह अपने विचार प्रकट करते हैं- "व्यंग्य लेखक को यह शिकायत नहीं होनी चाहिए कि विश्वविद्यालय (का आलाकमान) व्यंग्य को विधा क्यों नहीं मानते। उन्हें संतोष करना चाहिए कि व्यंग्य का दायरा इतना विस्तृत है कि वह सब विध ाओं को ओढ़ लेता है।"[9]

व्यंग्य सुंदर की अपेक्षा कुरूप को देखता है। कुरूपता को हटाना ही व्यंग्य की परिवर्तनकामी वृत्ति है। फलत: भाषा के शब्दों के प्रचलित अर्थ तथा परम्परागत स्वभाव को व्यंग्य बदल डालता है।

सामान्य भाषा और व्यंग्य भाषा में यह अंतर है कि सामान्य भाषा अभिधात्मक होती है. कोशगत अर्थ के 'आगे उसकी गति नहीं है। वह सूचना सम्प्रेषण का कार्य करती है। जबकि व्यंग्य भाषा लक्षणा और व्यंजना की होती है जो विसंगतियों पर प्रहार आक्षेप आलोचना, भर्त्सना आदि का कार्य करती है, इसी बिंदु पर व्यंग्यभाषा विशिष्ट हो जाती है।

वाक्य विन्यास की दृष्टि से भी व्यंग्य के तेवर विशेष होते हैं- "अध्यापकों से बढ़कर न कोई कायर है, न कामचोर है, न बेईमान है, इसलिए उनके ऊपर नियंत्रण करने वाले लोग ऐसे हों जो शिक्षा के अलावा जिन्दगी के किसी भी क्षेत्र में घिसे हुए लोग हों। सामान्य ज्ञान की उधार ली हुई चालू पूँजी के बल पर प्रत्येक विशेष ज्ञान की बखिया उधेड़ने में समर्थ हों और ऐसे लोग हों जो मरी हुई समस्या को भी आश्वासनों के बल पर जिलाये रखने का तंत्र-मंत्र जानते हो।"[10]

लघुवाक्य के माध्यम से व्यंग्यकार अपने वक्तव्य को सूत्र जैसा प्रभावी बना लेता है। जैसे आज के भ्रष्टाचारी लोग हमेशा से थे और आगे भी रहेंगे। रागदरबारी में वैद्यजी के माध्यम से यही बात कही गयी है- "वैद्यजी थे, हैं, रहेंगे।"[11]

इस बिंदु पर यह सिद्ध होता है कि व्यंग्य के लिए विशिष्ट भाषा का होना आवश्यक है। व्यंग्य भाषा के वैशिष्ट्य को लेकर डॉ. श्यामसुन्दर घोष का कथन है- "व्यंग्य की भाषा में धार और नोंक दोनों जरूरी है। इससे कभी वह नश्तर लगाती है तो कभी खंजर चुभाती है; इसमें जहाँ छल, छदम या बनाव-श्रृंगार नहीं चल सकता; वहाँ छैल-छबीली घूंघट वाली लाजवती भाषा का भी कोई काम नहीं है। वह तो ऐसी हो जो केवल लेखक की मन्शा से कदम से कदम मिला कर ही नहीं चले, वरन शिकारी कुत्ते की तरह मालिक की मन्शा को पहले ही भांप ले और आगे ही आगे छलांग मारती जाए और विसगतियों को सूंघकर झपाटे से दबोच ले। यहाँ भाषा न तो जुल्फे सँवारती है, न बालों के छल्ले बनाती है। और तो और बंगाली लडकियों के बालों की तरह लहराने और फहराने का मौका भी नहीं है।"[12]

व्यंग्यकार का धर्म सत्य का उद्घाटन करना है, किन्तु उसके सत्य उद्घाटन के पीछे गहरी मानसिक पीड़ा होती है। यदि व्यंग्यकार किसी उद्देश्यहीन सत्य का उद्घाटन करता है तो समाज के लिए बड़ी विकट स्थिति पैदा हो सकती है। श्री केशव चंन्द्र वर्मा के अनुसार, "सामाजिक विद्रूप के प्रति यदि कोई प्रतिक्रिया व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त न की जा सकी तो शायद यही विकल्प रह जाएगा कि व्यक्ति एंग्रीमैन होकर जेल खाने और पागल खाने के बीच घूमता रह जाएगा।"[13]

श्री हरिशंकर परसाई का मानना है कि व्यंग्य जीवन के सापेक्ष होता है निरपेक्ष नहीं। क्योंकि व्यंग्यकार अन्य अपेक्षा अधिक संवेदनशील होता है। उसे जीवन की समझ भली प्रकार होती है। वह जीवन की उधेड़बुन को अच्छी तरह से समझता है। वे कहते हैं- "व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों, और पाखंडों का पर्दाफाश करता है। यह नारा नहीं है। मैं कह रहा हूँ कि जीवन के प्रति व्यंग्यकार की उतनी ही निष्ठा होती है जितनी किसी गंभीर रचनाकार की। बल्कि और ज्यादा ही। यह जीवन के प्रति दायित्व का अनुभव करता है।"[14]

श्री परसाई व्यंग्य द्वारा केवल सुधार की भावना का समर्थन ही नहीं करते, बल्कि वह इसे बदलाव का अस्त्र भी मानते हैं। वे इस पर कहते हैं कि, "व्यंग्य रचना केवल ध्वंस के लिए नहीं, कभी-कभी सुधार के आशय से भी की जा सकती है।"[15]

व्यंग्य का अर्थ है विरूपता। विरूपता दोष को हम असंगति दोष भी कह सकते हैं। असगतियों का

दिग्दर्शन ही व्यंग्य का कथ्य है। इसी कारण उसका स्वभाव डक मारने वाली ततैया-सा है। असंगति दिग्दर्शन के कारण उसकी दृष्टि चंद्रमुखी की तरफ न जाकर करेलामुखी पर जाती है। अत: व्यंग्य असंगति दोष के कथ्य से बनता है।

व्यंग्य का प्रहार जिस पर होता है, यदि वह व्यंग्य की चोट से तिलमिला जाता है और अपने आपको लज्जित महसूस करता है, तभी व्यंग्य का सुधारात्मक उद्देश्य पूर्ण हो सकता है, अन्यथा नहीं। जिस बात को कहने का साहस आम आदमी नहीं कर सकता, व्यंग्य उसे स्पष्ट रूप में कह देता है। इस अर्थ में व्यंग्य समाज का स्वर होता है। व्यंग्य व्यक्ति को उसको भूलों के प्रति ध्यान आकृष्ट कर उसकी भर्त्सना करता है, जिस कारण व्यक्ति लज्जा का बोध करता है।

डॉ रामविलास शर्मा व्यंग्य की इस लज्जा-शक्ति के रहस्य का उद्घाटन करते हुए लिखते हैं "व्यंग्य का मूल्य इसमें है कि वह हमें अपनी कमजोरियों से समावेश करता है। जहाँ-जहाँ लोग अपनी पतित मनोवृत्तियों से संतोष कर बैठ रहे हैं. वर्तमान प्रतिभाशाली लेखकों ने अपने तीव्र व्यंग्य बाणों से उन्हें जगाया है। अकर्मण्यता आलस्य, आत्मसंतोष के फैले जाल को छिल-भिन्न करने के लिए लेखक के हाथ में व्यंग्य से अधिक सुन्दर अस्त्र कुछ भी नहीं हो सकता। मनुष्य को जब मर्मस्थलों में आहत अपनी निर्बलताओं का ज्ञान होता है तब उन्हें दूर कर अपने को दूसरों के सामने सबल सिद्ध करने का वह प्रयत्न करता है।"[16]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि व्यंग्य का प्रयोजन समाज सुधार या असंगतियों को नष्ट करना है। यदि उसमें यह लक्ष्य निहित नहीं है तो व्यंग्य मात्र निंदा-आक्रोश बन जाएगा अथवा मनोरंजन का सस्ताआयाम मात्र बनकर रह जाएगा। इस तरह व्यंग्य एक स्वतंत्र विधा है जिसमें असंगति विशिष्ट भाषा और एक लक्ष्य का होना आवश्यक है।

संदर्भ सूची:

1. बालेंदु शेखर तिवारी, हिंदी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य एवं व्यंग्य, अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर, 1978, पृष्ठ 65
2. डा. सुरेश माहेश्वरी, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यग्य का मूल्याकंन, विकास प्रकाशन कानपुर, 2021, पृष्ठ 124
3. श्रीलाल शुक्ल, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, ज्ञान भारती प्रकाशन दिल्ली, 1989, पृष्ठ 9
4. रवीन्द्रनाथ त्यागी, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, डायमंड पाकेट बुक्स, 2012, पृष्ठ 25
5. डा. सुरेश माहेश्वरी, व्यंग्यालोचन का इतिहास, विकास प्रकाशन कानपुर, 2021, पृष्ठ 22
6. हरिशंकर परसाई, अपनी अपनी बीमारी, राजपाल प्रकाशन दिल्ली, 2000, पृष्ठ 49
7. हरिशंकर परसाई, निठल्ले की डायरी, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 2019, पृष्ठ 20
8. हरिशंकर परसाई, निठल्ले की डायरी, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 2019, पृष्ठ 26
9. हरिशंकर परसाई, अपनी अपनी बीमारी, राजपाल प्रकाशन दिल्ली, 2000, पृष्ठ 14
10. विद्या निवास मिश्र, मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, पृष्ठ 78
11. श्रीलाल शुक्ल, राग दरबारी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृष्ठ 37

12. श्यामसुंदर घोष, व्यंग्य विवेचन, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली 1983, पृष्ठ संख्या 45
13. सप्ताहिक धर्म युग, दिनांक 6 मार्च 1969, पृष्ठ 61
14. हरिशंकर परसाई, सदाचार का ताबीज, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2014, पृष्ठ 9
15. बेब्सटर्स थर्ड न्यू इंटरनेशनल डिक्सनरी, पृष्ठ 2016
16. आर. ए. एन्थविस्टले, दि स्टडी आफ पोइट्री, पृष्ठ 70

दिनकर के काव्य में स्त्री चेतना

डॉ0 विकास कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़ (उ0प्र0)

कवि 'दिनकर' का जीवन और उनका समय परतंत्र और स्वतंत्र भारत के समयावधि में अलग-अलग रूपों में परिलक्षित होता है। दिनकर ने वर्ष 1922 अर्थात् 14 वर्ष की आयु में कविता लिखना प्रारम्भ किया था। वर्ष 1920 भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का महत्वपूर्ण वर्ष था। इससे पूर्व 'जलियांवाला बाग' हत्या-काण्ड से पूरे देश में सनसनी फैल चुका था। लोग मरने और कुछ कर गुजरने के लिए मचल रहे थे। वर्ष 1917 के 'असहयोग आन्दोलन' का पहला और सफल प्रयोग भी कवि के जन्म-प्रदेश (बिहार) में हो चुका था। वर्ष 1920 में गांधी जी का सत्याग्रह पूरे देश में प्रारंभ हो गया था। उससे देश के नवयुवकों में नवचेतना उत्पन्न हुई। चौदह वर्ष की आयु कवि की काव्य-यात्रा के आरम्भ के लिए, न बहुत छोटी ही थी और न ही बहुत बड़ी थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले के दो सौ वर्ष का इतिहास कलह, षडयंत्र, द्वेष, दमन, शोषण, उत्पीड़न की घटनाओं का इतिहास है। सत्रहवीं शताब्दी से ही सोने की चिड़िया कहे जाने वाले भारत पर मुगल, तुर्क, अफगान, ब्रिटिश सबकी कुदृष्टि थी। वे उसकी द्याप्ति हेतु बड़े-बड़े रेगिस्तान व समुद्र को पार कर आते रहे। इनके विनाशकारी प्रभाव से उत्पन्न परिस्थिति के गर्भ से ही उस भयावह राजनीतिक भूचाल ने जन्म लिया जिसकी चपेट में पड़कर धनधान्य सम्पन्न देश उजड़ गया।

वय कम होने के बावजूद भी कवि ने अपने जीवन-काल में मात्रा राजनीतिक शतरंजी बाजियों को ही नहीं देखा, अपितु देवी-प्रकोपों-दुर्भिक्ष, अकाल, महामारी, पिता की अकाल मृत्यु और जमींदारों के अन्याय आदि को भी व्यक्तिगत रूप से झेला था। गांधी, मौलाना, शौकतादि के दर्शन उन्होने कम-वय में किये। वर्ष 1922 में उनकी लेखनी से पहली कविता निःसरित हुई और वर्ष 1924 में उनकी प्रथम प्रकाशित रचना सामने आई। ये कवितायें तत्कालीन राष्ट्रीयता और सामाजिक दुर्दशा पर आधारित थीं। इन सबसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने जब अपनी काव्य-यात्रा आरम्भ की उस समय देश एक संक्रमण परिस्थिति से गुजर रहा था। तब से लेकर वर्ष 1946 तक यह स्थिति यद्किचिंत् अपरिवर्तित रूप में चलती रही। कवि अपनी युगीन परिस्थितियों से इतना प्रभावित रहा कि उसने कल्पना की रंगीनियों को बिल्कुल ही छोड़ दिया। वर्ष 1920 ई0 में कवि की 'वीर बाला' (अप्राप्य कविता) प्रकाश में आयी जिसे उन्होंने नवीं कक्षा में ही रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' काव्य अनुकरण पर लिखी थी। कहा जा सकता है कि कवि की दृष्टि में नारी का ओजस्वी रूप ही उस समय ग्राह्य था किन्तु बाद में कवि का कोमल हृदय तत्कालीन छायावादी चेतना से भी अनुप्राणित हो गया। मैथिलीशरण गुप्त का प्रभाव तो निर्विवाद रूप से कवि पर है और इन प्रभावों को कवि ने स्वयं भी स्वीकार किया है।

जब कोई देश पुनरूत्थान के पथ पर अग्रसर होता है तब अतीत गौरव के पृष्ठों में संरक्षित प्राचीन सांस्कृतिक तत्व उसे आगे बढ़ाने में सहायक हो जाते हैं। भारत में भी नवीन उत्थान की किरणें फैलने लगीं। इस प्रकार अतीत के मूल्यों के प्रति नवजागरण की भावना का प्रादुर्भाव हुआ।

'दिनकर' का सर्जन-शील मस्तिष्क तत्कालीन उक्त नवीन चेतना से प्रभावित हुए बिना न रह सका। फलतः प्राचीन भारत के महत्वपूर्ण पुराकथाओं को आधार मानकर अपनी युगीन चेतना की अभिव्यक्ति के लिए 'दिनकर' ने काव्यों का सर्जन प्रारम्भ किया। इस प्रसंग में उनके कुछ तो ग्रन्थ और कुछ सुलभ काव्य द्रष्टव्य हैं। 'संस्कृति के चार अध्याय' और 'हमारी सांस्कृतिक एकता' ये दोनों गद्यग्रन्थ 'दिनकर' के विवेकपूर्ण दृष्टिकोण को व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार 'दिनकर' ने 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी' और 'उर्वशी' आदि को अतीत की पुराकथाओं के आधार पर सर्जित कर युग की भावनाओं को उसके परिप्रेक्ष्य में रखकर अभिव्यक्ति दी है। मुक्तक रचनाओं में भी यत्र-तत्र प्रसंगानुकूल अतीत की गौरव-गाथा व्यक्त हुयी है। उन्होंने स्त्री-चरित्र और स्वरूप को उद्‌भासित करने के लिए पौराणिक गाथाओं के साथ-साथ इतिहास से सम्बंधित यत्र-तत्र बिखरे पड़े तथ्यों एवं पात्रों का भी संचयन किया है। इन्हीं तथ्यों को देखकर शिवबालक राय का 'दिनकर' अतीत-प्रेम के सम्बन्ध में कथित मत द्रष्टव्य है "दिनकर' के काव्य में अतीत को बाजी मिली है। इतिहास साकार हो उठा है।"

हिमालय', 'कस्मै-देवाय', 'समाधि के प्रदीप' 'वैभव की समाधि', 'पुरुष-प्रिया' आदि सभी कविताओं में अतीत की अनुगूंज ही सुनाई देता है।' 'इतिहास के आंसू' कवि की दस कविताओं का संग्रह है। इनमें गौरवशाली इतिहास का मोह भावी की प्रेरणा लेकर उपस्थित हुआ है। उन्होंने स्वर्ण अजिर के खण्डहर' से मुक्ताओं का चयन कर साहित्य जगत को अक्षय उपहार दिया है।

'दिनकर' के अतीतानुराग को उनकी नारी-भावना के संदर्भ में ही विवेचित करना आवश्यक है। 'दिनकर' ने अतीत की सतियों के त्याग एवं पति-भक्ति को वर्तमान नारी-जाति के समक्ष रखकर नारी-आदर्श को परिभाषित किया है। साथ ही साथ वे नारियों के प्रति हुए अन्याय को याद कर नारी-जाति का ध्यान उनकी दयनीय स्थिति की ओर आकर्षित करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द के उद्‌गार- भारत! भूलना नहीं- तुम्हारी नारी जाति का आदर्श सीता, सावित्री अंर दमयंती हैं। भूलना नहीं- तुम्हारी समाज विराट महामाया की छायामात्र हैं- से प्रभावित कवि की महत्वपूर्ण रचना वर्ष 1935 में प्रकाशित हुई। उक्त पुस्तक में संकलित 'राजा-रानी' कविता में सीता, शकुंतला आदि के प्रति कवि-हृदय की संवेदना प्रकाशित हुई है। वह नारी को इस अन्यायपूर्ण जीवन से उबारने हेतु अपना पौरुष प्रदान कर उन्हें सबल एवं सक्षम बना देना चाहते हैं।

इतिहास के पृष्ठों पर चमकते नारी पात्रों को काव्य-सर्जना से उद्‌धृत करने की प्रवृत्ति 'दिनकर' में स्पष्ट परिलक्षित होती है। 'दिनकर' नारी को पुरुष से अधिक आत्म-सम्मान-भरा एवं ओजस्वी मानते हैं।

पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता के विस्तार के साथ भारतीय मस्तिष्क में जीवन-मूल्यों को नई दृष्टि से विचारने की प्रेरणा जगी। भारतीय चिन्तनशील मस्तिष्क ने वैज्ञानिक अन्वेषणों एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से प्रभावित होकर स्वर्ग, नरक, मुक्ति आदि के सम्बन्ध में प्रचलित धारणा के विपरीत चिन्तन कर यह कहना

प्रारम्भ कर दिया कि ये सभी अन्ध-विश्वास मूलक धारणाएं हैं। सभ्यता के विकास के साथ ही साथ मनुष्य की ईश्वर के प्रति आस्था भी खण्डित हो गयी। परिणामत: ईश्वर, धर्म और भक्ति आदि के सम्बन्ध में चिन्तन भी गौण हो गए। इस मनोवृत्ति का प्रभाव तत्कालीन समूचे चिन्तन पद्धति पर पड़ा। नारी के सम्बन्ध में विचार करने का जो दृष्टिकोण था, वह भी परिवर्तित हो गया। भक्ति कालीन नारी भक्ति के लिए बाधक सिद्ध हो चुकी थी। रीति-काल के कवियों ने उसे भोग का आश्रय मान कर उसकी मात्र आंगिक छटा का निरूपण किया था। नई मनोवृत्ति से परिचालित नारी इन दोनों भावनाओं से मुक्त होकर अपने अनेक रूपों में प्रस्तुत हुयी है। इसकी सम्यक व्याख्या करने के पूर्व यहां संक्षेप में यह निर्देशित कर देना आवश्यक है कि किस प्रकार नयी मनोवृत्ति से परिचालित कवियों की चेतना के विविध स्तर निरूपित होते हैं। उन्हीं वृत्तियों के संदर्भ में तत्कालीन कवियों का नारी के प्रति दृष्टिकोण भी नए आयाम में प्रस्तुत होता है।

कवि हरिवंश राय 'बच्चन' देवों के आवास' पर संदेह प्रकट करते हैं। परन्तु भारतीय संस्कृति के प्रति आस्थावान 'दिनकर' मानव मन में ही देवता और प्रेत की कल्पना करते हैं। देवता मन को सीधे मार्ग पर ले जाता है तो प्रेत की गति सदैव उल्टी होती है। वह मनुष्य को उल्टे मार्ग पर ही ले जाता है। इन्द्रियों के निग्रह की प्रेरणा 'मन का प्रेत' ही देता है।

लेकिन मन का देवता कभी भी जीवन को ऐसा उल्टा पाठ नहीं पढ़ाता है। आंख, कान, नाक हमने इसलिए नहीं पाया है कि वे 'दमन-नीति' के दण्ड से मार खाती रहे, अपितु उनका स्वाभाविक शमन ही जीवन-पथ को सहज और सुगम बनाते हुए मन को देवता बनाता है।

मानव-मन के देव और प्रेत की कल्पना के उपरान्त 'दिनकर' नई चेतना में स्वर्ग से पृथ्वी, अपार्थिव तत्व से पार्थिव तत्व एवं प्रणय की लोक-भूमि को महत्ता प्रदान करते हुए उसके औदात्य का निरूपण करते हैं। भक्ति-काल में नारी के प्रणय में बन्धन था परन्तु आधुनिक मनोवृत्ति से परिचालित होने के कारण 'दिनकर' ने नारी-प्रणय को महत्वपूर्ण मानते हुए उसे आह्लाद और आनन्द की अनुभूति का प्रमुख हेतु माना है।

'दिनकर' ने प्रणय चेतना को अध्यात्म चेतना के समकक्ष माना है। प्रणयानुभूति के लिए आश्रय रूप में नारी प्रमुख है। इसलिए इनकी प्रेरणा में प्रणय का जैविकीयधारातल महत्वपूर्ण है। इस जैविकीयता के कारण ही 'उर्वशी' स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरती है क्योंकि सूक्ष्म देह से ऐहिकयोग की सद्य: अनुभूति सम्भव नहीं हैं परिणामत: 'उर्वशी' काम और प्रणय की चेतना को अनुभव करने के लिए पृथ्वी पर पुरूरवा से सम्बद्ध होती है।

च्यवण ऋषि को संदर्भित करते हुए कवि 'दिनकर' ने नारी को 'तप: सिद्धि का पर्याय' कहकर वसुधा की सारी ललनाओं को मात्र गौरव ही नहीं प्रदान किया है बल्कि भक्तिकालीन नारी के तिरस्कार का प्रतिकार भी किया है।

यह कहा जा चुका है कि 'दिनकर' नारी की पार्थिव और अपार्थिव कल्पना साथ-साथ करते है भक्तिकालीन कवियों की नारी भक्ति में बाधक थी। कबीर ने कहा कि सुन्दर स्त्री जहाँ जलाई गई हो वहाँ नहीं जाना चाहिए क्योंकि उसकी अभूति के स्पर्श से ही अंग सुन्न हो जाएगा। इसके विपरीत रीतिकालीन कवियों ने नारी के नख-शिख का वर्णन 'कंचन को रंग फीको लगै झलके अति अंगत चारु गोराई' कहकर

किया है। लेकिन 'दिनकर' ने ऐन्द्रिय तत्व सम्पन्नता, रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि के आधार पर ही नारी का चित्रण किया है। उन्होंने नारी की उक्त भावनाओं को अस्वीकार करके मात्र उसके इन्द्रियातीत रूप को ही उभारा है। 'दिनकर' की नारी कहती है–

'दिनकर' की नारी दिव्य और प्रभामयी है। 'उर्वशी' की सुकन्या के इस कथन से यह ज्ञात होता है कि इन्द्रियातीत अनुभूति के लिए नारी के सम्मोहन से ऊपर उठकर हृदय की अतल गहराई में प्रवेश करके ही नारी के भीतर की नारी को पहचाना जा सकता है।

पश्चिमी शिक्षा तथा सम्पर्क की सुविधाओं की वृद्धि के साथ लोग पाश्चात्य सभ्यता एवं साहित्य से परिचित हुए। साथ ही इंग्लैंड आदि देशों की आश्चर्यजनक उन्नति और उसके विपरीत अपने देश की दुर्दशा देखकर लोग उससे प्रभावित भी हुए। तर्क–संगत और वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने परम्परागत अंधविश्वासों को तोड़ा। नए प्रभावों के कारण बुद्धिवादी विचारधारा का प्रसार हुआ। काव्य के विषय और अभिव्यक्ति पद्धति में रूढ़ात्मक आग्रह के विरूद्ध विद्रोह होने के कारण काव्याभिव्यक्ति और वस्तुओं को देखने की दृष्टि में भी परिवर्तन हो गया।

'दिनकर' का मानना है कि नारी के उत्थान से ही मानवता का भी उत्थान है। वह नारी की सामाजिक–स्थिति को मजबूत करके उसके अंदर ऐसी क्षमता उत्पन्न करना चाहते हैं कि उसके मनस्तेज के सम्मुख पुरुष आंख दिखाने और उसकी भावनाओं को ठेस पहुंचाने का साहस ही न कर सके।

बंगला के साहित्यकार पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित होकर अपनी रचनाएं कर रहे थे। इस प्रकार नवयुवकों के एक ऐसे वर्ग का सृजन हुआ जो अंग्रेजी काव्य, विशेषरूप से 19वीं शताब्दी के रोमांटिक काव्य से अत्यधिक प्रभावित था। ये साहित्यकार 'शैली', 'कीट्स', 'वर्ड्सवर्थ' आदि कवियों की भाव–प्रणाली को अपने बंगला गीतों में डाल रहे थे। हिन्दी के आधुनिक कवि भी पाश्चात्य– साहित्य से प्रभावित होकर रचनायें करने लगे। शिक्षा–क्षेत्र में बहुत दिनों से पिछड़े हुए उर्दू–भाषी भी आंग्ल–साहित्य के प्रभाव से अछूते नहीं रहे। वे पश्चिमी काव्य से गृहीत नवीन भावनाओं का समावेश अपने साहित्य में करने लगे।

सम्पूर्ण भारत में अंग्रेजी साहित्य के प्रति उत्पन्न प्रेम के फलस्वरूप आंग्ल साहित्य का अनुवाद विभिन्न भाषाओं में किया जाने लगा। अंग्रेजी भाषा के कालरिज एवं वर्ड्सवर्थ आदि कवियों की कविताओं का अनुवाद प्रत्येक मास 'सरस्वती' पत्रिका में छपने लगा।

धीरे–धीरे अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव सम्पूर्ण भारत पर बढ़ता ही गया जिसके फलस्वरूप अंग्रेजी भाषा की अच्छी–अच्छी पुस्तकों का अनुवाद भारत की विभिन्न भाषाओं में किया जाने लगा। आधुनिक कवियों ने तो अपनी साहित्यिक परम्परा की इतिवृत्तात्मकता और निर्जीव रूढ़ियों के विरूद्ध विद्रोह ही कर दिया।

आधुनिक कवियों में डॉ0 गोपाल शरण सिंह स्त्री शिक्षा के समर्थक तथा दहेज–प्रथा के विरोधी थे। वह स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन लाने के पक्षधर थे। आधुनिक कवियों श्री सुमित्रा नंदन 'पंत' की

कविता में अश्लीलता का अभाव है। वह नारी को उदारता की प्रतिमूर्ति तथा गार्हस्थ जीवन का प्राण मानते हैं। समस्त नारी–जाति के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए कहते हैं– 'अरी ओ मां! हमने है पिया तुम्हारे स्तन का उज्ज्वल क्षीर।'

स्त्रियों के प्रति देवि, मां, सहचरि, प्राण जैसी उदात्त भावनाओं की उदार वाणी 'पंत' जी से हिन्दी–काव्य–संसार को प्रथम बार प्राप्त हुई है।

स्वच्छन्दतावाद (रोमांटिसिज्म) का जन्म इंगलैंड में अठारहवीं शताब्दी के मध्य में काव्यगत रूढ़ियों, इतिवृत्तात्मकता, भावशून्यता, संकुचित सौन्दर्यो पासना, सीमित कल्पना के विरुद्ध विद्रोह में हुआ था। अठारहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में काव्य, समाज के धानिक वर्ग: क्लब, फैशन, दरबार,सभाओं आदि पर केन्द्रित था और उसमें प्रकृति तथा प्राचीन–कालीन जीवन की उपेक्षा थी। रोमांटिक कवियों ने इस परम्परा को तोड़ा। इनका ध्यान प्रगति, स्वच्छन्दता, मौलिकता और भविष्य की उपासना पर केन्द्रित था। रोमांटिक–काव्य का मूलाधार कौतूहल और सौन्दर्य प्रियता थी। सौन्दर्य के लिये वह उत्कठित और चकित जिज्ञासा से भरा रहता था। यह कवि स्थूलता अथवा यथार्थ से अधिक प्रकृति की ओर कोमल कल्पनाओं से आकर्षित हुआ। रूढ़िवादी काव्य के विपरीत यह काव्य आत्माभिव्यंजक है। इसीलिए यह भावों को प्रभावित करता रहता है।

भारतीय कवि भी उपरोक्त काव्यगत विशेषताओं के आकर्षण में जुड़ा रहा। सौन्दर्य की ओर वह आकर्षित तो हुआ किन्तु आलम्बन या उद्दीपन की रेखाओं को लेकर नहीं वरन् व्यक्तिगत सहज अनुभूति को लेकर। उसकी अनुभूति में आश्चर्य और कौतूहल–मिश्रित प्रेम का उदय हुआ। राजाओं, नायिकाओं को छोड़कर वह प्रकृति के अद्भुत विस्तार तथा व्यक्तियों की स्वाभाविक, सामाजिक परिस्थितियों से आकर्षित होने लगा।

कवि अपनी सामाजिक तथा आर्थिक यथार्थता के कारण दु:खवादी अवश्य था किन्तु अपने हृदय की संवेदनशीलता एवं उदारता के कारण रचनात्मक आदर्शवादी था। व्यक्तिवाद तथा अत्याभिव्यंजनावाद ही इसकी प्रमुख प्रवृत्ति है। यह भावना धीरे–धीरे इतनी अधिक बढ़ती गयी कि यह स्वयं में ही सिमटता चला गया। सन् 1914 से 1918 के द्वितीय महायुद्ध काल में जब कवि अत्यधिक आत्मकेन्द्रित हो गया तो सुख–दु:ख का अवलम्बन, 'मानसी सृष्टि' में पाने लगा। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्ति काम–प्रेरणा के फलस्वरूप शैशव में ही अपने प्रतिकूल लिंग के व्यक्ति का रूप निर्माण अपने अन्त:करण में कर लेता है। इस मूर्ति– कल्पना की कल्पनात्मक अभिव्यक्ति की शक्ति कलाकार में ही होती है।

कवि ने अपनी अन्तर्व्यथा सुनाने के लिए जिस 'अन्तर्वासिनी' का निर्माण किया उसे निज सगुण कल्पना' कहा है। यदि वह अन्तर्वासिनी की सृष्टि न करे तो वह अकेला होगा। फिर उसके गीतों को कौन सुनेगा? नि:शब्द रूप से स्मित द्वारा उसमें प्राणों का संचार कौन करेगा? 'दिनकर' के प्राणों के सर में यही निजसगुण कल्पना अर्थ प्रस्फुटित कमल की भांति विकसित–विहंसित है।

आंग्ल–साहित्य का एक प्रभाव और हुआ। द्विवेदी युग में रीति– काल की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न श्रृंगार के प्रति जो संकोच की भावना उत्पन्न हो गई थी, वह प्रेम के मुक्त चित्रों को देख कर दूर हो गयी। 'उर्वशी' तो मुक्त प्रेम का आख्यान है ही किन्तु 'रसवंती' से ही कवि 'दिनकर' ने पलकों की तूलिका से अपना मन

रंग डाला है। सभी कविताओं में सुनहरी इन्द्र धनुषी और कनकाम कल्पनाओं का रूप वायवीय धारातल पर दिखायी पड़ता है।

मैथ्यू आर्नाल्ड का कथन है, 'नारी की उत्पत्ति न तो पुरुष के पैर से हुई है, जिससे कि वह उसके द्वारा शासित होती रहे और न उसके सिर से हुई है जिससे कि वह उस पर शासन करे। उसकी उत्पत्ति पुरुष के वाम पार्श्व से हुई है जिससे कि वह उसकी सहयोगिनी बने, उसके नीचे रहकर उसके संरक्षण का उपयोग करे।'

पुरुष अपूर्ण है। यह कल्पित अज्ञात की खोज में लगा रहता है। इसके विपरीत प्रेममयी नारी पूर्ण है। पूर्ति के लिए उसे भटकना नहीं पड़ता। पुरुष जाति की रक्षा के लिए ही ईश्वर ने प्रत्येक पुरुष के साथ स्त्री को भेजा है। जीवन में उसका स्थान निश्चित है। उसे बनाना नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त मानवता की सबसे बड़ी शक्ति, सृजनशीलता नारी में ही है। पुरुष की अपेक्षा वह मानवता के अधिक निकट है। उसमें बुद्धि, चातुर्य, त्याग और संयम की प्रचुरता है।

पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित आचार्य चतुरसेन एवं मुंशी प्रेमचन्द के स्त्री–विषयक निम्नलिखित कथन अत्यंत महत्वपूर्ण हैं– आचार्य चतुरसेन की धारणा है कि पति के लिए पत्नी से सदा–सर्वदा अपना बाह्य और अंतर छिपा पाना केवल दुष्कर ही नहीं असम्भव भी होता है। इसी कारण नारी पुरुष के असंयमित व्यवहारों को लय प्रदान करती है। प्रेम उसकी सबसे बड़ी विभूति तथा शक्ति है। अपने इसी गुण के द्वारा वह पुरुष के पाशविक स्वभाव को भी बदल देती है। जीवन के संचय और पोषण के लिए प्राणों के शीपललेप के समान नारी का साहचर्य आवश्यक एवं अनिवार्य है।

मुंशी प्रेमचन्द की दृष्टि में 'स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान् है, शांति सम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरुष में जब नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में जब पुरुषोचित गुण आ जाते हैं तो वह कुलटा हो जाती है। नारी के पास दान देने के लिए दया है, श्रद्धा है, त्याग है।'

पाश्चात्य संस्कृति और साहित्य का प्रभाव ही रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा नारी के प्रति व्यक्त की गई उद्भावना को प्रकट करता है। उनकी नारी सम्बन्धी नई चेतना का प्राकट्य उनकी 'मानसी' जैसी काव्यकृति एवं उनके अन्य निबन्धों में हुआ है। इन पुस्तकों में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने स्त्री को विध ाता की अनुपम कलाकृति माना है। विधाता की इस अनुपम कलाकृति स्त्री सम्बन्धी उनके उद्गार धातव्य है, 'स्त्री तूने संसार के हृदय को अपने अथाह अश्रुओं से उसी प्रकार घेर रखा है जैसे समुद्र भूमण्डल को घेरे है।'

रवीन्द्रनाथ स्त्री का कार्य–क्षेत्र घर मानते हैं। उनका मानना है कि पुरुष और स्त्री का कार्य–क्षेत्र यदि एक हो जाय तो जीवन नीरस एवं आकर्षणहीन हो जाएगा। रवीन्द्रनाथ टैगोर की दृष्टि में स्वतंत्रता और अधिकारों के लिए किया जाने वाला विद्रोह श्रेयस्कर एवं लाभप्रद नहीं है। टैगोर स्त्री–दमन और उत्पीड़न के घोर विरोधी हैं। उनका मानना है कि सभ्यता मात्र पुरुष की ही कृति होकर नहीं चल सकती। नारी प्रेरित पुरुष मस्तिष्क ही उच्चतम कृतियों की सर्जना करता है। श्रमिक की तपस्या, वीर का शौर्य, लेखक–कवि की रचना और कलाकार की कृति इन सबके पीछे नारी की ही प्रेरणा का हाथ है। रवीन्द्रनाथ की भावनाओं का प्रतिफलन

हम उनके 'सांधय-गीत' से लेकर 'चैताली' तक की समस्त रचनाओं में पाते हैं।

रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में रवीन्द्रनाथ टैगोर की स्त्री-सम्बन्धी भावना का प्रभाव भी लक्षित होता है। रवीन्द्र ने नारी को जिस प्रकार कलात्मक सृष्टि माना है उसी प्रकार 'दिनकर' ने भी नारी को अपने समग्र रूप में विधि की अम्लान कलात्मक सृष्टि माना है।

'दिनकर' ने नारी के उक्त दोनों रूपों के लिए विधि की अम्लान कल्पना' और 'पुरुष दर्प को शमन करने वाली' का प्रयोग अपनी 'पुरुष-प्रिया' और 'उर्वशी' आदि जैसे ग्रन्थों में गम्भीरता और कुशलता के साथ किया है।

पश्चिम के स्त्री स्वतंत्रता की इस लहर का प्रभाव भारत पर भी पड़ा किन्तु भारत का स्त्री-आन्दोलन कई अंशों में पश्चिमी आन्दोलन से भिन्न था। यहाँ किसी नई स्थिति, अथवा नई प्रथा की स्थापना का प्रश्न भी नहीं था अपितु यह नारी की खोई हुयी प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने का और व्यवहार में लाने का मात्र आग्रह था। यह न तो प्रतिस्पर्धा के भाव से उठा न इसमें हिंसा का प्रयोग ही हुआ। इसीलिए भारतीय नारी आन्दोलन को पुरुष नेताओं का पूर्ण सहयोग मिला। पुरुषों का सहयोग पाकर ही सर्वप्रथम रमाबाई राना डे, सरला देवी चौधरानी, सरोजनी नायडू आदि ने राजनैतिक अधिकारों की मांग की।

स्त्री-आन्दोलन में निहित समानता और स्वतंत्रता की मांगों का दो प्रकार का प्रभाव आधुनिक काव्य पर स्पष्टतः दिखाई देता है। एक स्वर तो उन कवियों का है जो नारी के उत्थान और प्रसन्नता को देखने की कामना तो करते हैं लेकिन वे स्वतंत्रता और समानता को नारी के लिए अभिशाप मानते हैं। अयोध्या सिंह उपाध्याय की 'मनोवेदना' छेदी लाल कृत 'स्वतंत्र-वनिता-विनाश' में यही स्वर पाया जाता है।

राष्ट्र कवि 'दिनकर' उल्लिखित प्रथम स्वर का ही अनुमोदन करते हैं स्त्री आन्दोलन के प्रति उनका संतुलित दृष्टिकोण उनके इस कथन में दृष्टिगत है- 'स्त्री की प्रकृति कुछ ऐसी बनी है कि वह पुरुष की अधीनता में भी नहीं रह सकती न वह पुरुष से स्वतंत्र होकर ही संतोष प्राप्त कर सकती है। प्रकृति ने संघर्ष के सिवाय उन्हें एक-दूसरे से प्यार करने के लिए ही बनाया है। स्त्री-आंदोलन की सफलता के बाद भी स्त्री के जीवन को तृप्ति नहीं मिल सकी है। वह आज भी पुरुष की इच्छा के विपरीत कुछ करने में असमर्थ है। वह अपने 'स्व' को भुला बैठी है। स्वस्थ और सुन्दर रहकर उसे समाज को कुछ देना है इस बात की उसे चिन्ता ही नहीं है। आज यही भावना उसके विनाश का कारण बन गई है। नारीत्व के सारे गुण उससे विलुप्त हो चुके हैं। संतति उत्पन्न करके वह मां तथा पत्नी तो बन जाती है लेकिन आदर्श जननी तथा कुशल गृहिण ी नहीं बन पा रही है।

कवि सहज-प्रवृत्ति पर ही अधिक विश्वास करते हैं। वह जानते हैं कि स्त्री की सहज प्रवृत्ति क्रिया नहीं, क्षमा, शांति, करूणा और प्रेम है। स्त्री, नारी की स्वतंत्रता और सम्मान की सार्थकता वही है जहाँ उसका पूर्ण विकास हो सके। उसका सौन्दर्य उसकी सार्थकता पुरूष के अधिकारों को छीन लेने में नहीं अपितु उसे अपने आकर्षण से अधिकृत कर लेने में हैं।

स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में विशेष प्रयत्न बीसवीं शताब्दी में ही हुए हैं। 1916 में कर्वे ने पूना में 'वीमेन्स यूनिवर्सिटी' की स्थापना की। स्त्रियों में सामान्य शिक्षा-प्रचार के लिए अनेकों प्रयत्न किए गए। प्रजातंत्रवादी विचारों के फैलने से व्यक्तियों में असमानता का भाव नष्ट हो रहा था। प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री-पुरूष की समानता की मांग की जाने लगी और स्त्रियों के शिक्षित होने की आवश्यकता भी अनुभव की जाने लगी।

स्त्री-शिक्षा के विषय में 'दिनकर' के विचार बड़े ही स्पष्ट हैं। वे मानते हैं कि पुरूषों की भांति स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य स्थूल नहीं होना चाहिए। वे कहते हैं कि -'लेकिन खुशी की बात है कि भारत की देवियों की दृष्टि अभी इतनी स्थूल नहीं हुयी है। पढ़ी-लिखी औरतें भी पत्नी और माता बनकर जीने में ही अधिक संतोष मानती हैं। कुमारी बहने नौकरी तभी कबूल करती हैं जब वह सुकर और सुगम हों।

इसके विपरीत 'दिनकर' नारी की शिक्षा अथवा नौकरी को अन्य परिस्थितियों में भी बुरा नहीं समझते हैं। वह डाक्टरी अथवा इन्जीनियरिंग की उपाधि प्राप्त करने वाली महिलाओं के लिए केवल पत्नी बन कर घर में रहने का जीवन यथेष्ट नहीं मानते हैं क्योंकि जब उन्होंने विद्या अर्जित की है तो समाज के लिए उनके ज्ञान का सुनिश्चित उपयोग तथा प्रकाशन भी होना चाहिए। ऐसी नारियों के ज्ञान का उपयोग घर में नहीं परिवार-परिधि से बाहर निकल कर ही हो सकता है क्योंकि उसने अबलता सी कोमल, छुई-मुई सी लज्जालु, अवसर आदि विशेषणों से स्वयं को मुक्त करके यह सिद्ध कर दिया है कि उपलब्धियों से भरे उसके पास दो हाथ भी हैं।

आज स्त्री शिक्षा और उससे सम्बन्धित अनेक ज्वलंत एवं विचारणीय प्रश्न तथाकथित प्रगतिवादी समाज के सामने खड़े हैं कि क्या नारी आधुनिक युग में भी शिक्षा प्राप्त करने की उपयुक्त पात्र नहीं है? मेरे विचार से इस प्रकार के प्रश्न केवल हास्यास्पद ही नहीं अप्रासंगिक भी हैं क्योंकि अभी तक कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिला है कि मात्र सुशिक्षित नारियां जो अनपढ़ नारियों की अपेक्षा अधिक सफल मां अथवा पत्नी हो सकती हैं या पति के साथ बौद्धिक स्तर पर वार्तालाप कर सकती हैं। गृहस्थी की आधारशिला बुद्धि नहीं भावना है और इस बात की कोई गारन्टी नहीं है कि शिक्षित होने से भावनाओं का परिष्कार हो जाता है। मेरे विचार से मूर्ख और अनपढ़ दम्पतियों में उतने झगड़े नहीं होते जितने सुशिक्षित दम्पतियों के बीच प्रतिदिन होते रहते हैं।

निश्चित तौर पर कवि समझौता, सहनशीलता जन्य शक्ति को परिवार की सुख शांति के लिए आवश्यक मानता है। उसे विदुषी नारी से द्वेष नहीं है। पुरूरवा को उर्वशी पुष्प से अधिक सुन्दर लगती है लेकिन पुष्प सुन्दर होता है किन्तु मूक होता है। नारियां सुन्दर भी होती हैं और सवाक् भी। उसके बुद्धि और चिन्तन के हिलोर में बहता-बहता पुरूष लौकिक संसार की यात्रा कर आता है। इसीलिए उर्वशी पुरूरवा को केवल रूप से ही नहीं अपने चिन्तन पूर्ण तर्क से भी मोहित करती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आधुनिक युग में कवि ने माता के गौरव तथा जननी के भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से ही गर्भिणी का वर्णन किया है। कवि ने स्त्री जीवन को यौवन, पत्नीत्व और मातृत्व को विकासशील इतिहास के रूप में देखा है।

सन्दर्भ :

1. 'दिनकर' की राष्ट्रीय भावना - शिवबालक
2. रेणुका - मिथिला - 'दिनकर'
3. रसवंती - 'दिनकर'
4. परशुराम की प्रतिक्षा - जौहर - 'दिनकर'
5. रेणुका - राजा रानी - 'दिनकर'
6. हलाहल - हरिवंश राय 'बच्चन'
8. उर्वशी- 'दिनकर'

हिन्दी साहित्यकार उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में चित्रित नारी यथार्थ

राखी पचौरी
शोधार्थिनी, हिन्दी विभाग
आगरा कॉलेज, आगरा

शोध सार

आधुनिक महिला साहित्यकारों में विशिष्ट स्थान रखने वाली उषा प्रियंवदा हिन्दी साहित्य जगत का एक ऐसा नाम है जिन्होंने न केवल राष्ट्रीय स्तर पर, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी ख्याति अर्जित की। उन्होंने विदेशी भूमि पर रहते हुए भी हिन्दी साहित्य को गरिमा पूर्ण स्थान प्रदान किया है। यूँ तो उषा जी का सहित्य जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रस्तुत करता है किन्तु उनके साहित्य में सर्वप्रमुख स्थान नारी जीवन के कटु यथार्थ की अभिव्यक्ति का है। उषा जी के कथा साहित्य, विशेषत: उपन्यासों को नारी जीवन का प्रमुख हस्ताक्षर कहा जा सकता है। उनके उपन्यासों में पारिवारिक और समाजिक जीवन में संघर्ष करती हुई नारी समय के साथ-साथ अत्यंत समृद्ध और विकसित व्यक्तित्व को प्राप्त करती हुई दृष्टिगोचर होती है।

मुख्य शब्द:- संत्रास, अन्तर्द्वन्द्व, छटपटाहट, विसंगति बोध, संघर्षशील, हतप्रभ।

वर्तमान हिन्दी साहित्य जगत में उषा प्रियंवदा एक ऐसा नाम है जिन्होंने नारी जीवन को सशक्तता प्रदान की है। आधुनिक भारत में जन्मी उषा जी ने केवल भारत की नारी को ही नहीं देखा अपितु विदेशी धरती पर जाकर वहाँ की नारी के अस्तित्व को भी गहराई से समझा और अनुभूत किया। चूँकि उषा जी स्वयं एक स्त्री है इसलिए स्त्री जीवन की वेदना, संत्रास के कटु यर्थात को वे बहुत सूक्ष्मता से उजागर कर पायी है। उषा जी आधुनिक साहित्यकार है और आधुनिक साहित्य का मूल बिन्दु कल्पना अथवा अयथार्थ के स्थान पर 'यथार्थ' को स्वीकार किया गया है। यही यथार्थ उषा जी के साहित्य का भी प्रमुख बिन्दु है। उनके साहित्य में परिवार और समाज के परिप्रेक्ष्य में नारी प्रमुख तत्व बनकर उभरी है। उषा जी का उपन्यास सहित्य नारी जीवन की कटुता का जीवंत यथार्थ चित्रण कहा जा सकता है। युगीन चेतना का प्रभाव उषा जी के साहित्य पर स्पष्ट देखा जा सकता है। वे आधुनिक समाज में नारी स्वातंत्र्य की पक्षधर रही हैं। आज 21 वीं सदी में भी भारतीय नारी पुरूषोचित सोच के कारण कमतर आंकी जाती है उसके अस्तित्व को हीनता की दृष्टि से देखा जाता है- **"नव चेतना से युक्त शिक्षित नारी जीवन में पुरूषोचित बोझ उठाती है।"**[1]

यह बात उषा जी को सर्वथा असहनीय है। प्राचीन भारतीय सहित्य में नारी को सर्वोच्च स्थान दिया गया था। शास्त्रों के अनुसार नारी सुकुमारता, स लावण्प, प्रेम, त्याग, स्नेह, करूणा, दया, वात्सल्य और ममता की साकार प्रतिमा है, किन्तु बदलते समय और परिवेश के साथ नारी की स्थिति में व्यापक परिवर्तन आया।

मध्यकालीन सामंती परिवेश एवं रूढ़िवादी सामाजिक मान्यताओं में आबद्ध सामंतवादी समाज में नारी पुरूष की सहचारी अथवा सहधर्मिणी न होकर मात्र अनुगामिनी बन कर रह गई। प्राचीन समय में जो नारी सामाजिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखती थी मध्यकालीन समय में उसे घर की चहारदीवरी में समीति कर दिया गया, उसकी भूमिका एक पत्नी, माँ और बहन के रूप में परिवार का संचालन करने में थी इसके अतिरिक्त समाज में उसका कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं था, किन्तु आधुनिक युग में एक बार पुनः स्त्री की स्थिति में परिवर्तन आया। आधुनिक समाज सुधारकों ने नारी के प्रति सामाजिक दृष्टिकोंण में परिवर्तन किया और नारी शिक्षा पर जोर देते हुए उसे समाज के विकास का आधार तत्व माना **"प्रत्येक युग परिवर्तन के साथ-साथ नारी की स्थिति में भी परिवर्तन होता रहा है।"**[2]

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय नारी के जीवन में पर्याप्त परिवर्तन आया है। उषा प्रियंवदा का साहित्य नारी चेतना का साहित्य है एक ओर जहाँ उनके नारी पात्र घुटन, संत्रास, उदासी और अकेलेपन से जूझ रहे हैं वही दूसरी ओर अपने स्वतंत्र अस्तित्व को भी खोजते हुए दिखाई देते हैं। उषा जी ने आज के जटिल सामाजिक एवं पारिवारिक संघर्ष में उलझी नारी की विभिन्न मनः स्थितियों का यथार्थ अंकन किया है। उषा जी की नारी पात्र पारिवारिक विघटन, दाम्पत्य जीवन की असफलता, धनाभाव विसंगति बोध, अवसाद, घुटन पीड़ा, दर्द, संत्रास तथा तनावों के यथार्थ का सामना करते हुए स्वाबलंबी बनी है, वैचारिक दृष्टि से मजबूत हुई है तथा शिक्षित होने के साथ अपने निर्णय स्वयं लेने में सक्षम हुई है।

उषा जी ने न केवल नारी जीवन से जुड़े बाह्य परिवेश एवं संघर्ष को अभिव्यक्ति दी अपितु उसकी आंतरिक उथल-पुथल को भी उजागर किया है। आधुनिक युग भौतिकवादी युग है इन युग में मानव जाति ज्यों-ज्यों प्रगति कर रही है त्यों-त्यों नैतिकता का ह्रास होता जा रहा है। ऊब, छटपटहाट, घृणा, अनास्था, वैमनस्य का भाव मनुष्य के ह्रदय में प्रतिष्ठित होता जा रहा था जिस कारण पूरा वातावरण अनैतिक हो गया इस कृत्रिम वातावरण से नारी भी स्वयं को मुक्त नहीं कर पायी है। जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव परिवार, समाज और संस्कृति तीनों पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उषा जी की रचनाओं का मूल विषय नारी चेतना के साथ मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन की समस्याओं के यथार्थ का अंकन करना है, वे नारी जीवन के यथार्थ को बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ अपने उपन्यासों में उजागर करने में सफल हुई है। उनके उपन्यासों में नारी जीवन का कटु यथार्थ निराशा, घुटन, ऊब आदि के रूप में प्रकट हुआ है परन्तु उषा जी की नारी पात्र इन विषम परिस्थितियों में अपने जीवन को नष्ट नहीं करती बल्कि इनका विरोध करके अपने स्वतंत्र अस्तित्व को खड़ा करते हुए नारी समाज को जाग्रत करती हैं। पचपन खंभे लाल दीवारें' उपन्यास की 'सुषमा' आर्थिक समस्याओं के दंश को झेलते हुए भी स्वयं को मजबूत रखती है। सेवानिवृत पिता के घर में जीविका का कोई और साधन न होने के कारण वह स्वयं अपने पिता की जिम्मेदारियों का निर्वहन करती है। जिसके लिए उसे अपने प्रेम, अपनी खुशियों और इच्छाओं का दमन करना पड़ता है- **"यह कॉलेज यह खंभे मेरी डेस्टिनी है मुझे यहीं छोड़ दो"**[3]

भले ही सुषमा आधुनिक समाज की शिक्षित और आत्मनिर्भर नारी है किन्तु फिर भी अपनी भारतीय संस्कृति और परम्पराओं को सहजकर चलने वाली है, वह कभी भी अपने सांस्कृतिक मूल्यों का हनन नहीं करती। नील से उसका प्रेम संबंध पवित्र है वह नील से विवाह भी करना चाहती है, किन्तु परिवार की आर्थिक स्थिति और

भाई बहनों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों के कारण अपने प्रेम का गला घोंट देती है। अन्दर से टूटकर भी वह बाहर से मुस्कुराती है। सुषमा के माध्यम से उषा जी ने भारतीय नारी का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है। एक ओर जहाँ सुषमा जैसी स्त्री अपरे परिवार की खुशियों और जीविकोपार्जन हेतु स्वयं की आकांक्षाओं का बलिदान करती है वहीं दूसरी ओर रूकेगी नहीं राधिका की नायिका अपने पिता दूसरे विवाह की बात अस्वीकार करके अपनी खुशियों को महत्व देती है और विदेश चली जाती है। राधिका अपने पिता के लाड़-प्यार की छाया में पली-बढ़ी इकलौती पुत्री है, वह अपने पिता पर अपना एकाधिकार समझती है। जब वह अपने पिता के, अपने से 20 वर्ष छोटी विद्या के साथ विवाह की बात सुनती है तो वह क्रोधित हो जाती है। वह नहीं चाहती कि उसके पिता दूसरा विवाह करें, वह अपने पिता का विरोध करते हुए कहती है- "जो आप चाहते हैं, वही हमेशा क्यों हो? मैं आपकी बेटी हूँ, ठीक है, पर अब मैं बड़ी हो चुकी हूँ, जो चाहूँगी वही करूँगी"[4] राधिका अपने पिता से नाराज होकर डैन के साथ अमेरिका चली जाती है और वहाँ अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की तलाश करती है। राधिका के रूप में उषा जी ने किसी और की विचार-धारा को स्वयं पर न थोपकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खोजने वाली स्त्री को प्रस्तुत किया है। राधिका द्वारा अपने पिता के दूसरे विवाह को अस्वीकार करना और उनसे दूर चले जाने का कारण भारतीय समाज की उस पुरूषवादी सोच को अस्वीकार करना है जहाँ पुरूष समझता है कि वह जो करेगा वही सही है। ऐसी ही पुरूषवादी सोच का विरोध 'नदी' उपन्यास की नायिका 'आकाश गंगा' ने भी किया है। जब उसके पुत्र भविष्य की ल्यूकीमिया से मृत्यु हो जाती है तो डॉ0 सिन्हा पूर्ण रूप से गंगा को ही दोषी मानते हैं। गंगा अपने मन को शान्त करने के लिए कुछ दिनों के लिए अपनी बहन के घर जाती है और जब वापस लौटती है तो हतप्रभ रह जाती है उसका घर बिक चुका है डॉ0 सिन्हा उसे धोखा देकर उसकी बेटियों को लेकर हमेशा के लिए भारत लौट गए हैं। कोई पुरूष इतना निष्ठुर केसे हो सकता है? लेकिन डॉ0 सिन्हा गंगा को पराये देश में अनाश्रित और एकदम अकेला छोड़ गए थे। गंगा का जब इस यथार्थ से सामना होता है तो वह बुरी तरह टूट जाती है परन्तु फिर भी वह हार नहीं मानती और अपने टूट कर बिखरे आत्मविश्वास को एकत्रित कर फिर से खड़ी होती है वह बता देना चाहती है कि भविष्य के जाने में उसका कोई दोष नहीं था। वह अपने परिवार के पास भारत लौटती है सभी उसे प्यार करते हैं पर डॉ0 सिन्हा उसे स्वीकार नहीं करते तभी उसे 'स्तव्य' का आभास होता है- "यह बच्चा तो उसे चाहिए ही चाहिए-चाहे जैसे भी जीवन निर्वाह करना पड़े।"[5] जब गंगा अपने अन्दर एक पुष्प के पल्लवित होने का आभास करती है तो वापस अमेरिका लौट आती है। वह स्त्रीत्व पर लगी उस चोट को भरना चाहती है, बाहर निकलना चाहती है उस पुरूषवादी सोच से जो जीवन की हर समस्या का दोषी स्त्री को समझते हैं। पुत्र प्राप्ति और डॉ0 सिन्हा से अलगाव के बाद गंगा ने अपना सर्वस्व प्राप्त कर लिया ल्यूकीमिया को हरा कर जब स्तव्य गंगा से मिलने आता है तो गंगा का दय अपने पुत्र को देखकर पुलक उठता है। गंगा का मातृत्व, उसका त्याग और स्तत्य का स्वस्थ रहना डॉ0 सिन्हा की सोच और विचार को गलत सिद्ध करता है।

सुषमा, राधिका और गंगा के रूप में उषा जी ने जिस यथार्थ को उद्घाटित किया है उसका चरम रूप 'शेत्र यात्रा' की 'अनुका' और 'अन्तर्वंशी' की नायिका 'वाना' के चरित्र के रूप में प्रकट हुआ है। शेषयात्रा की अनुका पूर्ण रूपेण भारतीय संस्कारों में लिपटी भारतीय नारी है, जो अपने पति प्रणव को ही अपना सब कुछ मानती है। प्रणव पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वाली अनुका जब पति द्वारा तलाक देने की बात सुनती

है। तो स्तब्ध रह जाती है। "छोड़ दो मुझे," प्रणव ने दो टूक उत्तर दिया।

"छोड़ दूँ ? केसे!"

"अलग हो जाओ। मुझसे अब तुम्हें कुछ भी सन्तोष नहीं मिलता....."[6]

प्रणव से अलग वह अपने जीवन की कल्पना मात्र से भी काँप उठती है, वह प्रणव को हर प्रकार से खुश रखने का प्रयास करती है किन्तु अन्त में असफल हो जाती है वह सोचती है कि पति से अलग होने से अच्छा है कि उसे मृत्यु ही आ जाए, किन्तु ऐसी विषम परिस्थिति में अनुका की सहेली दिव्या उसे सांत्वना देती है और जीने की नई दिशा दिखाती है। डरी, दबी और घरेलू जीवन जीने की अभ्यस्त अनुका धीरे-धीरे स्वयं को मजबूत करते हुए अपने वजूद को तराशने लगती है। अपनी सहेली दिव्या का साथ पाकर, परदेश में अकेली रहकर वह अपनी पढ़ाई पूरी करती है और एक सफल डॉक्टर के रूप में स्वयं को स्थापित करती है। प्रणव की कटु स्मृतियों से बाहर निकलकर वह दिव्या के भाई दीपांकर से विवाह कर एक खुशहाल जीवन व्यतीत करती है। अनुका के व्यक्तित्व का यह बदलाव वर्तमान नारी जाति के लिए एक प्रेरणा बनता है। अनुका के माध्यम से उषा जी यह स्पष्ट करने में पूर्णत: सफल हुई है कि स्त्री किसी भी पुरूष के लिए खिलोना मात्र नहीं है। स्त्री यदि चाहे तो वह स्वयं अपनी अलग पहचान बना सकती है उसके लिए उसे पुरूष की आवश्यकता नहीं है। अनुका जैसी स्त्रियाँ पुरूषों के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है। शोषयात्रा की अनुका की चरम परिणति अन्तर्वंशी की वाना में दिखाई देती है। भारतीय परिवेश में पली वाना और अनुका ऐसी स्त्रियाँ है जिनके लिए उनका पति, परिवार और बच्चे ही सब कुछ हैं, किन्तु पुरूष अपने अहंकार और स्वच्छन्दवादी सोच के कारण उनके समर्पण को अनदेखा करता है। वाना का पति 'शिवेश' भी प्रणव की भाँति पुरूषवादी अंह भाव से युक्त है। वह एक आत्मकेन्द्रित और स्वार्थी व्यक्ति है, वह वको अपनी और अपने बच्चों की देखभाल करने वाली परिचारिका समझता है और उसे मानसिक व शारीरिक प्रताड़ना देना स्वाभाविक बात समझता है परन्तु वाना भी अनुका की भाँति अपने पति के इस मिथ्या अभियान को चूर-चूर कर देती है। "वह स्त्री है, पत्नी है, अब तक बिना शिकायत उनकी जिद, उनके आग्रह के सामने झुकती आई है। पर अब नहीं। उसे शिवेश के बदन की महक से वितृष्णा हो गई है। वह अब उसे नहीं झेल पायेगी।"[7] वाना भारतीय सोच को स्वयं पर हावी नहीं होने देती। शिवेश की बेकाई के कारण वह शिवेश और अपने रिश्तों को जन्म-जन्मान्तर का रिश्ता मानने से इंकार कर देती है। शिवेश के विश्वासघात और मानसिक यातना को वह सिर झुकाकर स्वीकार नहीं करती।

अनुका और वाना के चरित्र में अन्तर केवल इतना है कि जहाँ अनुका पति द्वारा छोड़ी जाती है, वहीं शिवेश की बेकाई देखकर वाना अपने आत्मसम्मान के साथ समझौता करना स्वयं स्वीकार नहीं करती। पुरूषों के दोहरे चरित्र की मानसिकता को झेल रहीं स्त्रियाँ उनके झुठे प्रलोभन और छलावे में आकर कभी-कभी अपने जीवन के लिए कठोर निर्णय भी कर डालती है फिर वह स्त्री के प्रति सम्मान और मृदु भाव रखने वाले पुरूषों पर भी विश्वास नहीं कर पातीं। पुरूषों की दृष्टि में सदैव हीन समझी जाने वाली नारी पुरूषों के बदलते व्यवहार पर उनकी सोच व सहसा ही विश्वास नहीं कर पाती- "मैं नॉर्मल नहीं हूँ- यह तुम जान गए हो, मैं आक्रान्त हूँ, रोग के विचार से दारूण रूप से ग्रस्त हूँ"।

"हम इस बिन्दु पर आकर ठहर नहीं सकते यमन। चलो तुम एक साड़ी खरीद लो और आज शाम को ही शत्रुहन हमारा विवाह कर देंगे"।[8] केसर जैसी घातक बीमारी से जूझने के बाद यमन (लिली) अपने अपूर्ण शरीर से आहत थी और उससे भी कहीं ज्यादा आहत थी वह उस यथार्थ थे जहाँ पुरूषों की दृष्टि में स्त्री को केवल प्रेम की वस्तु समझा जाता है। शेषेन्द्र और अपूर्व जैसे पुरूषों ने उसकी सोच पर मुहर लगा दी थी कि स्त्री शरीर की अपूर्णता पुरूषों की विमुखता का कारण है जैसे वह स्त्री न होकर कोई खेल की वस्तु हों जिनके टूट जाने पर उसे अपने से अलग कर दिया जाता है। मार्कस जैसे अमानवीय सोच वाले व्यक्ति भी स्त्री मन को आतंकित करते हैं। इसका एक और उदाहरण उषा जी के उपन्यास अर्कदीप्त की सौदामिनी है। अतीत की यातनाओं के ज़ख्म नारी मन को इतना छलनी कर देते हैं कि उसका आहत मन उसे भविष्य के प्रति निराशवादी बना देता है। वह खुशियों का दामन थामने से पहले ही सहम जाती है और अपने सुनहरे भविष्य से पलायन कर जाती है- "न जाने क्यों अपने सुख पर, भाग्य पर विश्वास नहीं होता। डरती रहती हूँ कि कहीं कोई आकर स्वप्न भंग न कर दे। तुमसे प्यार करती हूँ अर्को। मगर न जाने क्यों इतनी असुरक्षा, इतनी इनसिक्योरिटी मन में भिंद गई हैं। मेरी जिंदगी अब तक दु:ख भरी रही है जिसे प्यार किया उसी ने धोखा दिया"[9] अर्कदीप्त जब पहली बार सौदामिनी से मिलता है तभी उसे सौदामिनी से प्रेम हो जाता है और वह उससे विवाह भी करना चाहता है वह सौदामिनी के समक्ष विवाह प्रस्ताव भी रख देता है। सौदमिनी भी अर्कदीप्त से प्रेम करती है पर विवाह की बात पर विचलित हो जाती है और इस बात को टाल देती है। मगर अर्कदीप्त विवाह की ठान लेता है तब सौदामिनी को अपने अतीत का यथार्थ स्पष्ट हो आता है कि किस प्रकार उसने अपने परिवार का विरोध कर पिनाक भट्टाचार्य से प्रेम विवाह किया था, परन्तु विवाहोपरान्त उसकी एक भूल पर भट्टाचार्य ने उसके साथ कितना अमानवीय व्यवहार कर उसे भाँति-भाँति की यातनाएँ दी। सौदामिनी का अजन्मा शिशु भी इस यातना की बलि चढ़ गया, यह दर्द वह कभी भुला नहीं पाई। प्रेम में धोखा खाने वाली स्त्री सहर्ष ही किसी पर भरोसा नहीं कर पाती। वह अर्कदीप्त से प्रेम तो करती है पर डरती है कि कहीं फिर से धोखा ना खा जाए अपने डर के कारण वह उस पर विश्वास नहीं कर पाती और उसे छोड़कर बिना बताए ही उसके जीवन से दूर चली जाती है। स्त्री जीवन के कटु यथार्थ को उषा जी ने बड़ी मार्मिकमा के साथ व्यक्त किया है उन्होंने स्त्री के साथ समाज में हो रहे दोगले व्यवहार को उजागर किया है। पुरूष प्रधान समाज में पुरूषों की वर्चश्ववादी सोच स्त्री के लिए सदैव ही घातक रही है। समाज में स्त्री का भी उतना ही महत्व है जितना कि पुरूष का परन्तु फिर भी नारी को हीन ही समझा जाता है। समाज द्वारा बनाए गए नियम केवल स्त्री पर ही लागू होते हैं। उषा जी ने अपने उपन्यास अल्पविराम में स्त्री-पुरूष समानता वाले खोखले यथार्थ को उद्घाटित किया है- "हमारे परिवार में एक और परिपाटी थी-वह यह थी कि घर की लड़कियों की कम उम्र में शादी कर देना पर लड़को पर यह लागू नहीं होता।"[10] कहने को तो समाज में स्त्री और पुरूष को समान स्थान प्राप्त है पर व्यवहार में ऐसा नहीं है। नए-नए नियम बनाकर स्त्री पर अंकुश लगा दिया जाता है। शिक्षा का अधिकार सभी के लिए समान है पर नायिका शिंजनी के पिता ने अपने परिवार की पुरानी परम्परानुसार बेटे की पढ़ाई को जारी रखा और बेटी का छोटी उम्र में ही विवाह कर दिया। जिसका दंश शिंजनी ने छोटी उम्र में ही झेला। सामाजिक मर्यादाओं और परिवार की रीति-रिवाजों के नाम पर नारी को हमेशा छला गया है। समाज की इस दबी-कुचली रिवाज़ ने महिलाओं के पैरो मे बेड़ियों का काम किया है, परन्तु संघर्षशील स्त्री इन बेड़ियों को तोड़ने में सफल ही नहीं हुई बल्कि शिंजनी की तरह

अपने जीवन के महत्वपूर्ण फैसले भी स्वयं लेने में समक्ष हुई है।

उषा जी ने अपनी नारी पात्रों को परिस्थितियों के सामने निस्सहाय या विवश नहीं होने दिया अपितु उनकी नारी पात्र मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को झेलने के पश्चात् सामाजिक रूढ़ियों और बंधनों को तोड़कर पुरूषवादी सोच पर कुठाराघात करते हुए, आधुनिक सोच के साथ अपने अस्तित्व को खड़ा करने में सफल हुई है।

निष्कर्षः-

उषा जी का साहित्य विशेषतः नारी जीवन के दाम्पत्य सम्बंधों के कटु यथार्थ का विशेष रूप से उल्लेख करता है। नारी परिवार और समाज के विकास की धुरी है किन्तु बदलते समय में आज भी वह सामंती पुरूषवादी मानसिकता का शिकार है। भारतीय परिवेश में पली-बढ़ी उषा जी ने भारतीय नारी जीवन के कटु यथार्थ बड़ी गहराई से देखा और समझा है, नारी की दारूण स्थिति से वे भली-भाँति परिचित हैं अतः उसके जीवन की वेदना, तड़प, घुटन, पीड़ा, दर्द और मानसिक छटपटहाट को बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ अपने उपन्यासों के माध्यम से उद्घाटित करने में सफल हो सकी है। बदलते सामाजिक परिवेश में लेखिका ने भारतीय नारी की बदलती हुई मान्यताओं, विश्वासों और परिस्थतियों को चित्रित किया है। उषा जी के नारी पात्र परिस्थितियों के आगे झुकते नहीं अपितु उनसे संघर्ष करते हुए समाज में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित करते हैं। तथा भारतीय रूढ़िवादी परम्पराओं में जकड़कर स्वयं को असहाय नहीं बनाते, बल्कि जीवन के कटु सत्य को स्वीकार करते हुए अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के नवनिर्माणकर्ता के रूप में उभरते हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि नारी जीवन यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में उषा जी के उपन्यास वर्तमान जीवन का सारगर्भित अंश है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः-

- डॉ0 एन0के0 जोसफ, हिन्दी उपन्यासों में व्यक्तिवादी चेतना, पृ0सं0-160
- नयना, समकालीन उपन्यास, पृ0सं0-206
- उषा प्रियंवदा, पचपन खंभे लाल दीवारें, पृ0सं0-135
- उषा प्रियंवदा, रूकोगी नहीं राधिका, पृ0सं0-49
- उषा प्रियंवदा, नदी, पृ0सं0-85
- उषा प्रियंवदा, शेषयात्रा, पृ0सं0-56
- उषा प्रियंवदा, अन्तर्वंशी, पृ0सं0-101-102
- उषा प्रियंवदा, भया कबीर उदास, पृ0सं0-175
- उषा प्रियंवदा, अर्कदीप्त, पृ0सं0-113
- उषा प्रियंवदा, अल्पविराम, पृ0सं0-22

शंकर शेष के नाटकों में शिक्षकों का अंतर्द्वंद्व (एक और द्रोणाचार्य नाटक के संदर्भ में)

शोध निर्देशक
डॉ० राज कुमार
सहायक आचार्य
डी.ए–वी. पी०जी०कालेज
कानपुर
शोध छात्रा
****कु० रेखा मद्धेशिया***
डी.ए–वी. पी०जी०कालेज
कानपुर

शंकर शेष विसंगति दिशा नाटककार के रूप में जाने जाते हैं। उनके लिखे नाटक आधुनिक युग के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक समस्याओं का गहरा बोध कराते नजर आते हैं। नाटक गम्भीर अभिनेय नाटककला की सर्वोत्तम दृष्टि है। मानव चरित्र को गति और सृष्टि देने में, सामूहिक प्रतिक्रिया और प्रेरणा उत्पन्न करने में, जितना कार्य अभिनेय नाटक कर सकता है, उतनी कोई दूसरी कलाकृति नहीं। नाट्यकला ही समृद्धिशाली देशों की प्रतिनिधि और सर्वोच्च कला रही है। विभिन्न राष्ट्रों के कला सम्बन्धी उत्कर्ष को मापने के लिये नाटक ही सर्वप्रमुख उपादान रहा है।'[1] शंकर शेष के सभी नाटकों की तुलना में एक और द्रोणाचार्य' नाटक को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। प्राचीन युग से लेकर वर्तमान युग तक एक शिक्षक की क्या स्थिति है। इस नाटक के माध्यम से समझा जा सकता है। शिक्षक एक सम्मानित पद है। उसकी योग्यता के आधार पर उसे भरण–पोषण के लिए अल्प मात्रा का वेतन मिलता है। वर्तमान युग में विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय में शिक्षकों की वास्तविक स्थिति क्या है? किस तरह एक सम्मानित शिक्षक प्रशासन की हाथों की कठपुतली बना हुआ है। सर्व विदित है कि विश्वविद्यालय या महाविद्यालय (आयोग बनने से पहले) शिक्षकों की नियुक्ति का आधार जाति, परिवार, रिश्तेदार, धन एवं राजनीतिक पकड़ के आधार पर होती है। शिक्षक केवल नौकरी नहीं करता है बल्कि आने वाले भावी देश के नागरिकों का निर्माण भी करता है और एक आदर्श नागरिक ही एक आदर्श राष्ट्र का निर्माण करते हैं। इस तरह कहा जा सकता है कि शिक्षक राष्ट्र का निर्माता होता है अर्थात एक योग्य शिक्षक ही एक योग्य राष्ट्र का निर्माण कर सकता है।

आप प्रश्न उठाना यह स्वाभाविक है कि एक योग्य शिक्षक का निर्माण केसे किया जाए? तो उत्तर होगा– कि जब शिक्षक की योग्यता, नियुक्ति और वेतन की प्रक्रिया में धर्म, जाति, परिवारवाद, अनावश्यक प्रबंधन तंत्र का हस्तक्षेप रहेगा तब तक योग्य शिक्षक का निर्माण नहीं हो सकता है, नहीं एक योग्य राष्ट्र का

निर्माण हो सकता है। 'एक और द्रोणाचार्य' नाटक में शिक्षक के अंतर्द्वंद की अवस्था का वर्णन किया गया है कि शिक्षक किस तरह एक और शिक्षण संस्थान का दबाव से समझौता करते हैं और दूसरे तरफ आर्थिक समस्यायों से जूझते हुए, परिवार की दबाव, उलझने से किस तरह पीड़ित है। 'एक और द्रोणाचार्य' में दो नाटक समानान्तर चलते हैं। एक ओर अरविन्द, उसके परिवार और कालेज के प्रसंग हैं, दूसरी ओर द्रोणाचार्य, उनके परिवार तथा महाभारत कालीन पात्रों- युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, अश्वत्थामा, एकलव्य आदि-के प्रसंग हैं। 'अरविन्द' के घोर मानसिक द्वन्द्व के क्षण में उसका एक मृत सहकर्मी विमलेन्दु प्रकट होता है और उसे जीवन में समझौतावादी होने की सलाह देता है। अपनी इस जीवन-दृष्टि के समर्थन में वह अपने लिखे 'द्रोणाचार्य' नाटक के दृश्यों को प्रस्तुत करता है। इस प्रकार 'अरविन्द' के नाटक के साथ द्रोणाचार्य का नाटक शुरू हो जाता है। अरविन्द स्वभावतः ईमानदार और सिद्धान्तवादी प्रोफेसर है, किन्तु अन्ततः अपनी पत्नी 'ललिता' के आग्रह पर वह व्यवस्था से समझौता करके 'व्यवस्था और सत्ता के कोणों से पिटा हुआ' द्रोणाचार्य बन जाता है।[2] "इस नाटक के माध्यम से नाटककार स्पष्ट करता है कि शिक्षा व्यवस्था में काम करने वाला व्यक्ति मजबूर, सहानुभूति शून्य है। वह अपनी समस्याओं में खोया हुआ है। अर्थात् प्रस्तुत रचना पौराणिक कथा के माध्यम से वर्तमान शिक्षा संस्थान में व्याप्त असंगतियों और अध्यापकों के पंगु आचरण पर प्रहार करती है।"[3] एक और द्रोणाचार्य नाटक की प्रारंभ में प्रोफेसर अरविंद और उनकी पत्नी लीला में जो वार्तालाप होता है उससे एक शिक्षक के गृहस्थ जीवन को समझा जा सकता है।

लीला : लाइट तो जला लेते। (बढ़कर स्विच ऑन करती है।) अँधेरे में दम केसे नहीं घुटता तुम्हारा? (विराम। टेबल पर से चाय का खाली कप उठाती हुई) जानते हो, शक्कर क्या भाव चल रही है? पूरे चार हो गई ।

अरविंद : (जैसे सुन नहीं रहा हो) हूँ।

लीला : (सिगरेट के टुकड़ों को उठाती हुई) कितनी बार कहा है, ऐश-ट्रे ले लिया करो। झाड़ू मार-मारकर कमर तो मेरी ही टूटती है न!

अरविंद : ले लिया करूँगा।

लीला : और राशन कार्ड बन गया? (विराम) नहीं बना न? गए भी थे? परवाह किसको है! (विराम) माँ का ऑपरेशन कब तय हुआ है? (अरविंद चुप) इसका मतलब अस्पताल नहीं गए। अकेले कहाँ-कहाँ मरूँगी? (विराम) बोलते क्यों नहीं कुछ? क्या हो गया तुम्हें ?

अरविंद : कुछ नहीं।"[4]

एक शिक्षक जो राष्ट्र का निर्माण करता है उसके घर की आर्थिक स्थिति केसी है? उसका राशन कार्ड तक नहीं बना है। मां का ऑपरेशन करना है लेकिन उसके पास पैसे नहीं है। दूसरे तरफ एक आदर्श शिक्षक धर्म निभाते हुए वह कॉलेज में नकल विहीन परीक्षा करता है और कॉलेज के प्रेसिडेंट का लड़का राजकुमार को नकल करते हुए पकड़ लेता है। यदि वह राजकुमार को नकल करते हुए नहीं पकड़ता तो अपने आदर्शों

से खिलवाड़ करता है और नकल करते पकड़ लिया है तो उसके लिए मुसीबत बन गई है। उसकी पत्नी लीला, उसका मित्र, यहाँ तक की कॉलेज का प्रिंसिपल उससे नाराज है। प्रिंसिपल अरविन्द को धमकाते हुए कहता है कि प्रेसिडेंट साहब आखिर मालिक हैं, अन्नदाता हैं। उनका कॉलेज, उनकी मर्जी। इसीलिए तो कहता हूँ, नौकरी करनी है तो कान बंद कर लो। आँखें मूँद लो। मुँह खुला रखो–बोलने के लिए नहीं, रोटी खाने के लिए।[5] साथ–साथ कालेज का प्रिंसिपल अपनी विवशता दर्शाते हुए अरविंद से कहता है कि किसकी हिम्मत है? जल्लाद से भी कहीं विरोध किया जाता है? मुझे तो सुबह से शाम तक गाली देता है, गधा और उल्लू का पट्ठा कहता है। पर क्या करूँ, सुनता हूँ। सुनूँगा नहीं तो जाऊँगा कहाँ! नौकरी जो करनी है।.....अब तुम्हीं बताओ, क्या मैं खुशी से नालायक कहलाता हूँ? पर कहलाता हूँ। नालायक कहलाने के बाद भी खुशी जाहिर करता हूँ। नौकरी जो करनी है (विराम) अब मेरी बात छोड़ो, अपनी सोचो। नौकरी छूटेगी तो परेशान कौन होगा? तुम्हीं न! भोगेगा कौन? तुम! घर कौन चलाता है? क्या बुढ़ापे को नरक बनाना है? (विराम) खैर, इसकी भी कोई बात नहीं। लेकिन जान है तो जहान है। जान तो बचानी होगी। छि:! क्या दिन आ गए हैं! मास्टर की जान भी खतरे में!"[6]

कॉलेज की प्रिंसिपल का दबाव, मित्र का सलाह, परिवार में पत्नी और बच्चों की चिंता की वजह से प्रोफेसर अरविंद भी अपने वर्तमान परिस्थितियों से समझौता कर लेता है। प्रोफेसर अरविंद की नौकरी तो बच जाती है लेकिन उसके खोखले शिक्षक आदर्श बिक जाता है। आज भी हजारों शिक्षक नौकरी बचाने के चक्कर में अपनें आदर्शों के साथ खिलवाड़ करते हैं कुछ तो विवश होकर द्रोणाचार्य बनते हैं लेकिन कुछ जन्मजात होतें हैं जो शिक्षक अपने विद्यार्थियों के सामनें विभिन्न प्रकार का आदर्श रखतें वही विश्वविद्यालय के शिक्षक भर्ती में अपनी जाति, परिवार, रिश्तेदार और राजनीतिक पकड़ वालों को विशेष रूप से सम्मानित करते हुए नियुक्ति देते हैं, उस समय उनका आदर्श कहाँ मर जाता है? वर्तमान स्थिति यह है कि आज भी कॉलेज और विश्वविद्यालय स्तर पर हजारों द्रोणाचार्य शिक्षकों की वजह से अनेक छात्रों का जीवन बेकार हो जाता है। वह कुंठित होकर जीवन जीते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. डॉ राधा मिश्रा कृत उदयशंकर भट्ट का नाट्य साहित्य युगचेतना तथा शिल्प, 'पृष्ठ संख्या 20' विकास प्रकाशन कानपुर।
2. डॉ रामचंद्र तिवारी 'हिंदी का गद्य- साहित्य 'पृष्ठ संख्या 374–75' विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी
3. डॉ० एस. एन. जाधव कृत 'शंकर शेष का रचना संसार' पृष्ठ संख्या 25 चद्रलोक प्रकाशन कानपुर।
4. डॉ शंकर शेष कृत 'एक और द्रोणाचार्य' पृष्ठ संख्या 05, परमेश्वरी प्रकाशन बी. 109 प्रीत विहार दिल्ली।
5. वही पृष्ठ संख्या 11
6. वही पृष्ठ संख्या 12

श्री पुरुषोत्तम सिंह की पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं प्रारम्भिक जीवन

कु. शहनाज
शोधार्थी, चित्रकला विभाग,
बैकुंठी देवी कन्या महाविद्यालय, आगरा

प्रस्तावना

गंगा–जमुना संस्कृति के केन्द्र प्राचीन ऐतिहासिक नगर आगरा का स्थापत्य, साहित्य, संगीत एवं अन्य कलाओं के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पुरातत्व की दृष्टि से मुगल सम्राट शाहजहाँ द्वारा निर्मित विश्व का सातवाँ आश्चर्य ताजमहल साहित्य के क्षेत्र में सूरदास, मीर, आरजू नजीर और गालिब तथा संगीत के क्षेत्र में संगीत सम्राट तानसेन एवं उस्ताद फैयाद खाँ आदि ने यहाँ जन्म लेकर अथवा यहाँ रहकर अपनी कला–साध ना से आगरा को गौरवान्वित किया। वहीं स्वर्गीय ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह जी ने अपनी चित्रकला के माध्यम से प्रायः लुप्त हुयी मुगल कालीन चित्रकला को पुनर्जीवित किया। यद्यपि अंग्रेजों के आगमन एवं कट्टर इस्लाम धर्म प्रभाव से मुगल शैली पतन की ओर थी, परन्तु देश के किसी न किसी कौने में और शहर में कुछ कलाकार ऐसे भी थे जो धर्म से जुड़े न होने के बावजूद मुगलशैली को जीवित रखे हुए थे। उनमें से एक थे आगरा के महान कलाकार स्वर्गीय ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह जी अपने जीवन पर्यन्त मुगलकला साधना में लीन रहे। अपने चित्रों के माध्यम से उन्होंने मुगलकला के सभी आयामों को बेहद सारगर्भित रुप में प्रस्तुत किया। उन्होंने आधुनिक काल में भी मुगल काल की शैली की जीवंतता को बनाये रखा। इन्होंने चित्रों के माध्यम से मुगल काल को आधुनिक परिपेक्ष्य में बहुत ही खूबसूरती से उकेरा है। इनके चित्र हमें मुगल काल में ले जाते है और वहाँ की एक अद्‌भुत झांकी हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर देते है तथा वास्तव में चित्रकला के पूर्ण मर्मज्ञ थे और विभिन्न कलाओं के प्रति वे अत्यन्त जानकारी रखते थे। आगरा में चित्रकला का आरम्भ अकबर के समय में हुआ। उस समय चित्रकला का मुख्य स्वरूप मुगल पेन्टिग्स का था। यह चित्रकला ईरानी और भारतीय चित्रकलाओं के सम्मिश्रण से बनी थी। अकबर का कहना था कि चित्रकला के माध्यम से मनुष्य धर्म के रास्ते पर आता है और ईश्वर को प्राप्त करता है। जहाँगीर के समय में यह चित्रकला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची और औरंगजेब के समय में राजाश्रय के अभाव में इसका पतन हो गया। बीसवीं शताब्दी तक आते–आते चित्रकारी का मुगलकालीन स्वरूप प्रायः समाप्त हो गया था।

जहाँ तक पुरुषोत्तम सिंह जी की चित्रकला के प्रेरणा रुझान एवं स्रोत की बात है, उन्हें धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थलों की यात्रा करने का बहुत शौक था। वे जहाँ भी जाते वहाँ के मन्दिरों, वहाँ की ऐतिहासिक इमारतों को बड़ी सूक्ष्मता के साथ देखते और वहाँ की चित्रकला और मूर्तिकला को देख कर प्रभावित तो होते ही उनके स्वरूप को अपने मन–मस्तिष्क में उतार लेते और लौट कर उन्हें कागज, केनवास या हाथी दाँत पर

उतार कर साकार कर देते थे। उनके चित्रों को देखने से पता चलता हैं, कि उनकी यात्रा-प्रियता के कारण वस्तुओं की गतिशीलता, प्रकृति की परिवर्तनशीलता व जीवन की निरन्तरता ही उनके कलाकार बनने का कारण बनी। ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह जी के चित्रों की विषय वस्तु, धार्मिक चित्रण, मुगल प्रभावित ऐतिहासिक चित्रण, सामाजिक चित्रण, व्यक्ति-चित्रण तथा प्राकृतिक एवं पशु-पक्षी चित्रण भी इनके चित्रों की तकनीकी विशेषताऐं हैं।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' ने अपनी 'कलाकार' नामक कविता में कलाकार की व्याख्या इस प्रकार की है-

"कला हृदय के अनुभव रस के, स्वर का बलि-पथ पर कम्पन है।
चिन्तन, जीवन और वेदना, तीनों का यह अमर मिलन है।
जो युग-युग का श्वास, क्यो न वह अपने युग का श्वास बनेगा।
जो भावी विश्वास, क्यों न वह वर्तमान विश्वास बनेगा।।"

कवि मिलिन्द की यह पंक्तियाँ मुगल कला के सुप्रसिद्ध कलाकार आगरावासी स्व० ठा० पुरुषोत्तम सिंह पर सटीक बैठती है। वे वास्तव में चिन्तन, जीवन और वेदना युक्त चित्रकार थे। उनका चिन्तन, मनन और वेदना ही उनके चित्रकार बनने का कारण बना। उनकी कला वास्तव में हृदय के अनुभव रस से सिंचित है। कलाकार कभी शान्त नहीं बैठता जो भी उसके मन में आता है और जो वह अनुभव करता है उसे पैंसिल, कलम या तूलिका से कागज, केनवास या पत्थर पर उतार देता है। चित्रकार ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह भी ऐसे ही कलाकार थे। मन में भाव आते ही उनके हाथ स्वंय चलने लगते थे, फोटो स्टूडियो में केमरे पर और मन हुआ तो वही हाथ तूलिका, पैंसिल और कलम से कुछ न कुछ करने के लिए मचल उठते थे। यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी। उन्होंने अपने चित्रों, छायाचित्रों, अपनी कल्पनाओं और अनुभूतियों को ऐसे बेजोड़ ढंग से प्रस्तुत किया कि दर्शक प्रशंसा किये बिना नहीं रहता था। आदमी की आँख पारखी और हाथ हुनर वाले हों फिर देखिए कला का उभार चित्रकार के हाथों से ऐसे-ऐसे चित्र बनकर तैयार हो जाऐं कि लोग देखकर चकित रह जायें। ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह की कला की यही विशेषता थी। उन्होंने मुगल कला को विशेष रूप से अपनाकर उसके माध्यम से अनेक प्रकार के चित्रों का चित्रांकन किया ।

ठा. पुरुषोत्तम सिंह का प्रारम्भिक जीवन: ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह के दत्तक पुत्र श्री श्रीकृष्ण सिंह संचालक 'सनबीम स्टूडियो' शहजादी मंडी, आगरा के अनुसार, ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह का जन्म ऐतिहासिक नगर अजमेर (राजस्थान) में ठाकुर शिव प्रसाद सिंह के पुत्र के रूप में हुआ। उनकी जन्म तिथि के विषय में स्पष्ट ज्ञात नहीं है। विभिन्न विद्वानों और इतिहासकारों में इनकी जन्म तिथि को लेकर मतभेद है। श्री शिव प्रसाद सिंह चंदेल के दो पुत्र मुनुआ सिंह, हरी सिंह तथा एक पुत्री थी। श्री पुरुषोत्तम सिंह की जन्म तिथि के विषय में उन्होंने बताया कि उन्हें नही मालुम कि वे कब पैदा हुए थे क्योंकि उन्होंने कभी बताया नहीं और मैने जानने की कोशिश नहीं की। इसलिए उनका स्वर्गवास आगरा में मेरे पास ही 15 मई 1990 को हुआ था। अपने जीवन के अंतिम समय में वे शान्त, निश्चल और साधु की भाँति थे जो समाधि ले लेता है परन्तु इसका मतलब यह नही होता कि उसका हृदय फिर भी कुछ करने के लिए छटपटाता रहता है। उनकी अन्त्येष्टि के समय आगरा

के अनेक फोटोग्राफर, चित्रकार, उनके शिष्य तथा मित्र उपस्थित थे। हमारे लिए वे आदर्श थे। आज भी हम उनके द्वारा बताए हुए मार्ग पर चलकर उनकी स्मृति को बनाए हुए हैं।

श्री श्रीकृष्ण सिंह ने बताया कि श्मेरे पूज्य पिता श्री ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह के पिता तो अजमेर के निवासी थे परन्तु उनके पूर्वज कन्नौज (उ०प्र०) के निवासी थे। दोनों ही नगर प्राचीन, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अपना महत्व रखते हैं। यह मैं नहीं जानता कि उनके पूर्वज या पिता कन्नौज छोड़कर अजमेर क्यों आकर बस गये। मेरे पिता अत्यन्त गम्भीर स्वभाव के थे इसलिए मेरा उनसे यह सब बातें पूछने का साहस ही नहीं होता था और फिर मैंने कभी यह सब जानने की कोशिश भी नहीं की।[8]

प्रारम्भिक शिक्षा

यहाँ ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह बचपन से ही प्रतिभाशाली थे। पढ़ने-लिखने, फोटोग्राफी तथा ड्राइंग-पेंटिंग में उनकी रुचि अधिक थी। घर में अपने सभी भाई-बहिन से उनका स्वभाव भिन्न था। भीड़-भाड़, खेलकूद और शोरगुल उन्हें पसंद नहीं थे। एकांत में बैठकर वे कागज पर पैंसिल से उल्टी-सीधी लकीरें खींचा करते थे। उनकी इन्हीं रूचियों को देखकर उनके पिता उनकी शिक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान देने लगे और उन्होंने उन्हें ग्वालियर शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेज दिया। ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह के दत्तक पुत्र श्री श्रीकृष्ण सिंह ने बताया कि उनकी प्रारम्भिक शिक्षा ग्वालियर (म०प्र०) में हुई उसके बाद उन्होंने फोटोग्राफी और चित्रकला में शिक्षा प्राप्त की।

मुगल बादशाहों की अनेक वर्ष तक राजधानी रहने के कारण आगरे का विश्व में प्रमुख स्थान है। यही कारण है कि यहाँ मुगल संस्कृति की झलक देखने को मिलती है। यहाँ की ऐतिहासिक इमारतों को देखने के लिए विश्व के हर भाग से लाखों पर्यटक प्रति वर्ष यहाँ आते हैं। यही आकर्षण ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह को यहाँ खींच लाया। उन्होंनें आगरा को ही अपना स्थायी निवास स्थान बनाने का निश्चय किया परन्तु उनके सामने समस्या थी जीविकोपार्जन की क्योंकि वे समझते थे कि केवल चित्रकारी जीविकोपार्जन का साधन नहीं बन सकती। अतः उन्होंने फोटोग्राफी को अपनी जीविका का साधन बनाया, परन्तु उसके लिये भी स्टूडियों बनाने का स्थान होना आवश्यक था। उचित स्थान न मिलने तक यहाँ के सुप्रसिद्ध फोटोग्राफर जिनका स्टूडियों प्रतापपुरा में 'प्रियालाल एण्ड संस' के नाम से था, के यहाँ फिनिशिंग और रीटचिंग का कार्य करने लगे। कुछ दिन बाद शहजादी मंडी में उन्हें एक उचित स्थान मिल गया। वहाँ उन्होंने 'सनबीम फोटो स्टूडियो' नाम से स्टूडियो खोल लिया और फोटोग्राफी कार्य प्रारम्भ कर दिया।

ठाकुर पुरूषोत्तम सिंह की दैनिक दिनचर्याः ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह आजन्म कुँवारे रहे। नगर के ही एक युवक श्रीकृष्ण उनकी बहुत सेवा करते थे, और उनकी सेवा और उनके प्रति आदरभाव रखते थे। उनकी इस सेवा से प्रसन्न होकर उन्होंने उन्हे दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया था। श्रीकृष्ण और उनकी सुयोग्य एवं सुसंस्कृत पत्नी श्रीमती कुसुम उनकी पिता के रूप में केवल सेवा ही नही करते थे, उनकी रुचियों, उनके रहन-सहन और खान-पान का भी बहुत ध्यान रखते थे। श्रीकृष्ण के दो पुत्र सर्वोत्तम और नरोत्तम हुए।

ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह अपने कार्य तथा समय के प्रति अत्यन्त निष्ठावान थे। उनकी दिनचर्या सूर्योदय से पूर्व प्रात: 4 बजे से प्रारम्भ हो जाती थी। प्रात:कालीन नित्य कर्म से निवृन्त होकर वे अपने दोनों कुत्तों के साथ भ्रमण पर निकल जाते थे। यह दोनों ही कुत्ते उनके पालतू थे। वे इनकी बच्चों की भाँति देखभाल करते थे। उन्हें अच्छे से अच्छा भोजन समय पर देते और उनकी हर बात का ध्यान रखते थे। कभी-कभी उनके साथ उनके पौत्र (श्रीकृष्ण के पुत्र) सर्वोत्तम और नरोत्तम भी साथ जाते थे। कुछ समय भ्रमण के बाद वे पुलिस लाइन और रावली मंदिर होते हुए घर वापस आ जाते थे। कुत्तों को सुबह दूध, दलिया देकर स्वंय पूजा करने बैठ जाते थे। आप माता गायत्री के बहुत बड़े भक्त थे। पूजा करते समय आप पीले वस्त्र धारण किया करते थे। पूजा समाप्त करने के पश्चात् आप नाश्ता करते और कुछ देर विश्राम करते थे। वे लड़कियों को सिलाई, कढ़ाई तथा पेंटिंग तथा लड़कों को केवल पेंटिंग ही सिखाते थे। उनका समय पेंटिंग बनाने का कोई निश्चित नही होता था जब मन होता बनाना प्रारम्भ कर देते थे। अक्सर वे सोते समय भी अपने सिरहाने पेंटिंग का सामान रख कर सोते थे। लड़के-लड़कियों के जाने के बाद दोपहर को भोजन के बाद कुछ समय विश्राम करते. थे और फिर अपने कार्य में व्यस्त हो जाते थे। सायं को फिर घूमने या अपने मित्रों के पास जाते। उनके मित्र धनी एवं गरीब सभी प्रकार के थे। उनके खास मित्रों में मेहर सिनेमा बालूगंज (आगरा) के स्वामी लाला श्री कृष्ण प्रसाद, छीपी टोला में पत्थरों के प्रमुख व्यवसायी जी गिर्राज किशोर बंसल, नाई की मण्डी के लाला श्री राम स्वरूप तथा मेहर सिनेमा के द्वार पर पान की दुकान वाले थे। वे अधिकतर शाम का समय इन्हीं के पास व्यतीत करते थे। सभी इनका आदर सत्कार करते थे। रात का भोजन करने के बाद आप गीता, रामायण आदि धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन किया करते थे। गुरूवार को आप अहमदशाह की दरगाह मदिया कटरा पर जाया करते थे। यह सूफी संत अहमदशाह की दरगाह के नाम से आज भी प्रसिद्ध है।

आपको इन कलाओं के साथ-साथ पाक कला का भी शौक था। उनकी एक कला व्यंजन बनाने की भी थी। कभी-कभी वे अपने हाथ से भोजन बनाकर परिवारीजनों तथा मित्रों को खिलाया करते थे। वर्ष में एक बार कुछ समय के लिए वह मौन वृत धारण करते थे। कभी-कभी भूल से उनका मौन वृत टूट जाता तो वह पुन: उसी समय से दुबारा उतने ही समय के लिए मौन वृत धारण कर लेते थे। वे कलाकुंज स्टूडियो के संचालक, छायारत्न श्री सत्यनारायण गोयल को बहुत स्नेह करते थे। श्री गोयल ने बताया कि एक बार उन्होंने उनके पूर्व निवास राजा मंडी आकर मौन वृत धारण किया। उस समय वे उनसे मिलने आने वालों से कागज पर लिखकर अपने भाव प्रकट करते थे। उस समय भी उनके नित्य कर्म, पूजा-पाठ तथा अध्ययन में मौन वृत से कोई व्यवधान नहीं पड़ता था।

कला प्रशिक्षण व फोटोग्राफी: उस समय चित्रकला विशेष रूप से मुगलकालीन चित्रकला के क्षेत्र में नाजुक कलम हाशिमे अवदानी की बहुत प्रसिद्धि थी। उनके पितामह ईरानी थे और अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर' के यहाँ शाही मुसव्विर थे। मुंशी जी बाबूरामनाथ के घनिष्ठ मित्र थे और वे अक्सर उनके यहाँ आया करते थे। वे जब भी वहाँ आते पुरुषोत्तम सिंह जी को फोटोग्राफी के काम में लगन और मेहनत से लगे हुए देखते थे। उनकी लगन, काम में एकाग्रता और मेहनत को देखकर मुंशी जी उनसे बहुत प्रभावित हुए। एक दिन उन्होंने बाबू रामनाथ से पुरुषोत्तम सिंह जी को चित्रकला सिखाने की इच्छा प्रकट की। बाबू रामनाथ ने

मुंशी जी की बात सहर्ष स्वीकार कर पुरुषोत्तम सिंह जी से मुंशी जी की इच्छा के विषय में बताया। पुरुषोत्तम सिंह को मुँह माँगी मुराद मिल गई। वे तो बचपन से ही चित्रकार बनना चाहते थे। उन्होंने बाबू रामनाथ को अपनी स्वीकृति दे दी।

ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह अपने फोटोग्राफी के गुरू बाबू रामनाथ से अनुमति प्राप्त कर मुंशी जी से चित्रकला सीखने लगे। कुछ ही समय में उन्होंने मुंशी जी से प्राप्त कला को मूर्त रूप देना प्रारम्भ कर दिया। मुंशी जी भी उनकी लगन, आत्म-विश्वास और परिश्रम को देखकर अत्यन्त प्रसन्न थे। उन्हें एक सुयोग्य शिष्य मिल गया। चित्रकला की प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण होने पर मुंशी जी ने उन्हें मुगल कालीन चित्रकला के विषय में बताना प्रारम्भ किया और रंगों के मिश्रण आदि के विषय में पूर्ण रूप से समझाकर चित्र बनाने की प्रक्रिया समझाई। पहले वे स्वंय चित्र बनाते, बाद में उसी चित्र को शिष्य पुरुषोत्तम सिंह से बनवाते। धीर-धीरे उन्होंने मुंशी जी से मुगल चित्रकला की बारीकियाँ सीख ली और मुंशी जी के निर्देशन में बहुत सुन्दर चित्र बनाने लगे। उन्होंने मुंशी जी चित्रकला की सभी पद्धतियों में चित्र बनाने में निपुणता प्राप्त कर ली और वे स्वतन्त्र रूप से एक से एक बढ़कर सुन्दर चित्र बनाने लगे।

जीवन-यापन की समस्या का समाधान होने के बाद पुरुषोत्तम सिंह जी का ध्यान अब पूर्ण रूप से अपनी चित्रकला को निखारने में लग गया। अब वे फोटोग्राफी के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के चित्रों को कागज और हाथी दाँत पर पैंसिल, पैन और तूलिका से उतारने लगे। उन्होंने अपनी कला को हाथी दाँत पर चित्रित कर लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया। हाथी दाँत पर उनके द्वारा बनाए गय चित्र मुगल शैली की अनुपम देन है। बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार थे। हाथी दाँत पर बनाए गए आपके चित्रों में प्रकृति का सौन्दर्य तथा शारीरिक गठन का प्रभाव देखा जा सकता है। कलात्मकता से युक्त ये चित्र रेखांकन एवं रंग-योजना की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर हैं। इन चित्रों को बनाने के लिए वे स्वर्ण (सोने के पानी) का प्रयोग करते थे। इसे वे स्वंय अपने हाथों से बनाते थे। हाथी दाँत पर चित्रकारी करना अत्यन्त कठिन कार्य है। उस पर भी स्वर्ण से कार्य करना तो बहुत ही कठिन है। इस पर फूल, पत्ती, पेड़, पौधे, पशु, पक्षी, स्त्री, पुरुष, राजा, नवाब आदि के चित्र पुरुषोत्तम सिंह ने बड़ी बारीकी और कुशलता के साथ चित्रित किए हैं। मुगल काल में स्त्री-पुरुष अधिकतर बेल-बूटों से सुज्जित वस्त्र पहनते थे। उन्होंने स्त्री-पुरुष के पहनने वाले वस्त्रों पर बड़ा बारीकी से कार्य किया है, जो देखने योग्य है।

ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह द्वारा हाथी दाँत पर चित्रित कलाकृतियाँ एक अनुपम और अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। देवी, देवताओं, मुगल सम्राटों, नारी, पशु-पक्षियों की अनुकृतियाँ इतनी अलंकारिक ढंग से तथा स्वतन्त्र रूप से चित्रित की गई हैं कि उनकी सूक्ष्मता को देखकर चकित हो जाना पड़ता है। इन कलाकृतियों की विविधता के अन्दर हमें मुगल शैली विशेषकर भारतीय चित्रकला शैली के स्पष्ट दर्शन होते हैं। हन उनकी सभी कलाकृतियों को भारत की एक ऊँची चित्रकला की परम्परा के अंतर्गत रख सकते हैं।

फोटोग्राफी प्रशिक्षण: ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह उस समय के सुयोग्य एवं सुप्रसिद्ध फोटोग्राफर बाबू रामनाथ के सम्पर्क में आए और उनसे विधिवत फोटोग्राफी की शिक्षा प्राप्त करने लगे। तकनीकी दृष्टि से बाबू रामानाथ को फोटोग्राफी में महारत हासिल थी। ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह कुछ ही समय में अपने कठिन परिश्रम और लगन

से उनके फोटोग्राफी के समस्त गुण एवं उसकी बारीकी सीखकर फोटोग्राफी की कला में पारंगत हो गए। प्रत्येक फोटोग्राफर को ऐंगिल और लाइटिंग इफैक्ट की जानकारी होनी चाहिए। तकनीकी योग्यता और केमरा तथा लैंसेज की अच्छी जानकारी होनी चाहिए। ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह ने अपने प्रशिक्षण काल में इन सभी चीजों का अनुभव प्राप्त कर लिया था।

फोटोग्राफर के रूप में: धीरे-धीरे ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह की फोटोग्राफी के क्षेत्र में ख्याति फैलने लगी। उनके परिश्रम, लगन और फोटोग्राफी की उत्कृष्ट कला के कारण आगरा नगर के समस्त फोटोग्राफर उनका आदर करने लगे और उन्हें गुरूजी कहकर सम्बोधित करने लगे। ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह व्यक्ति-चित्र (पोर्ट्रेट) खींचने में सिद्धहस्त थे। आपने अनेक ऐसे व्यक्ति चित्र उतारे जो कला एवं तकनीक की दृष्टि से उच्च कोटि के थे। उन्हें जो भी देखता उनकी प्रशंसा किए बिना नही रहता। वे स्वयं ही फोटो खींचकर डेवलप करते थे और फिनिशिंग और टचिंग कर उनके ऐन्लार्जमेण्ट तैयार करते थे। पोर्ट्रेट खींचते समय लाइट और शेड का विशेष ध्यान रखते थे। एक फोटो खींचने में उन्हें दो-ढाई घंटे लग जाते थे। मैंने नगर के कुछ फोटोग्राफरो से जब उनकी फोटोग्राफी के विषय में पूछा तो उन्होंने बताया कि वे फोटोग्राफी से पैसा कमाने की अपेक्षा कलात्मक फोटो खींचने में अधिक विश्वास करते थे। वे फोटो खिंचवाने के लिए आने वाले व्यक्ति की हुलिया, वस्त्र आदि देखकर ही उसकी फोटो खींचते थे, ठीक न होने पर उसकी फोटो खींचने से मना कर देते थे।

नगर के सुप्रसिद्ध फोटोग्राफर कलाकुंज स्टूडियों और फोटो फास्ट कलर लेब के संचालक, छायारत्न अलकरण से सम्मानित श्री सत्यनारायण गोयल ने ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह की फोटोग्राफी के विषय में बताया कि गुरूजी (ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह) फोटोग्राफी कला में इतने सिद्धहस्त थे कि उनके द्वारा खींची गई फोटो में कोई कमी निकालने की किसी की हिम्मत नही होती थी। उसकी यह भी हिम्मत नहीं होती थी कि गुरूजी को स्वंय द्वारा खींची हुई फोटो दिखा सके। वह डरते थे कि गुरूजी उसमें अनेक कमियाँ निकाल देंगे। एक अच्छे फोटोग्राफर होने के साथ-साथ उनका स्वभाव भी कठोर था। वे किसी भी फोटो में कोई कमी हो, सहन नहीं कर सकते थे। वैसे उनका स्वभाव अत्यन्त मृदु था। अच्छे कलाकार को वे सम्मान और प्यार भी बहुत भार देते थे। वे हमेशा अपने को स्टूडियों में व्यस्त रखते थे।

मुझे पता चला कि सुप्रसिद्ध इतिहासकार राजस्थान विश्वविद्यालय (जयपुर) के पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष प्रो० आर० नाथ (रामनाथ) अक्सर ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह से उनके छीपीटोला (आगरा) स्थित निवास पर जाया करते थे। उनकी उनसे अच्छी मित्रता थी। मैं चित्रकार ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह तथा उनकी चित्रकला के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए उनके निवास केलाश विहार (आगरा) पहुँची। डा. आर. नाथ श्री पुरुषोत्तम सिंह के मित्र तो थे ही साथ ही मुगल काल के इतिहास पर उन्होंने बहुत शोध कार्य किया है। मेरे लिए यह 'एक पंथ दो काज' वाली बात हो गई क्योंकि श्री पुरुषोत्तम सिंह जी के साथ मुगल काल की चित्रकला के विषय में भी जानकारी मिल जायेगी। ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह मुगल काल की चित्रकला के विशेषज्ञ चित्रकार थे, उन्होने उस काल की चित्रकारी से प्रेरित होकर ही चित्रकारी की थी।

प्रो० रामनाथ मुझे घर पर ही मिल गए। मैंने उन्हें अपना परिचय दिया तथा उनसे भेंट करने का अपना उद्देश्य बताया। वे यह जानकर बहुत प्रसन्न हुए कि मैं पुरुषोत्तम सिंह के 'व्यक्तित्व और कृतित्व पर शोध

कार्य कर रही हूँ। मैंने उनसे पूछा "आपका ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह से परिचय कब और केसे हुआ?' वे बोले, ष्यह तो मैं निश्चित तौर पर नहीं बता सकता कि ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह जी से पहली मुलाकात कब हुई? परन्तु सन् 1950–51 में मैं कई बार उनके पास गया। मेरा उनसे परिचय मेरे एक मित्र यूसुफ खाँ के माध्यम से हुआ, उस समय पुरुषोत्तम सिंह छीपीटोला में पानी की टंकी के पास एक गौख वाले मकान में ऊपर की मंजिल में रहा करते थे। उनके पास छीपीटोला में ही यूनस खाँ रहते थे। यूनस खाँ के एक मित्र मुंशी अलम खाँ छीपीटोला की सब्जी मण्डी के बाजार वाले दरवाजे के पास एक गली में रहा करते थे। अक्सर हम तीनों ही उनके यहाँ लग जाया करते थे।

उनसे परिवार के विषय में पूछने पर बताया कि 'यह मैं बिल्कुल नहीं जानता और न मैंने कभी यह जानने की कोशिश की कि वे पूर्व में कहाँ के रहने वाले थे, उनके परिवार के अन्य लोग कहाँ रहते थे। और वे क्या करते थे?' और बताया कि मैंने उनके बनाए हुए अनेक चित्र देखे हैं। उनमें एक कशिश होती थी, नवीनता होती थी। काले सफेद के अलावा उनके द्वारा बनाये गये रंगीन चित्र तो इतने सजीव होते थे कि बरबस अपनी ओर खींच लेते थे। एक बार एक चित्र डाली पर लगे हुए एक गुलाब के फूल का था। उस फूल के ऊपर एक ओस की बूंद पड़ी हुई थी। वह गुलाब का फूल ऐसे लग रहा था जैसे यह फूल वे अभी बगीचे में से लेकर आये है। इसी प्रकार उनका दूसरा चित्र एक अंगूर की बेल का था, जिस पर अंगूर का गुच्छा लटका हुआ था। पुरुषोत्तम सिंह जी ने उसके विषय में बताया कि जब मैं इस चित्र को गौख की रोशनी में रख देता हूँ तब चिड़िया इन्हें असली अंगूर समझकर इनमें चोंच मारती हैं। वास्तव में वे गुणी कलाकार थे।'

निष्कर्ष

चित्रकला एक ऐसा सशक्त माध्यम है। जिसके द्वारा आध्यात्मिकता की गहन गहराईयों में प्रवेश कर सत्य का दर्शन कर सकते हैं। क्योंकि श्सत्यम् परम् धीमहि अर्थात सत्य ही परमेश्वर है। चित्रकला के माध्यम से हम प्रकृति के गहन और गूढ़ रहस्यों को समझ कर परम शक्ति का दर्शन कर सकते हैं। परमेश्वर हर जगह विधमान है। इस प्रकार संसार में बहुमुखी पक्षों में कला समायी हुई है। सभी कलाओं की अधिष्ठाता भारतीय चित्रकला है, जो आध यात्मिक तथा लोक कला के प्रतीक चिन्हों का एक जैसा रचा बसा संसार है। जिसके माध्यम से कला की पुरातन परम्परा एव आध्यत्मिकता के गूढ़ अर्थो का आसानी से आस्वादन किया जा सकता है। सभी कलाओं में अनेकानेक विधाओं के बीच भारतीय चित्रकला अपने आकर्षक रूप में उपलब्ध है। भारतीय चित्रकला की यह अक्षुण्य परम्परा भारत की लोक भावना एवं संस्कृति के अनूठे रूप का समिश्रण मानी जा सकती है।

ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह जो के चित्र एक ऐसे अटूट बन्धन में बंधे हैं जो अपने साथ भारत की पहचान को लिये हुए है, इनके चित्रों का कला पक्ष इनके तकनीकी संसार से जुड़ा हुआ है। क्योंकि इन चित्रों का विन्यास चित्राधारों की अनेकता के साथ उपलब्ध है। और यह चित्र भारतीय चित्रकला के कला पक्ष का एक ऐसा प्रामाणिक स्त्रोत है जिसके अद्भुत गुण इस कला की परम्परा एवं विरासत के विस्तृत पटल से परिचित कराते हैं साथ ही ये चित्र वर्ण तथा वर्णिका का उज्जवल प्रकाशन करते हैं। इन रंगों का मनौवैज्ञानिक, ध

ार्मिक एवं आस्थाजन्य पहलू चित्रों के वैभव की अनुभूति कराते है। चित्रों का वैभव रूप सौन्दर्य कला का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं। वहीं इन चित्रों की रंगत मन में आनन्द का आल्हाद एवं आश्यर्च की अनुभूति प्रदान कराती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1. हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' ने अपनी 'कलाकार' नामक कविता।
2. गुप्त डॉ. जगदीश- भारतीय कला के पदचिन्ह, दिल्ली, 1961
3. शर्मा लाकेशचन्द्र- भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, मेरठ, 1978।
4. डा. एम.एस. मावड़ी- भारत की प्रमुख चित्र शैलियाँ
5. राम कृष्णदास- भारत की चित्रकला, वाराणसी।
6. आर.ए. अग्रवाल- भारतीय चित्रकला की विवेचना।
7. अविनाश बहादुर वर्मा- भारतीय चित्रकला का इतिहास।
8. चिरंजीलाल झा- भारतीय चित्रकला का विकास।
9. विद्याधर महाजन- मुस्लिम कालीन भारत।
10. डॉ. गोपाल मधुकर चतुर्वेदी- भारतीय चित्रकला- ऐतिहासिक सन्दर्भ।
11. रामफल सिंह हिन्दु- मुस्लिम एकता का इतिहास भाग-3।
12. अमर उजाला
13. दैनिक जागरण
14. दैनिक आज
15. साप्ताहिक हिन्दुस्तान
16. दैनिक पंजाब केशरी
17. नव भारत टाइम्स
18. जनसत्ता
19. राजस्थान पत्रिका
20. V-S- Agrawal& Indian Art
21. Krishna chaitanya & A history of India Painting
22. Milo develand Beach & The Grand Mughal
23. Richard Kehin & The Art of Drawing Persian and Mughal Illustrations
24. Ashok Kumar Das & The Drawn of Mughal Painting
25. A-K- Das & Splendour of Mughal Painting-

मूर्तिकला में परिलक्षित देवी प्रतिमा का दैवीय एवं मानवीय रूपः कलचुरियों के विशेष सन्दर्भ में

डॉ0 अनामिका मौर्या
(असिस्टेन्ट प्रोफेसर)
शशि भूषण बालिका विद्यालय डिग्री कॉलेज,
लखनऊ

मूर्तिकला मनुष्य के सौन्दर्यबोध के अभिव्यक्तिकरण का एक सशक्त माध्यम होने के साथ ही साथ उसके सांस्कृतिक विचारों एवं भावनाओं के अर्थ को भी समझाने में सहायक रही। प्रारम्भ से ही मूर्तिकला का निर्माण समाज के उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए किया जाता रहा है। मूर्तिकला के माध्यम से धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ ही उनमें अलंकरण,श्रृंगार, कामुकता एवं सुन्दरता आदि के मनोभावों की अभिव्यक्ति भी दृष्टव्य हैं प्रस्तुत शोधपत्र में कलचुरिकालीन देवी प्रतिमाओं में अन्तर्निहित मानवीय रूप को प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रारम्भ से ही देवी प्रतिमाओं का अंकन विविध रूपों में किया जाता रहा है। जैसे- प्रजनिका के रूप में, मातृका रूप में, दाम्पत्य रूप में, अप्सरा, गणिका, नायिका, शालभंजिका, यक्ष-यक्षिणी आदि जहाँ देवी की दैवीय प्रतिमाओं का मानवीयकरण कर उन्हें जनसामान्य के अधिक निकट लाने का प्रयास किया गया, वहीं सामान्य स्त्री प्रतिमाओं में सौन्दर्यबोध, अलंकरण, भाव-भंगिमाओं एवं मुद्राओं पर अधिक बल दिया गया है।

इस काल की स्त्री प्रतिमाओं का दैवीय एवं मानवीय रूप में अंकन प्रचुरता से किया गया है। जिसके माध्यम से तत्कालीन समाज का स्त्रियों के प्रति क्या दृष्टिकोण था यह जानने का प्रयास किया है। देवी प्रतिमाओं का मानवीय रूप में अंकन विशेषतः मातृका प्रतिमाओं एवं दाम्पत्य प्रतिमाओं में देखने को मिलता है। स्त्री की प्रजनन शक्ति के रूप में या मातृ रूप में उपासना प्रारम्भ से ही प्रचलित रही है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक स्त्री मूर्ति में उसके उदर से एक वृक्ष को निकलते हुए दर्शाया गया है। मातृदेवी के उदर से वृक्ष का स्फुरण दिखाना उसकी प्रजनन शक्ति का सूचक है या मातृदेवी द्वारा प्रजा हेतु अन्न उत्पादन का संकेत हो सकता है। इन्हें मातृदेवी की मूर्ति माना जाता है।[1] मातृदेवी की मूर्तियों को प्रायः नग्नावस्था में उत्कीर्ण करने का कारण सम्भवतः उनकी प्रजनन शक्ति को दर्शाना था।

प्रारम्भ से ही प्रचलन में रही मातृदेवी की पूजा जब शाक्त सम्प्रदाय में समाहित हुई तब देवी के मातृत्व रूप के साथ-साथ उनका रौद्र एवं सशक्त रूप भी प्रदर्शित हुआ। प्रारम्भिक मूर्तियों में मातृदेवी को शिशु के साथ दिखाया जाता था किन्तु कालान्तर में इनका स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित होने पर इन्हें वृहदस्वरूप के साथ विभिन्न शस्त्रों एवं आभूषणों से सुसज्जित प्रदर्शित किया जाने लगा तथा इनका मातृत्व पक्ष कुछ संकुचित हो

गया। रूपमण्डन में वर्णित है कि मातृकाओं के एक ओर वीरभद्र और दूसरी ओर गणेश को प्रदर्शित करना चाहिए।[2] गुर्गी से प्राप्त सप्तमातृकों की संयुक्त प्रतिमाओं में मातृकाओं के साथ उनके गोद में शिशु को लिए प्रदर्शित किया गया है तथा उन्हें आयुध एवं वाहनों सहित दर्शाया गया है। प्रतिमा के दोनों ओर वीरभद्र एवं गणेश को भी रूपांकित किया गया है।[3]

अधिकांश सप्तमातृका प्रतिमाओं का अंकन सामूहिक रूप में किया गया है किन्तु एकल प्रतिमाएँ भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। इनमें विशेष रूप से चामुण्डा का स्वतन्त्र अंकन सर्वाधिक हुआ है। चामुण्डा के अन्य मातृकाओं के समान शिशु के साथ न दिखाए जाने का कारण उनका कंकाल एवं भयावह स्वरूप है।

कारीतलाई से प्राप्त उमा–महेश्वर की प्रतिमाओं में उमा को उनके दोनों पुत्रों गणेश, कार्तिकेय के साथ अंकित किया गया है। इस काल में उमा–महेश्वर की अधिकांश प्रतिमाओं में गणेश–कार्तिकेय को प्रदर्शित किया गया है।

विदिशा से प्राप्त अम्बिका देवी की प्रतिमा में देवी ललितासन मुद्रा में विराजमान है। देवी बायीं ओर गोद में अपने छोटे बेटे प्रियंकर को लिए हुए हैं तथा दाहिनी ओर उनके पैर के पास उनका बड़ा बेटा शुभंकर खड़ा है। देवी के मुख पर सौम्य मुस्कान बिखरी हुई है जो प्रतिमा को अत्यन्त प्रभावोत्पादक बनाती है।[4] शहडोल से प्राप्त कृष्ण जन्म की एक प्रतिमा मातृत्व का अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत करती है। इस प्रतिमा में माँ यशोदा शिशु कृष्ण को लेकर शेषशै" या पर लेटी हुई हैं, शेष का फण उनको और शिशु कृष्ण को घेरे हुए हैं।[5]

इस प्रकार उपर्युक्त प्रतिमाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि देवियों को शिशु के साथ प्रदर्शित करना उनके मातृत्व भाव को दिखाने की चेष्टा है। मातृकाओं की शिशु सहित आकृतियों के माध्यम से उनके सामान्य मानवीय रूप में दर्शाया गया है।

कलचुरि दाम्पत्य प्रतिमाओं में अद्‌भुत भावव्यंजना, लालित्य, स्वाभाविकता, रमणीयता, अभिव्यक्ति की सजीवता एवं सौन्दर्यभाव आदि तत्व इसे मौलिकता प्रदान करते हैं।

दाम्पत्य प्रतिमाओं में जबलपुर से प्राप्त उमामहेश्वर की प्रतिमा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस प्रतिमा में शिव पार्वती ललितासन मुद्रा में विराजमान है। पार्वती उनकी बायीं जंघा पर बैठी हैं, उनका दाहिना हाथ शिव के कन्धो पर है और शिव का बायॉ हाथ पार्वती के बाएँ स्तन को स्पर्श कर रहा है। शिव अपने दाहिने ऊपरी हाथ से पार्वती की ठुड्डी को ऊपर उठा रहे हैं। प्रतिमा में दाम्पत्य प्रेमभाव को अत्यन्त ही सौन्दर्य के साथ प्रदर्शित किया गया है।[6]

रानी दुर्गावती संग्रहालय में संरक्षित एक प्रतिमा में उमा महेश्वर को चौपड़ खेलते हुए प्रदर्शित किया गया है। यह प्रतिमा एक कथानक को व्यक्त करती है जिसमें शिव–पार्वती चौपड़ खेल रहे हैं और पार्वती द्वारा शिव को हरा देने पर पार्वती के सहायक शिव के वाहन नन्दी को अपनी शर्तानुसार जीत कर ले जाते प्रदर्शित किया गया है। शिव को हराकर पार्वती अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में है। दम्पत्ति का इस तरह चौपड़ खेलना, मनोरंजन करना उनके स्वस्थ सुखद वैवाहिक जीवन का प्रमाण है।[7]

जबलपुर से प्राप्त रिद्धि और गणेश की प्रतिमा को शिव-पार्वती के समान ललितासन मुद्रा में गणेश के बायीं जांघ पर रिद्धि को आलिंगनबद्ध दिखाया गया है। गणेश रिद्धि को एकटक निहार रहे हैं और रिद्धि के मुख पर मधुर मुस्कान बिखरी है।[8]

तेवर से प्राप्त लक्ष्मीनारायण की प्रतिमा में लक्ष्मी को विष्णु की बायीं जांघ पर बैठे दिखाया गया है। शिव-पार्वती की प्रतिमाओं की तुलना में इस प्रतिमा में अलंकरण की बहुलता है। वही लक्ष्मी-विष्णु के साथ ही उनके वाहन गरूड़ को भी अत्यधिक अलंकृत प्रदर्शित किया गया है किन्तु इसके बावजूद भी प्रतिमा अत्यन्त आकर्षक है।[9]

मन्दसौर से प्राप्त शक्ति गणेश की प्रतिमा में शक्ति और गणेश को समभंग मुद्रा में खड़े दिखाया गया है। गणेश सामने की ओर देख रहे हैं, वहीं शक्ति गणेश की तरफ मुख करके खड़ी है।[10]

जबलपुर से प्राप्त अग्नि-स्वाहा की प्रतिमा में स्वाहा को अग्नि की गोद में बैठे हुए दिखाया गया है। स्वाहा का दाहिना हाथ अग्नि के कन्धो पर है और बायाँ हाथ वक्ष पर। अग्नि-स्वाहा दोनों को हल्के आभूषण ाों से अलंकृत दिखाया गया है जिससे प्रतिमा की सुन्दरता अधिक उभर कर सामने आती है।[11]

नरवर (शिवपुरी) से प्राप्त गोमेद-अम्बिका की प्रतिमा में गोमेद अम्बिका को बैठे दिखाया गया हैं अम्बिका अपनी जांघ पर शिशु लिए हुए हैं।[12]

इस प्रकार उपर्युक्त दाम्पत्य प्रतिमाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि लगभग सभी दाम्पत्य प्रतिमाओं को एक ही मुद्रा एवं शैली में बनाया गया है। हिन्दू संस्कृति के अनुसार पत्नी को अपने पति के बाएँ भाग में स्थापित किया जाता है जिसका तत्कालीन समय में निर्मित मूर्तियों में भी प्रतिबिम्ब परिलक्षित हो रहा है। इन प्रतिमाओं से सृष्टि के निरन्तर सृजन, आत्मविलय आदि गूढ़ एवं रहस्यात्मक, धार्मिक, दार्शनिक भावनाओं को व्यक्त करने की चेष्टा कलचुरि शिल्पकला में दृष्टिगत होती है। ये प्रतिमाएँ धार्मिक होने के साथ-साथ सामान्य मानवीय पक्षों को भी दर्शाती है, जिसके कारण ये जनमानस के अधिक निकट रही।

संदर्भ ग्रन्थ-

1. मैके, ई0, फर्दर एक्सवेशन एट मोहनजोदड़ों, पृ0 337, 1934, मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन, दिल्ली।
2. सहाय, भगवन्त, आइकनोग्राफी ऑफ माइनर हिन्दू एण्ड बुद्धिस्ट डाइटिइज, पृ0 213, 1975, अभिनव पब्लिकेशन्स।
3. महन्त घासीदास स्मारक संग्रहालय, रायपुर।
4. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, राज्य संग्रहालय, भोपाल।
5. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, राज्य संग्रहालय, भोपाल।
6. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर।
7. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर।
8. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर।

9. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर।
10. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर।
11. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर।
12. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर।

साहित्य का समाजशास्त्र और उसका स्वरूपगत अध्ययन (मैनेजर पाण्डेय के विशेष परिप्रेक्ष्य में)

डॉ० बृजेश कुमार पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
शासकीय रामानुज प्रताप सिंहदेव
स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बैकुण्ठपुर, कोरिया (छ.ग.)

संसार में विभिन्न भाषाओं का अध:पतन हमने देखा है और आज भी वह प्रक्रिया चल ही रही है। कभी कोई नवीन भाषा बड़ी तेजी से प्रगति करती है तो कभी पहले से विकसित कोई प्रतिष्ठित भाषा अपना अवमूल्यन करती दृष्टिगोचर होती है। ऐसा सामाजिक अभिरुचियों में परिवर्तन के फलस्वरूप होता है। जब सामाजिक अभिरुचियों में परिवर्तन होता है तो साहित्य में भी परिवर्तन अनिवार्य हो जाता है। कई बार तो ऐसा भी होता है जबकि समाज किसी एक बिन्दु पर एक ही जगह केन्द्रित हो जाता है। जैसे कि हिन्दी भाषा के साथ हुआ है। कभी हिन्दी भाषा का केन्द्र काशी हुआ करता था। कभी इलाहाबाद और आज दिल्ली बना हुआ है। यानी कि आज साहित्य पर सामाजिक संदर्भ और राजनीतिक परिवेश का जितना व्यापक और निर्णायक प्रभाव पड़ रहा है, उतना पहले कभी नहीं था।[1] आज साहित्य की दुनिया के फलक में व्यापक विस्तार हुआ है उसमें समाज के साथ-साथ आर्थिक ढाँचा, राजनीतिक परिवेश और नित बदलती सामाजिक संरचनाओं की विशेष भूमिका है। इस प्रकार लेखक की सामाजिक स्थिति से उसके लेखन के अनेक प्रकार के संबंधों की पहचान साहित्य के समाजशास्त्र की एक विशेषता के रूप में रेखांकित किया जा सकता है।

साहित्यिक समाजशास्त्र केवल कृति की व्याख्या या केवल उसमें निहित समाज की व्याख्या तक ही सीमित नहीं होता, बल्कि उसका लक्ष्य तो 'साहित्यिक कृति की सामाजिक अस्मिता की व्याख्या है। साहित्यिक कृति की सामाजिक अस्मिता रचना के सामाजिक संदर्भ और सामाजिक अस्तित्व से निर्मित होती है, जिसमें कोई रचना साहित्यिक कृति बनती है।'[2] साहित्य को अच्छा या बुरा बनने के लिए पाठक की निगाहों के बीच से होकर गुजरना पड़ता है। प्रत्येक पाठक की अपनी विशिष्ट दृष्टि होती है, जिसके माध्यम से वह कृति को परखता है। यानी कि कोई कृति कितनी उत्कृष्ट है. इसका निर्णय विज्ञ पाठक समुदाय ही कर सकता है और इसके उपरान्त ही कोई कृति साहित्यिक कहलाने की हकदार होती है। इस प्रकार साहित्यिक-प्रक्रिया के मुख्यत: तीन पक्ष होते हैं- लेखक, रचना और रचना का पाठक। लेखक कृति का रचयिता होता है और पाठक उसका विश्लेषणकर्ता। साहित्य के समाजशास्त्र में इन तीनों का विवेचन होता है और इनके परस्पर आपसी संबंधों का भी। साथ ही इसमें केवल साहित्य और सामाजिक संरचनाओं का ही विश्लेषण न होकर कलात्मक साहित्य और लोकप्रिय साहित्य के प्रयोजन तथा उसके अर्थपूर्ण सामाजिक संदर्भ का भी विश्लेषण

होता है। इस प्रकार साहित्य का समाजशास्त्र एकांगी प्रविधि न होकर समस्त जीवन जगत, कलाओं आदि को अपने में समेटे हुए समग्रतावादी है।

समाजशास्त्री साहित्य के समाजशास्त्र को समाजशास्त्र की महज एक शाखा के रूप में ही व्याख्यायित करते हैं, जबकि साहित्य के विद्वान इसे एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा मानते और व्याख्यायित करते हैं। 'समाजशास्त्री के सामने यह सवाल होता है कि समाज को समझने में साहित्य क्या विशेष मदद कर सकता है, जबकि साहित्य की चिन्ता करने वाला आलोचक यह सवाल लेकर चलता है कि वह समाजशास्त्रीय दृष्टि से किसी साहित्यिक कृति की क्या विशिष्ट समझदारी पा सकता है।'[4] आज साहित्य का लक्ष्य साहित्य की सामाजिकता की विशद व्याख्या करना हो गया है, इसी अर्थ में आज साहित्य का समाजशास्त्र एक स्वतंत्र साहित्य विधा के रूप में विकसित हो रहा है।

समाजशास्त्र की भिन्नता के आधार पर साहित्य के समाजशास्त्र के भी कई प्रकार दृष्टिगत होते हैं। साहित्य के समाजशास्त्र की मुख्यत: दो धाराएँ हैं- एक मीमांसापरक जिसमें कि साहित्य के सामाजिक महत्व और अर्थ का विश्लेषण होता है और दूसरा अनुभववादी जिसमें कि साहित्य के सामाजिक अस्तित्व का विश्लेषण होता है। इनमें से दूसरी धारा को ही प्राय: साहित्य के समाजशास्त्र के रूप में माना जाता है।'[5] यही कारण है कि साहित्य के समाजशास्त्र के एक निश्चित ढाँचे के विषय में हममें प्राय: अनिश्चय बना रहता है। समाजशास्त्र की सबसे पुरानी पद्धति विधेयवादी है, जिसका अनुकरण हमें तेन के समाजशास्त्रीय चिन्तन में दिखाई देता है। अनुभववादी धारा के मुख्य पुरस्कर्ता फ्रांस के रोबेट एस्कार्थी हैं। संरचनावादी धारा के मुख्य संवाहक गोल्डमान हैं, संरचनात्मक कार्यात्मक धारा के प्रमुख पुरस्कर्ता जॉन हॉल हैं। रेमण्ड विलियम्स आधुनिक मार्कसवादी समाजशास्त्र के प्रयोक्ता हैं। इस प्रकार साहित्य का समाजशास्त्र एक धारा में न चलकर समाजशास्त्र के समान ही कई धाराओं में निरन्तर विकासमान है।

पहले साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम केवल कविता ही थी, लेकिन आधुनिक युग में गद्य के प्रवर्तन के साथ ही अनेक विधाओं का विकास हुआ है। ऐसे में साहित्य की धारणा में निश्चित ही परिवर्तन हुआ है और साहित्य की इस प्रकार की धारणा में हुआ नवीन विकास सामाजिक विकास से जुड़ा है। नये सामाजिक सन्दर्भ से जब नये साहित्य का प्रवर्तन हुआ तो साहित्य की नवीन अवध ारणा भी हमारे सामने आयी। इस प्रकार साहित्य की धारणा में परिवर्तन और उसके विकास में सामाजिक विकास की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्य की प्रत्येक धारणा की एक दृष्टि होती है, उसी दृष्टि के अनुरूप ही साहित्य की दिशा और दशा निर्धारित होती है। इनमें रूपवादी धारणा और मनोवैज्ञानिक धारणाओं की बात पाण्डेय जी बड़े ही सशक्त ढंग से उठाते हैं और इन्हें इतिहास तथा साहित्य दोनों के लिए सर्वथा त्याज्य बताते हैं। उनका कहना है कि- रूपवादी और मनोवैज्ञानिक धारणाओं के आधार पर न तो साहित्य का इतिहास लिखा जा सकता है और न तो साहित्य का समाजशास्त्र बन सकता है।'[6]

साहित्य की समाजशास्त्रीय मीमांसा में या यों कहें कि साहित्यिक रचनाओं को सामाजिक कर्म मानने की धारणा का समाजशास्त्र में व्यावहारिक रूप होना चाहिए। इसके लिए पाण्डेय जी का कहना है कि- 'इसके लिए कर्ता के रूप में लेखक का महत्व स्वीकारना होगा, क्योंकि आज पाठ-वैयक्तिक आलोचना और पाठोन्मुखी

साहित्य में लेखक के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है। लेखक की सार्थक क्रिया के रूप में कृति के अर्थ, उसकी संरचना और उसकी अभिव्यक्ति के रूपों का विवेचन होना चाहिए। सामाजिक कर्म के नाते रचनाकर्म के दौरान दूसरों की चिन्ता अर्थात् समकालीन सामाजिक- सांस्कृतिक परिवेश का बोध और कृति के लक्ष्य के रूप में पाठक समुदाय का महत्व स्वीकार करना होगा।'[7]

समाज से साहित्य के संबंध की खोज एक जटिल समस्या है और ऐसा करते समय सादृश्य का सहारा लेना पड़ता है, क्योंकि बिना इसके हम अपनी बात प्रामाणिक ढंग से सामने नहीं रख सकते। साहित्य और समाज का आपस में चाहे जितना घनिष्ठ संबंध क्यों न हो, लेकिन उसमें परस्पर कुछ न कुछ अन्तर अवश्य होता है। इसलिए पाण्डेय जी की यह स्थापना कितनी महत्वपूर्ण है कि- 'आलोचनात्मक चिन्तन में सादृश्य का सहारा लेना न कोई नयी बात है और न गलत। सादृश्य, उपमा, और रूपक हमेशा चिन्तन की भाषा के सहायक रहे हैं। चेतना और अभिव्यक्ति के संबंध के बारे में विचार को वस्तुपरक बनाने के लिए सादृश्य का सहारा लेना पड़ता है।'[8] लेकिन इस सादृश्य का सहारा मनमाने ढंग से न करके इसके प्रयोग में सावधानी बरतने का विशेष ध्यान रखना होगा अन्यथा बात उल्टी हो जायेंगी।

साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति कल्पना के माध्यम से भी संभव है। यह प्राचीन काल से लेकर आज तक साहित्य रचना का प्रमुख तत्व बना हुआ है। साथ ही साहित्य निर्माण में इसकी सर्जनात्मक भूमिका भी होती है। विभिन्न विधाओं में कल्पना की क्रियाशीलता भी भिन्न-भिन्न होती है। रचनाकार काव्य की मदद से ही पहले दूसरों के अनुभव-जगत में प्रवेश करता है और बाद में कृति के माध्यम से पाठकों को अपने अनुभव का सहयोगी बनाता है। स्वतंत्रता, विरोध और आंलोचना की शक्ति के रूप में साहित्यिक कल्पना का विवेचन साहित्य के समाजशास्त्र का विषय है।'[9] अनेक बार कल्पना के माध्यम से हम समाज की एक वैकल्पिक व्यवस्था का खाका निर्मित करते हैं, जो कि वर्तमान समाज व्यवस्था का विरोध करती है। ऐसी कल्पना जो कि सामाजिक व्यवस्था के विरोध में एक वैकल्पिक आधार प्रदान करे भी साहित्य के समाजशास्त्र में विचारणीय है।

समाज में साहित्यकार और साहित्य व्यापक बदलाव लाने में पूर्ण रूप से सक्षम है। इसका सबसे ज्वलन्त उदाहरण हमें स्वाधीनता आन्दोलन के समय असंख्य प्रतिबन्धित कविताओं नाटकों आदि पर दृष्टिपात करने से प्राप्त होता है। लेखक पाठकों की चेतना को व्यापक बनाता है, उनकी संवेदनशीलता परिष्कृत करता है और उन्हें समाज तथा जीवन के बारे में नई दृष्टि देता है। इसी प्रक्रिया में वह कई बार सत्ता और व्यवस्था से बेमेल होने के कारण खतरनाक मान लिया जाता है।'[10] कलाकार की स्थिति का समाज सापेक्ष विवेचन भी कई ढंग से होता आया है। पहले तो इसका विवेचन कला के इतिहास के अन्तर्गत होता था, लेकिन आज स्थिति बदलने पर कलाकारों या रचनाकारों की सामाजिक स्थिति का विवेचन समाजशास्त्रीय दृष्टि से होने लगा है। समाज में साहित्य की स्थिति क्या है तथा इसकी क्या भूमिका है या होनी चाहिए? इस प्रक्रिया को समझने में भी साहित्य का समाजशास्त्र हमारी पर्याप्त मदद करता है। सम्पूर्ण साहित्यिक प्रक्रिया के तीन मुख्य घटक हैं- लेखक, कृति और पाठक। इसलिए हमें इनके आपसी संबंधों को भी पूरे ऐतिहासिक और सामाजिक परिवेश से संयुक्त करके समझने की आवश्यकता है। चूँकि साहित्य की पूरी प्रक्रिया व्यापक सामाजिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया के भीतर घटती है, इसीलिए लेखक, कृति और पाठक के आपसी संबंध को सामाजिक ऐतिहासिक

प्रक्रिया के अंग के रूप में ही यथार्थवादी ढंग से समझा जा सकता है।'[11]

साहित्य के समाजशास्त्र की चिन्तन परम्परा की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के आरम्भ के साथ शुरु हुई और इसका उद्देश्य हुआ साहित्य के बारे में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का विकास। इसे व्यवस्थित रूप देने का श्रेय फ्रांस की मादाम स्तेल को है। सन् 1800 में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'सामाजिक संस्थाओं से साहित्य के संबंध पर विचार से इस चिन्तन परम्परा की शुरुआत हुई। मादाम स्तेल ने जब साहित्य के सामाजिक स्वरूप, उसकी ऐतिहासिक सत्ता और राजनीतिक संस्थाओं से उसके सम्बन्ध पर विचार किया था, तब न मार्क्सवाद पैदा हुआ था, न समाजशास्त्र और न निधेयवाद।'[12] इससे जो समाजशास्त्री यह आरोप लगाते हैं कि साहित्य का समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की महज एक शाखा है का खण्डन स्वयमेव हो जाता है, क्योंकि स्वयं समाजशास्त्र का प्रारम्भ इसके के बाद हुआ।

इस प्रकार साहित्य का समाजशास्त्र आज एक स्वतंत्र चिन्तन का परिक्षेत्र बन गया है, जिसमें कि किसी एकांगी दृष्टि का निषेध है। बिना सामाजिक-ऐतिहासिक साहित्यिक प्रक्रिया से गुजरे किसी साहित्य का यथेष्ट तथा प्रामाणिक मूल्यांकन और उसकी सार्थक सामाजिक वास्तविकता संदिग्ध ही रहती है। साहित्य का समाजशास्त्र इन सबको यथोचित महत्व प्रदान करता है। वह किसी व्यक्तिगत रुचि-अरुचि के बदले व्यापक सामाजिक हित की चिन्तना से संचालित होता है। यह किसी के वाग्विलास और बौद्धिक व्यायाम का साधन न होकर सामाजिक सार्थकता की दशा में एक हस्तक्षेपकारी भूमिका का निर्वहन करता है।

संदर्भ :

1. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका मैनेजर पाण्डेय, द्वितीय संस्करण-2001, हरियाणा साहित्य अकादमी, भूमिका।
2. वही।
3. वही।
4. वही, पृ. 5
5. भूमिका।
6. वही, पृ. 9
7. वही, पृ. 10
8. वही, पृ. 16
9. वही, पृ. 17
10. वही, पृ. 18
11. वही, पृ. 33
12. वही, पृ. 43-44

राष्ट्रीय विकास में साहित्य का योगदान

डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी
कूबा पी0जी0 कालेज, दरियापुर, नेवादा,
आजमगढ़, उ.प्र.

साहित्य समाज का दर्पण होता है, और समाज का प्रतिबिम्ब भी। किसी भी राष्ट्र या सभ्यता की जानकारी उसके साहित्य से ही प्राप्त होती है। साहित्य लोक जीवन का अभिन्न अंग है। किसी भी काल के साहित्य से उस समय की परिस्थितियों, जनमानस के रहन-सहन, खान-पान व अन्य गतिविधियों का पता चलता है। समाज साहित्य को प्रभावित करता है और साहित्य समाज पर प्रभाव डालता है। दोनों ही एक सिक्के के दो पहलू है। साहित्य का रामाज से वही सम्बन्ध है जो सम्बन्ध आत्मा का शरीर से होता है। साहित्य समाज रूपी शरीर की आत्मा है, साहित्य अजर-अमर है. किसी महान विद्वान ने कहा है कि समाज नष्ट हो सकता है किन्तु साहित्य का कभी नाश नहीं हो सकता।

साहित्य का उद्देश्य मनोरजन करना मात्र नहीं है, इसका उददेश्य समाज का मार्गदर्शन करना है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है कि केवल मनोरंजन ही कवि का कर्म नहीं होना चाहिए, उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।

बीसवीं शताब्दी के प्रमुख साहित्यकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्य को जनता का संचित प्रतिबिम्ब माना है। "आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य को ज्ञानराशि का संचित कोष कहा है।" पंडित बालकृष्ण भट ने साहित्य को जनसमूह के हृदय का विकास माना है।

भारतीय संस्कृत साहित्य ऋग्वेद से प्रारम्भ होना माना गया है। महर्षि व्यास, महर्षि बाल्मीकि जैसे ऋषियों ने महाभारत एवं रामायण जैसे महाकाव्यों की रचना की है। व्यास, कालिदास व अन्य कवियों ने संस्कृत में नाटक लिखे हैं, जो साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।

उक्त साहित्य कई भाषाओं में जैसेः अवधी में गोस्वामी तुलसीदास, बृजभाषा में सूरदास, मारवाड़ी में मीराबाई, खड़ी बोली में कबीरदास, रसखान, मैथिलीशरण गुप्त आदि प्रमुख कवियों ने रचनाएँ लिखी है। जिस राष्ट्र का साहित्य जितना अधिक समृद्ध होगा वह राष्ट्र उतना ही शक्तिशाली होगा।

मानवीय सभ्यता एवं राष्ट्र के विकास में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विचारों ने साहित्य को जन्म दिया है और साहित्य ने मानवीय विचारधारा को गतिशीलता प्रदान की है। इतिहास साक्षी है कि किसी भी राष्ट्र या समाज में जितने भी परिवर्तन आये हैं वे सब साहित्य के माध्यम से ही आये हैं। साहित्यकार समाज में फैली कुरीतियों, विसंगतियों, अभावों, विषमताओं तथा असमानताओं के बारे में लिखता है। इनके प्रति जनमानस को जागरूक करने का कार्य करता है। जब सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का पतन होने

लगता है तब साहित्य ही जनमानस का मार्गदर्शन करता है।

जीवन में मानव के साथ क्या घटित होता है? उसे साहित्यकार अपने शब्दों में रचकर साहित्य की रचना करता है अर्थात साहित्यकार जो देखता है, अनुभव करता है, चिंतन करता है, विश्लेषण करता है उसे यह अपने शब्दों में लिख देता है। साहित्य ने सदैव राष्ट्र व समाज को नई दिशा देने का कार्य किया है। साहित्य जनमानस को सकारात्मक सोच तथा लोक कल्याण के कार्यों के लिए सदैव प्ररेणा देने का कार्य करता रहा है।

प्रत्येक देश का साहित्य अपने देश की भौगोलिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से जुड़ा होता है। साहित्यकार अपने देश के अतीत से प्राप्त विरासत पर गर्व करता है एवं वर्तमान का मूल्यांकन करता है और भविष्य के लिए सपने बुनता है और इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह राष्ट्रीय आकांक्षाओं से परिचालित होता है।

राष्ट्रीय विकास को अंतर्राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने की कोशिश की जानी चाहिए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यता के आधार पर कहें तो साहित्य मनुष्य के हृदय को स्वार्थ सम्बन्धों के संकुचित मंडलों से ऊपर उठाकर लोक सामान्य की भावभूमि पर ले जाता है। जहाँ पर जगत की विभिन्न गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है।

भारत जैसे देश के सन्दर्भ में राष्ट्रीयता के बारे में कुछ दुविधाएं हैं। भारत मिश्रित संस्कृतियों का देश है। वर्तमान में साहित्यकारों के लिए आज भी भारत की मौलिक समस्या भूख, गरीबी, बेरोजगारी, एवं असमानता आदि है। भारत में राष्ट्रवाद का उदय उन परिस्थितियों में हुआ है जिन परिस्थितियों में राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने की बजाय बाधाएं उत्पन्न हुई है। परन्तु आधुनिक साहित्य ने राष्ट्रवाद के विकास करने में अपनी अहम भूमिका निभाई है। यही कारण है कि भारत की जनसख्या बहुधर्मी- बहुजातीय एवं बहुभाषी होने के बाद भी राष्ट्रवाद की ओर अग्रसर है। इसका श्रेय साहित्य को ही जाता है। वर्तमान साहित्य में लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना को लेकर छटपटाहट देखी जा सकती है।

साहित्य अब सामाजिक सक्रियता की ओर पढ़ना बाहता है। परिवर्तन की अदम्य चाह में कचि, कलम की ताकत के द्वारा नई भूमिका में 21वीं सदी में प्रवेश कर चुका है। आज का समय उस दौर का साक्षी है, जहा मनुष्य के अमानवीयकरण की गति में तीव्रता आयी है। वैचारिक दृष्टि से समाजवाद का स्वरूप ध्वस्त हुआ है, तो यांत्रिक सभ्यता का कहर भी विद्यमान है। मानवता को खुटियों पर टांग देने का प्रयास हो रहा है। आज साहित्यकार को न केवल आक्रोश व्यक्त करना होता है, बल्कि यह उस विचारहीनता को चुनौती दे रहा है।

आजादी के 74 साल पूरे होने पर भी हवा, पानी और रोटी की समस्या का हल नहीं हो पाना उस तंत्र का वास्तविक चेहरा प्रस्तुत करता है, जिसका प्रभाव इस दशक तक जारी है। आज के साहित्य का आक्रोश देर तक संयमित नहीं रह पाता है। मनुष्य के राक्षस बनने की प्रक्रिया पर आज का साहित्य उस विचारहीन, बेढाल, निर्द्वन्द्व अथवा मरे हुए लोगों की माति पीढ़ी पर व्यंग्य कर रहा है।

राष्ट्रीयता साहित्य सर्जन का महत्वपूर्ण पड़ाव है पर आज राष्ट्रीयता को संकीर्ण अवधारणा के रूप में व्याख्यापित किया जा रहा है। विशेषकर उन पश्चिमी शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवियों द्वारा जो गुलामी की दासता को पीठ पर लादकर प्रसन्न है तथा राष्ट्र पर राष्ट्रीयता के राजनीतिक आयाम को ही देखने के लिए अभिशप्त है। आज सम्यताओं को धैर्य का पर्याय बनाकर प्रस्तुत किया जा रहा है। तब अधश्रद्धा ने मानवीय कटुता को जन्म दे दिया है। कभी अत्याधिक मांग ने किसी का हक छीना है तो नक्सली चिंताओं ने समाज की व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगा दिये हैं। जातीय, उन्माद प्रतिहिंसा के भाव और प्रतिशोध की चिंगारी लिये नयी सदी का प्रवेश हुआ है। आज का साहित्यकार आक्रोश का सर्जक होने के बावजूद अराजकतावादी मूल्यों का विरोधी है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी अपने निबन्धों में प्राचीन भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूप को प्रत्यक्ष कर नयी युवा पीढ़ी को उसके महत्व से परिचित कराया है। राष्ट्रीयता का एक अन्य पक्ष वहाँ दिखाई देता है, जहाँ रचनाकार अपनी रचनाओं में वर्तमान के प्रति अपनी चिंता व्यक्त करता है और देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार करता है। इन स्थितियों में रचनाकार सुधार की कामना करता है और जनता का आह्वान करता है तथा स्वयं भी सक्रियतापूर्वक इसमें भाग लेता है। देश की आजादी के संघर्ष काल से लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति तक तथा उसके बाद की रचनाएँ इसका प्रबल प्रमाण है।

विचारधारा का जितना सरल इस्तेमाल साहित्य में होगा, साहित्य उतना ही विशिष्ट होगा। रचनाकार राष्ट्रीयता को साहित्य सर्जन के लिए उपजीव्य के रूप में ग्रहण करता है। इस राष्ट्रीयता का अधिष्ठान सांस्कृतिक है, राजनीतिक नहीं। जो लोग राष्ट्रीयता को (नेशन स्टेट) की अवधारणा से जोड़ते है और उसकी तुलना पश्चिम के राष्ट्रवाद से करते हैं ये केवल पश्चिम के चश्मे से ही चीजों को देखते हैं।

वैश्वीकरण की इस अवधारणा में स्थानीयता का तत्व छूट जाता है। वर्तमान में कई साहित्यकारों ने देश के स्वरूप का मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है और किसी ने उसकी महिमा का गायन किया है। अनेक रचनाकारों ने भारत के अतीत का गौरव और वर्तमान की स्थिति की दुरावस्था का वर्णन किया है। अनेक कविताओं में चुनौतियाँ ललकार और गर्जना के साथ बलिदान की मानसिकताओं को उभारा है। इन अनेक प्रकार की रचनाओं को राष्ट्रीय चेतना मानने में कोई समस्या नहीं है। समस्या आजादी के वास्तविक सरोकारों की खोज करने वाली रचनाओं के साथ है। छायावाद के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पंत का यह कहना युक्तिसंगत है कि "हमारा विशाल देश राष्ट्र की भावना या कल्पना के वैदिक युग से परिचित रहा है।"

राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने में आधुनिक साहित्य का बहुत बड़ा योगदान है। राष्ट्रवाद से सामुदायिक भावना का विकास होता है और लोकतांत्रिक भावना से राष्ट्रवाद समृद्ध होता है। देश की रक्षा हित एक समाज के जातीय स्वरूप के विकास की आकांक्षा राष्ट्रीय चेतना का अविभाज्य अंग है।

देश की रक्षा उसका हित केवल नारों में सुरक्षित रहता है। क्या हम राष्ट्रीय गौरव में जो गीत गाएगे, वही राष्ट्रीयता के दायरे में आयेगा? क्या 15 अगस्त या 26 जनवरी को ही राष्ट्रगान या देश भक्ति के फिल्मी गीत गा लेना ही हमारी राष्ट्रीयता या देशभक्ति की इतिश्री है? ये कई यक्ष प्रश्न आज के युवा साहित्यकारों को विद्रोही रचनाओं के लिए उकसाते हैं।

यदि वर्तमान में हमने कुछ खोया है तो वह रिश्तों की बुनियाद। दरकते रिश्ते, कम होती स्निग्धता, प्रेम और आत्मीयता इतिहास की वस्तु बनते जा रहे हैं। राष्ट्रीयता का एक पक्ष है अपने अतीत की स्मृति।

अपनी सस्कृति के प्रति गौरव बोध वस्तुतः राष्ट्रीय अस्मिता का एक हिस्सा है और राष्ट्रीय अस्मिता राष्ट्रीयबोध का अभिन्न अंग है। प्रगति विकास सस्कृति, इतिहास, भूगोल आदि की जड़ भाषा होती है और भाषा को साहित्य समृद्ध करता है। साहित्य प्रत्येक वर्तमान को कलात्मक एवं यथार्थ रूप में समाज के सम्मुख रखता है। मनुष्य चाहे जितनी भी प्रगति कर ले, सभ्यता का दभ भर ले, और विकास की डींगें हांक ले पर जब तक वह भीतर से सभ्य नहीं होगा तब तक सही मायने में मनुष्य की प्रगति नहीं हो सकती। बाहरी सभ्यता भौतिक प्रगति को दर्शाती है तो भीतरी सभ्यता मानवता को तथा मानवीय मूल्यों के आदर्शों को परिलक्षित करती है।

समाज की आन्तरिक और बाह्य प्रगति के लिए साहित्य हमेशा से कल्पवृक्ष बना हुआ है। साहित्य की परिधि समाज का प्रत्येक हिस्सा रहा है। यहां पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रहा है. जो अन्याय व अत्याचार का शिकार हुआ है। साहित्य ने खड़े होकर पीड़ितों के आँसू पोछे हैं। साहित्य मनुष्य को बाहर और भीतर से सभ्य बनाने में मदद करता रहा है। वास्तव में वह तन और मन की साम्यता प्रदान करता है। जो साहित्य तन और मन की साम्यता प्रदान करता है, वह शाश्वत साहित्य है। वर्तमान में साहित्य प्रकृतिक राष्ट्रीयता का मानवीकरण नहीं करता है। बल्कि वह समाज एवं राष्ट्र को उसके ठोस समाजिक सन्दर्भो के साथ रेखांकित करने का प्रयास करता है। एक कवि ने कहा है कि:–

जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं!
वह हृदय नहीं, वह पत्थर है जिसमें स्वदेश का प्यार नही!!

उक्त दृष्टि से देखा जा सकता है कि राष्ट्रीयता के विकास में हिन्दी साहित्य का योगदान अतुलनीय रहा है।

सहायक ग्रन्थ :

1. कुरुक्षेत्र– रामधारी सिंह दिनकर
2. लोकायतन– सुमित्रानन्दन पंत
3. भारत भारती– मैथिली शरण गुप्त
4. राष्ट्रवाद का चिन्तन– राजेन्द्रनाथ तिवारी

समकालीन हिन्दी काव्य में प्रमुख स्त्री स्वर

डॉ० ममता मिश्रा
शोध निर्देशिका, हिन्दी विभाग,
नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय,
जमुनीपुर, कोटवां, दुबावल, प्रयागराज
****ज्योति अवस्थी***
शोध छात्र, हिन्दी विभाग,
नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय,
जमुनीपुर, कोटवां, दुबावल, प्रयागराज

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर यदि हम दृष्टि डालते है, तो यह दिखाई देता है कि प्रारम्भिक दौर में महिला रचनाकारों का अभाव था, हिन्दी के आदिकाल से लेकर भक्तिकाल तक मीराबाई से पहले कोई समर्थ महिला रचनकार नहीं दिखाई देती है। इसके पीछे का कारण तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का विशेष योगदान रहा। आदिकाल जैसी स्थितियाँ रीतिकाल में भी रही। भक्तिकाल में हिन्दी की प्रथम महिला कवयित्री मीराबाई का उदय हुआ। वे कृष्ण भक्ति के रूप में विख्यात हुई, प्रेम भक्ति व वियोग की पीड़ा उनके काव्य में दिखाई देती है; लेकिन सच तो यह है कि एक विद्रोह, तत्कालीन सामाजिक रूढ़ियों के प्रति उनके काव्य में दिखाई देता है, उनके काव्य में निर्भीकता है। रीतिकाल में तीन कवयित्रियों का नामोल्लेख मिलता है। सोढ़ीबाई, दयाबाई, सहजोबाई। ये सन्तचरण दास की शिष्याएं थी। इसके बाद आता है हिन्दी काव्य का आधुनिक युग, जिसमें परिस्थितियाँ बदल चुकी थी। 1857 ई0 की क्रान्ति के बाद समाज में भी क्रान्ति हुई। सुभद्रा कुमारी चौहान, महदेवी वर्मा प्रमुख कवयित्रियाँ रही। सुभद्रा जी का काव्य बिल्कुल सहज है, वीर एवं कोमल भावनायें समाई हुई है। इन्होंने हिन्दी काव्य परम्परा में स्त्री लेखन को समृद्ध किया। इसके ही समानान्तर महादेवी वर्मा जी का काव्य सृजन आया। इन्होंने हिन्दी साहित्य के काव्य को बहुत कुछ दिया, उन्हीं के समय में विद्यावती कोकिल, सुमित्र कुमारी सिन्हा ने अपनी अलग पहचान बनाई। छायावादोत्तर काल के बाद तार सप्तक (द्वितीय, तृतीय) की कवयित्री शकुन्त माथुर एवं कीर्ति चौधरी के नाम उल्लेखनीय है। इस काल के बाद हिन्दी काव्य में अनेक बदलाव आये, नयी कविता से लेकर समकालीन कविता में अनेक कवयित्रियों की रचनाएं सामने आयी। जिनमें प्रमुख नाम है- सुधागुप्ता, गगन गिल, मालती शर्मा, कुसुम अंचल, अनामिका, कात्यायनी, रमणिका गुप्ता, निर्मला पुतुल आदि।

आज के हिन्दी काव्य की जो प्रमुख विशेषता प्रत्यक्ष होती है वह महत्वपूर्ण इसलिए है कि उसका क्षेत्र किसी एकवाद, आन्दोलन तक सीमित न रहकर मानव के हर सुख-दुःख का साक्षी बना। समकालीन काव्य संचार का युग है, उसी के अनुरूप आज की हिन्दी कवयित्रियों की संवेदना है। स्त्री कविताओं में हमें

स्त्री–चेतना के साथ ही सम्पूर्ण जीवन जीवन का सार प्राप्त होता है। आलोचक विजय कुमार अपनी किताब, कविता की संगत में लिखते है– "छायावादी कविता में जिस तरह कवि स्त्री में प्रेयसी का रूप ढूँढ़कर उस पर अपने भाववाद का आरोपण करता था, बीसवीं सदी के इस आखिरी दशक में हमारे ज्यादातर साथी युवा कवि भी शोषित स्त्री के चित्रों की महज फोटोग्राफी कर रहे है। घर–गृहस्थी, हाट–बाजार में एक शोषित स्त्री दिखाई देती है और उस पर अपने भाववाद का आरोपण कर देते है। कविता में कवि का मन हर जगह है, इस स्त्री का मन कही नहीं दिखता।"[1]

समकालीन हिन्दी कविता में जीवन–जगत के सभी ज्वलन्त विषय समाहित है। 'मौसम हुआ कबीर' जैसे काव्य संग्रह के साथ शान्ति सुमन का आविर्भाव हुआ, इन्होंने हिन्दी में जनवादी गीत लेखन की शुरूवात की। इस क्रम में सबसे पहले हम अनामिका जी को देखेंगे।

काव्य मानव मन की सहज अभिव्यक्ति है। इसका क्षेत्र असीमित है, भक्ति से लेकर प्रकृति के विभिन्न रूपों का गान उसमें होता है। राग–विराग, युद्ध, प्रेम शान्ति सब कविता का भाव बने और बीसवीं सदी में स्त्री खुद ही स्त्री की अभिव्यक्ति बन गई। उसने अपनी भूमिका को समृद्ध किया तथा कविता के माध्यम से पुरुषत्व को ललकारा भी। अपनी भाषा, बिम्ब, लय को खुद निर्मात्री बनी। आज की स्त्री कविता सिर्फ अपनी बात नहीं करती वरन विभिन्न अस्मिताओं के संघर्ष का प्रतिनिधित्व करती है तथा लोकतांत्रिक पक्ष को भी उजागर करती है। हिन्दी साहित्य की विधाओं में कविता सबसे सशक्त विधा बनकर उभरी। समकालीन पत्र–पत्रिकायें कविताओं से भरी है। सन् 1850 से हिन्दी कविता ने बहुत प्रगति की। अमीर खुसरो, विद्यापति, कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, भूषण, मीराबाई आदि ने काव्य परम्परा को सुदृढ़ किया। आधुनिक काल में भारतेन्दु जी से एक नई उमंग की शुरूवात होती है जो समकालीन काव्य तक आते–आते अपने नये रूप में ढल जाती है।

सबसे पहले यदि छन्द मुक्त कविता की बात की जाय तो निराला जी की 'जूही की कली' आती है। इसके बाद मुक्त छन्द की कविताओं की बाढ़ सी आ जाती है। हिन्दी साहित्य जगत में अनामिका जी की शैली भी मुक्त छन्द की है। वह जीवन के सहज प्रसंगों को अपने काव्य का माध्यम बनाती है। इतिहास के प्रचलित प्रसंगों से वह विषय जरूर लेती है लेकिन उसकी समीक्षा घर आंगन के माध्यम से करती है। वे अपनी कविताओं के माध्यम से घर–परिवार, समाज में स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार, स्त्रियों में अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को प्राप्त करने की भीषण अकुलाहट को प्रस्तुत करती है। स्त्री जीवन के विविध आयामों को छूती हुई, स्त्री का स्त्री होने से लेकर उसके मृत्यु पर्यन्त का लेखा–जोखा बड़े बेबाकी से प्रस्तुत करती है। स्त्री अपने अनुभव एवं अनुभूतियों को अपने सुख दुःख को प्रमाणिक ढंग से लिख सकती है, पुरुष उसकी कल्पना कर सकता है। अनामिका ने साहित्य के अन्य विध ाओं में लेखन किया है, लेकिन प्रमुख रूप से कवयित्री के रूप में उभरकर आयी है। 'गलत पते की चिट्ठी', 'बीजाक्षर', 'समय के शहर में', 'अनुष्टुप', 'कविता में औरत', 'खुरदरी हथेलियाँ', 'अब भी बसंत को तुम्हारी जरूरत है', 'दूब–धान' काव्य संग्रह प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। अनामिका ने कविता को अपना हथियार बनाकर अभिव्यक्ति के माध्यम से नारी संवेदनाओं को उद्घाटित किया है। अनामिका ने कविता की परिभाषा लिखा। "वास्तविक जीवन जगत के चरित्र हो या क्लासिको के चरित्र मेरे कल्पना के स्थायी नागरिक वही

बनते जिन्हें कभी न्याय नहीं मिला, जो हमेशा लोगों की गलत फहमी का शिकार हुए, दुनिया ने जिन्हें कभी न प्रेम दिया न माना। भीतर वे जितने अगाध होते उतने ही अकिले।"

अनामिका अपनी कविताओं में ऐसा लगता है, शब्दों से खेलती है, गपशप शैली को अपनाते हुए विस्तार देती है, परते धीरे से खुलती हुई सी लगती है। अनामिका की प्रसिद्ध कविता 'स्त्रियाँ' में वो स्त्री के वजूद को तलाज़ती है। स्त्री-जीवन को संघर्ष को भी बखूबी चित्रित करती है।

भोगा गया हमको
बहुत दूर से रिश्तेदारों को
दु:ख की तरह
एक दिन हमने कहा
हम भी इंसान है।
X X X
सुनो हमें अनहद की तरह
और समझो जैसे समझी जाती है
नयी नयी सीखी हुई भाषा।[2]

अनामिका ने नारी के प्रति प्रयुक्त भाषा का मानकीकरण किया है, तथा लोकानुभव के पर्त दर पर्त को विभानाओं से उभारा गया। बड़े से बड़े रचनाकार की रचनाधार्मिता व्यापक होती है अपितु आलोचक उसमें कई मर्यादा में बाँधकर देखने की कोशिश करते है जैसे दलित, अल्पसंख्यक आदि। अनामिका ने पारिवारिक समस्याओं एवं सामाजिक समस्याओं के धारातल पर नारी का चित्रण किया। अगर इनके स्वर की बात की जाय तो सुधारवादी रहा है, सामाजिक व्यवस्था में बदलाव लाना चाहती है। नारी जीवन की पीड़ा को अभिव्यक्ति का माध्यम देकर रूढ़ियों का विरोध करती हैं, अनामिका बहुमुखी प्रतिभा की धनी है, वह अपने समय के भयावह को सच समझते हुए रचना का विषय चुनती है। उनके काव्य के विषय का क्षेत्र बहुत व्यापक है। उसमें सर्वहारा वर्ग के बेबस वर्ग, बेसहारा, गरीब, दलित, स्त्री मन की छटपटाहट सब कुछ है।

इनकी कविताओं का मूल स्वर है- मनुष्यता। 'चुटपुटिया बटन' कविता में वे लिखती हैं-

"लेकिन मेरी तरह के लोग खुद भी थे चुटपुटिया बटन
'चुट' से 'पुट' बजकर सट जाने वाले
इस शहर में लेकिन 'चुटपुटिया' न घर ही आया
'सतपुतिया' झिगुनी की तरह यहाँ एक सिरे से गायब है
'चुटपुटिया' जन और बटन।
ब्लाउज में भी दर्जी देते है टॉक यहाँ हुक ही हुक
हर हुक के आगे विराजमान होता है फंदा
फंदे में फंसे हुए आपस में कितना सटेंगे
कितना भी कीजिए जतन 'चुट' से 'पुट' नहीं बजेंगे।"[3]

इनके प्रतीक एक विशिष्ट शिल्प के परिचायक है। संवेदनाओं का आंतरिक संसार इनकी कविताओं में समाया हुआ है। तीखे व्यंग्यों को भी ये मृदुल भाषा में व्यक्त करती हैं। नारी में त्याग और औदार्य का आदर्श भर उसे सहनशील बनाने की प्रेरणा दी है।

समकालीन कवयित्रियों में स्त्री कवयित्रियों में कात्यायनी ने अपनी अलग पहचान बनाई है। इन्होंने स्त्री विमर्श के मुद्दों पर भी गंभीर चिंतन किया है। इनकी कविताओं में चित्रित स्त्री एक आम स्त्री है, वह क्या सोचती है, क्या चाहती है, अपने अधिकारों को पाने के लिए किस तरह संघर्ष करती है, यातनाओं को सहते हुए अपने वजूद को केसे बचाती है, सभी का वर्णन उन्होंने किया है। अगर इनके जीवन के विषय में बात की जाय तो इनका जन्म उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद में 9 मई सन् 1959 ई0 को हुआ था। ये निम्नवर्गीय परिवार में जन्मी थी। उनकी पहली कविता सन् 1986 ई0 में जनसत्ता में 'गार्गी' नाम से छपी। कात्यायनी जी की प्रकाशित काव्य कृतियाँ है- 'सात भाइयों के बीच चम्पा', 'एक कुहरा पारभाषी', 'जादू नहीं कविता', 'राख अँधेरे की बारिश में', 'चेहरों पर आँच' है। सात भाइयों के बीच चम्पा में कात्यायनी ने भारतीय समाज में पुरुष प्रधान समाज में नारी को किस तरह से देखा जाता है, उजागर किया है। इसी काव्य संग्रह में उनकी प्रसिद्ध कविता 'हॉकी खेलती लड़कियाँ' भी है।

कात्यायनी की कविताओं में नारी स्वतंत्रता की मांग है, कविताओं का विस्तार समाज के विभिन्न अंगों तक मिलता है। पत्रकार और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में भी इनकी पहचान है। इनकी खुद का जीवन संघर्षपूर्ण था। कात्यायनी ने अपनी 'नहीं हो सकता तेरा भला' इस कविता में घरेलू काम करने वाली एक आम स्त्री की उसके पति द्वारा होने वाले तिरस्कार को दिखाया है-

"हे ईश्वर!
मुझे ऐसी औरत क्यों नहीं दी
जिसका कुछ तो भला किया जा सकता
यह औरत तो भात राँधा सकती है
और बच्चे जन सकती है
इसे भला केसे मुक्त किया जा सकता है।"[4]

कात्यायनी नारी जीवन की विडम्बनाओं को अपने काव्य में बड़े सुन्दर ढंग से दिखाती है, उनकी कविता में केन्द्रीय विषय है- पितृसत्तात्मक समाज में नारी को मुक्त कराने की प्रबल इच्छा। जब वे कविता लिखती है तो उनकी कविता में इस बात पर जोर जरूर रहता है कि स्त्री को केसे इस सामंती समाज से मुक्त किया जा सकता है।

आज स्त्री और पुरुष को समान अधिकार दिये गये है, नारी किसी भी तरह से पुरुषों से कम नहीं है लेकिन यह सिर्फ किताबी बातें है, आज भी नारी पुरुषों के वर्चस्व के नीचे दबी हुई है। चाहे वह घर की चारदीवारी में हो या अपने कार्यक्षेत्र में। कात्यायनी ने 'सात भाइयों के बीच चम्पा' में महिलाओं की इसी स्थिति को सहज ढंग से प्रस्तुत किया है-

"ओखल में धान के साथ
कूट दी गई।
भूसी के साथ कूड़े पर
फेक दी गई।
वहाँ अमरबेल बनकर उगी।"[5]

इन्होंने अपनी कविता में नारी की स्वतंत्रता का प्रश्न स्वाभाविक और ठोस रूप में उठाया है। नारी अपने जीवन के संघर्षों से लड़-झगड़कर आगे बढ़ रही है। पुरातन काल की नारी की कमजोर छवि, अबला की छवि, विलास करती हुई नारी की छवि को आधुनिक नारी तोड़ रही है। 'इस स्त्री से डरो' इनकी बेहतरीन कविता है। यह स्त्री के मनोजगत के तहों में प्रवेश के लिए दरवाजे भी खोलती है-

"इस स्त्री से डरो
उससे पूछो
पिंजरे के बारे में पूछो
वह बताती है।
नीले अनंत विस्तार में
उड़ने के
रोमांच के बारे में
रहस्यमय है इस स्त्री की उपटबासियाँ
इन्हें समझो
इस स्त्री से डरो।"[6]

पितृसत्तात्मक समाज में कोई स्त्री पुरुष से कितना भी प्रेमकर ले लेकिन पुरुष उसे उतना सम्मान नहीं देता है जो एक सामाजिक रिश्ते को मिलना चाहिए, स्त्री अपने को उपेक्षित महसूस करती है। कात्यायनी ने अपने काव्य में इसे बेबाकी से उकेरा है-

यह स्त्री
सब कुछ जानती है
पिंजरे के बारे में
जाल के बारे में
यंत्रणागृहों के बारे में[7]

कात्यायनी के काव्य में जीवन की गति है तथा वह नारी व्यथा को दिखाती है। कितनी ही सदियों से एक स्त्री दूसरे स्त्री का दु:ख सहला रही है, शायद इसीलिए कहा जाता है कि स्त्री ही दूसरी स्त्री का दर्द बेहतर समझ सकती है। सदियों से चला और सहा जा रहा 'सुनो वेदना का इतिहास' कोई यूँ ही केसे समझ सकता है? वेदनाओं का ज्वार-भाटा आपबीती जितना भी कहा जाय। कात्यायनी का 'दुर्गद्वार पर दस्तक' स्त्री विमर्श पर महत्वपूर्ण पुस्तक है। इक्कीसवीं सदी की स्त्री कविताओं में हालाँकि निराशा, कुण्ठा, विषम परिस्थितियों को अपनी नियति मान लेने वाली विवशता भी है किन्तु इसके साथ ही इन कविताओं में स्त्री के ऊपर से

दिखने वाली इस लाचारी के पीछे कल्पनाशीलता और आजादी की छिपी कामना भी है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि कात्यायनी ने अपनी कविताओं में समकालीन स्त्री की मानसिकता को उजागर किया है। आज की नारी बंधनों में जकड़कर नहीं रहना चाहिए। वह इन बंधनों को तोड़कर खुले आसमान में उड़ना चाहती है।

रमणिका गुप्ता बहुमुखी प्रतिभा की प्रसिद्ध लेखिका है। उन्होंने, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, कविता आदि सभी विधाओं को समृद्ध किया है। इनके व्यक्तित्व की अगर बात की जाय तो यह अभिजात्य वर्गीय परिवार से सम्बन्धित थी, इनका जन्म 22 अप्रैल 1930 को हुआ, पिता प्यारे लाल बेदी, मिलिट्री में लेफ्टीनेंट कर्नल की पोस्ट पर थे, माता लीलावली गृहणी थी, इनके परिवार में सभी लोग उच्च शिक्षित थे एवं अच्छे पदों पर कार्यरत थे। इन्होंने प्रेम विवाह किया था, वेद प्रकाश गुप्ता से जो कि डिप्टी चीफ कमिश्नर के पद पर थे। रमणिका जी ने अपने काव्य के बीच से हिन्दी साहित्य की बगिया को सुवासित किया इनके काव्य संग्रह है– गीत–अगीत (1976), अब और तब (1978), खूँटे (1980), आम आदमी के लिए (1980), पूर्वांचल एक कविता–यात्रा (1975), प्रकृति युद्धरत है (1975), भला मैं केसे मरती (1997), तिलतिल नूतन, तुम कौन, पतियाँ प्रेम की, कोयले की चिनगारी, मैं हवा को लिखना चाहती हूँ।

गीत–अगीत में प्रतीकात्मक बिम्ब है। स्त्री मन की पीड़ा को बिम्ब शक्ल देता है। स्त्री की जिस पीड़ा को दुनिया अनदेखा करती है उसे रमणिका जी अपने इन पंक्तियों में उतार देती है–

"मन के अंत:पुर में न पैठ
तुम रहे रूप की हाट बैठ
पीड़ा की जो कोयल हुकी
तुमने उसको समझा गाना
मैंनेजो गीत अनेक दिये
निर्मम न उन्हें तुमने जाना[8]

समाज में प्रचलित सड़ी गली रूढ़ियों, परम्पराओं और बेड़ियों को तोड़ने का वह उद्घोष 'खूँटे' काव्य संग्रह में करती है। इस काव्य संग्रह में उनका विद्रोही तेवर देखता है। 'अब मूर्ख नहीं बनोंगे' काव्य संग्रह उनका दलित चेतना पर आधारित है। स्त्री से पुरुष सदा अपेक्षा करता रहा है कि वो अपनी संतुष्टि घर पर ढूँढेंगी। पति उसे रोटी और कपड़ा देगा और बुढ़ापे में बेटा देखभाल करेगा, यही सभ्यता रही है, लेकिन सजग कवयित्री रमणिका जी इसी चेतना को अपनी 'आदमी की पसली' नामक कविता में खींचा है। इस कविता में नारी के आत्मनिर्भरता को चित्रित किया गया। वह किसी पर आश्रित नहीं है। वह समाज में अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती है–

"मैं मरूँगी नहीं
नहीं किसी को अपना गला घोंटने दूँगी
और न ही जिन्दा रहने का एहसास मानूँगी
किसी का बोझ नहीं बनूँगी

चूँकि मैं स्वयं बोझ बर्दाश्त करने की क्षमता रखती हूँ।"[9]

रमणिका जी ने समाज के आदिवासी समाज और दलित उनकी समस्याओं को सर्वोपरि रखा है। वे उच्चवर्ग को चुनौती देती है, जिस वर्चस्व ने हमेज़ा स्त्रियों, शूद्रों, दलितों, आदिवासियों का शोषण किया, उसका प्रतिरोध करती हुई उनकी कविताएँ चेतावनी बनकर उभरती है। वे स्त्रियों, पिछड़े वर्गों में व्याप्त निराशा एवं हताशा को समाप्त करना चाहती है। वे अपनी 'प्रतिरोध' कविता में लिखती है–

"हमने तो नहीं कहा कभी
कि वर्कहीन बात मान लो हमारी
जब तुम तर्क संगत बात सुनने को भी
तैयार नहीं होते तो
यह न सुने जाने का, न पहचाने जाने का एहसास
हमें मनुष्य माने जाने से भी इनकार–
जब सालता है तो–
तर्क से अधिक धारदार बन
काटता है।
तब
प्रतिरोध में उठ जाता है
समूह बनकर जन।"[10]

सदियों से पितृसत्तात्मक समाज में शोषित, दु:खी, अपमानित घुटन, बेबसी को सहने वाली नारी का चित्रण, रमणिका जी ने विविध रूपों में किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. कविता की संगत, विजय कुमार, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पृ0 42, संस्करण–1996
2. अनामिका, अनुष्टुप, पृ0 107
3. खुरदुरी हथेलिया, अनामिका, राधाकृष्ण प्रकाज़न, दिल्ली
4. सात भाइयों के बीच चम्पा, कात्यायनी, पृ0 9
5. वही
6. कात्यायनी की कविताओं में स्त्री की दशा और दिशा, पृ0 157
7. सात भाइयों के बीच चम्पा, कात्यायनी, पृ0 7
8. गीत–अगीत, रमणिका गुप्ता, पृ0 30
9. इक्कीसवीं सदी की स्त्री कविताओं में स्त्री, सम्पा0 संतोष टेलकीकर, प्रो0 डॉ0 ज्योति मुंगल, पृ0 45
10. रमणिका गुप्ता, प्रतिरोध, kavitakosh.org.

हिन्दू कोड बिल और महिला सशक्तिकरण

रेखा
शोध छात्र,
डॉ० अम्बेडकर चेयर, सरदार पटेल सुभारती
इंस्टीट्यूट ऑफ लॉ, स्वामी विवेकानन्द सुभारती
विश्वविद्यालय, मेरठ
****डॉ० प्रेम चन्द्र***
सह आचार्य,
डॉ० अम्बेडकर चेयर, सरदार पटेल सुभारती
इंस्टीट्यूट ऑफ लॉ, स्वामी विवेकानन्द सुभारती
विश्वविद्यालय, मेरठ

1. प्रस्तावना

डॉ० अम्बेडकर प्रथमत: और अन्तत: मानवतावादी विचारक थे। बाबासाहेब ने स्त्रियों को मानव-मात्र जानकर उनकी मानसिक स्वतन्त्रता आदि के प्रति गहन् अध्ययन किया। भारतीय नारी की मर्मान्तक पीड़ा को वह स्वयं जानते थे। देश-विदेश में प्रचलित स्त्री स्वतन्त्रता एवं स्त्री संवेदना का सामाजिक मूल्यांकन कर मानवीयता के आधार पर समाज की इस आधार-भूत शक्ति को प्रबलतम सर्मथन प्रदान करने के लिए ही भारत की स्वतन्त्र, सार्वभौम संसद में "हिन्दू कोड बिल" प्रस्तुत किया। जागरूक नागारिक इस बात से भली-भांति परिचित हैं कि कालान्तर में भारतीय संसद में उसी कोड बिल को कुछ काँट छाँट कर, कुछ जस का तस करके अनेक सशोधनों द्वारा पारित किया है।

यूं तो भारतवर्ष में एक से बढ़कर एक महान नेता हुए हैं, मगर यह भी एक कटु सत्य है कि इनमें से किसी का भी दिल नारी की हृदय विदारक स्थिति को देखकर नहीं पसीजा। इस कार्य अर्थात नारी जाति के उद्धार और कल्याण का बीड़ा अकेले डॉ० अम्बेडकर ने ही उठाया आज आपको नारीयों में जितना विकास एवं प्रगति नजर आती है, यह सब बाबा साहेब डॉ० अम्बेडकर के प्रयासों का ही प्रतिफल है। जो नारी कभी अश्रु निर्माण की मशीन मात्र बनकर रह गयी थी वही नारी आज नासा अस्ट्रानोट पर सवार होकर कल्पना चावला के रूप में असीम अंतरिक्ष को कूदती नजर आती है कभी इन्दिरा गांधी के रूप में प्रधान मन्त्री के तौर पर भारत जैसे विशाल देश का कुशल नेतृत्व करती नजर आती है। नारी जाति में इतना महान और युगान्तकारी परिवर्तन देखने में आता है तो मात्र बाबा साहेब डॉ० अम्बेडकर के सदप्रयासों के कारण ही है।

2. महिला सशक्तिकरण की अवधारणा

सशक्तिकरण से तात्पर्य किसी व्यक्ति की उस क्षमता से है जिससे उस व्यक्ति में वह योग्यता आ जाती है, जिसमें वो अपने जीवन से जुड़े सभी महत्वपूर्ण निर्णय ले सके। और स्वयं के बारे में उचित और अनुचित न्याय कर सके।

महिला सशक्तिकरण भी किसी महिला की वह क्षमता है, जिसमें वह परिवार और समाज के सभी बंध नों से मुक्त होकर अपने निर्णय की निर्माता खुद हो। यदि सरल भाषा में कहा जाये तो महिला सशक्तिकरण भौतिक या आध्यात्मिक शारीरिक या मानसिक सभी स्तर पर महिलाओं के आत्मविश्वास पैदा कर उन्हें सशक्त बनाने की प्रक्रिया है।

महिला सशक्तिकरण की शुरुआत सयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 8 मार्च 1975 को अंर्तराष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाई जाती है। उसके बाद नैरोबी में सन 1985 में महिला अर्न्तराष्ट्रीय सम्मेलन किया गया। लेकिन भारत में 1953 में ही भारत सरकार द्वारा समाज में लिंग आधारित भिन्नताओं को दूर करने के लिए एक महान नीति "महिला कल्याण नीति" 1953 अपनायी गई थी।

भारत में महिला सशक्तिकरण को लेकर काफी कदम उठाये गए हैं। और निरन्तर प्रयास किए जा रहे हैं। उदाहरणार्थ 2 जनवरी 2018 को महिला एवं विकास मन्त्री मेनका गाँधी ने महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए "नारी पोर्टल" का लोकार्पण किया। इस पोर्टल से सामाजिक, आर्थिक और कानूनी अधिकारों के अलावा केन्द्र सरकार की लगभग 350 योजनाओं और कार्यक्रमों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

3. महिला सशक्तिकरण के विभिन्न आयाम

हिन्दू कोड बिल 1950 के दशक में पारित किए गए कई कानून थे। जिसका उद्देश्य भारत में हिन्दू पर्सनल लॉ को संहिताहबधद और सुधारना था। एक सामान्य कानून कोड के पक्ष में धार्मिक कानून को समाप्त करना था। 1947 में भारत की स्वतन्त्रता के बाद प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व वाली भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस सरकार यह प्रक्रिया भारत के ब्रिटिश शासन के दौरान शुरू हुई थी। अहस्तक्षेप की ब्रिटिश नीति के अनुसार व्यक्तिगत कानून सुधार हिन्दू समुदाय की मांग से उत्पन्न होना चाहिए था। ऐसा नहीं था क्योंकि विभिन्न हिन्दू राजनेताओं, संगठनों का महत्वपूर्ण विरोध था। उन्होंने स्वयं को अन्यायपूर्ण रूप से एक मात्र धार्मिक समुदाय के रूप में देखा जिनके कानून में सुधार किया जाना था। हालांकि नेहरू प्रशासन ने हिन्दू समुदाय को एकजुट करने के लिए इस तरह के संहिताकरण को आवश्यक माना जो आदर्श रूप से राष्ट्र को एकजुट करने की दिशा में पहला कदम होता। वे 1955–1956 में चार हिंन्दू कोड बिल पारित करने में सफल रहे। हिन्दू विवाह अधिनियम, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, हिन्दू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम, और हिन्दू दत्तक ग्रहण और रखरखाव अधिनियम। वे आज भी महिलाओं, धार्मिक और राष्ट्रवादी समूहों के बीच विवादास्पद बने हुए हैं।

4. हिन्दू कोड बिल का स्वरूप

बाबासाहेब एक काबिल वकील थे। स्वतन्त्र भारत के कानूनमन्त्री के रूप में उन्होने 'हिन्दू कोड बिल' पर महीनों काम किया। जाति व्यवस्था में महिलाओं को बहुत दबा कर रखा जाता था और इसीलिये उनकी सबसे बड़ी चिन्ता यही थी कि 'हिन्दू कोड बिल' को ऐसा बनाया जाय जिसमें महिलाओं को बराबर का अधिकार मिले उन्हें किसी विशेष वर्ग जाति की महिलाओं के हितों की चिन्ता नहीं थी। वे सभी जातियों के वर्गों की महिलाओं के हितो का संरक्षण चाहते थे। उनका मानना था कि देश की तरक्की के लिए देश के हर वर्ग को समानता का अधिकार मिलना जरूरी है। उन्होने 1948 में संविधान सभा के समक्ष हिन्दू कोड बिल प्रस्तुत किया उन्होंने अपने बिल में महिलाओं को तलाक देने के प्रस्ताव के अलावा विधवा और बेटी को सम्पत्ति के अधिकार देने का प्रस्ताव रखा था। इसमें बिना वसीयत किए मृत्यु को प्राप्त हो जाने वाले हिन्दू पुरुष और महिलाओं को संपति के बंटवारे के सम्बन्ध में कानूनों को संहिताबधद किए जाने का प्रस्ताव था। वह विधेयक मृतक के पुत्र और पुत्री को सम्पत्ति के बराबर का अधि कार देता था। इसके अतिरिक्त पुत्रियों को उनके पिता की सम्पत्ति में अपने भाइयों के बराबर हिस्सा प्राप्त था। इस बिल में आठ अधिकार बनाए गए।

1. हिन्दू विवाह अधिनियम ।
2. विशेष विवाह अधिनियम ।
3. गोद लेना, दत्तक ग्रहण, अल्पायु संरक्षकता अधिनियम
4. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम
5. निर्बल तथा साधनहीन परिवारों के सदस्यों का भरणपोषण अधिनियम
6. अप्राप्तवय संरक्षण सम्बन्धी अधिनियम
7. उतराधिकारी अधिनियम
8. हिन्दू विधवा को पुर्नविवाह अधिनियम

इस अधिनियम में विवाह सम्बन्धी प्रावधान में बदलाव किया गया। यह दो प्रकार के विवाह को मान्यता देता था संस्कारिक व सिविल। इसमें हिन्दू पुरुष द्वारा एक से अधिक महिलाओं से शादी करने पर प्रतिबन्ध और अलगाव सम्बन्धी प्रावधान भी थे। यह कहा जा सकता है कि हिन्दू महिलाओं को तलाक का अधिकार दिया जा रहा था, जिन्हें परम्परा के नाम पर कुछ कट्टरवादी जिन्दा रखना चाहते थे।

जब कर्नाटक में हिजाब प्रतिबन्ध के मुददे् पर विश्वयुद्ध चल रहा था। तभी हिन्दू कोड बिल और समान नागरिक संहिता के निहितार्थ का मुद्दा कई लोगों और राजनैतिक नेताओं द्वारा उठाया गया।

5. हिन्दू कोड बिल के अर्न्तगत महिला सशक्तिकरण

हिन्दू कोड बिल में महिलाओं के लिए कुछ खास प्रावधान थे जिन्हें हम 'महिला सशक्तिकरण' की पहली अवस्था कहते हैं।

1. हिन्दू विधवाओं और महिलाओं (लड़कियों) को पिता की सम्पत्ति में पुत्र के बराबर की हिस्सेदारी।
2. हिन्दू पुरुष द्वारा उप-स्त्री रखने या पत्नी के प्रति क्रूर व्यवहार रखने या पुरुष के किसी वीभत्स बीमारी से ग्रसित होने की हालात में पत्नी को अलग होने का अधिकार और गुजारा भत्ता मिलने का अधिकार।
3. विवाह सम्बन्धों में किसी भी प्रकार के जातीय भेदभाव को खत्म करना।
4. अमानवीय व्यवहार विवाहेत्तर सम्बन्ध न ठीक होने वाली बीमारी की हालात में पति पत्नी दोनों को तलाक मिलने का अधिकार।
5. सिर्फ एक जीवन साथी रखने की छूट।
6. किसी अन्य जाति के बच्चे को गोद लेने का अधिकार इस तरह देखा जाये तो यह हिन्दू जीवन पधदति में काफी बड़े बदलाव की पहल थी। और इसलिये इसका विरोध होना भी स्वाभाविक था।

6. हिन्दू कोड बिल में समानता का अधिकार

बाबा साहेब ने भारतीय नारी को पुरुषों के मुकाबले बराबरी के अधिकार दिए हैं। भारतीय समाज में लैंगिक असमानता को खत्म करने के लिए बाकायदा संविधान में लिंग के आधार पर भेदभाव करने की मनाही का इतंजाम किया। आर्टिकल 14 से 16 में महिलाओं को समाज में समान अधिकार देने का भी प्रावध ान किया गया है।

बाबा साहब ने संविधान में लिखा कि "किसी भी महिला को सिर्फ महिला होने की वजह किसी अवसर से वंचित नही रखा जाऐगा और ना ही उसके साथ लिंग के आधार पर कोई भेदभाव किया जा सकता है।"

7. हिन्दू कोड बिल में सम्पत्ति का अधिकार

इस बिल में बिना वसीयत के मरने वाले हिन्दू पुरुष और महिलाओं की सम्पत्ति के बटवारे के बारे में कानूनों को संहिताबद्ध करने करने का प्रस्ताव था तथा महिलाओं को पारिवारिक सम्पत्ति में बराबर का अधि कार देने का प्रस्ताव था।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के अनुसार विवाहित महिला का अपनी निजी सम्पत्ति पर पूरा अधिकार होता है। जिसे वह अपनी इच्छानुसार बेच या उपहार में दे सकती है।

हिन्दू अविभाजित परिवार के मामले में वह अपने पति तथा उसके परिवार से रहने के लिए जगह, किसी तरह की मदद तथा अन्य खर्चे के पैसे मिलने के हकदार है।

9. हिन्दू कोड बिल में वैवाहिक अधिकार

देश के पहले लोकसभा चुनाव प्रधानमंत्री नेहरू ने हिन्दू कोड बिल को कई हिस्सों में तोड़ दिया जिसके पश्चात् 1955 में हिन्दू मैरिज एक्ट बनाया गया । जिसके तहत तलाक को कानूनी दर्जा, अलग–अलग जातियों के स्त्री–पुरुषों को एक दूसरे से विवाह का अधिकार और एक बार में एक से ज्यादा शादियों को गैर कानूनी घोषित किया गया।

10. हिन्दू कोड बिल में भरण–पोषण का अधिकार

भरण–पोषण का अधिकार हिन्दू पत्नी अपने पति से भरण–पोषण पाने का अधिकार रखती है। विध वा पत्नी भी भरण–पोषण का दावा कर सकती है। अविवाहिता बेटियाँ अपनी शादी से जुड़े खर्चों के लिए भरण–पोषण का दावा कर सकती है।

11. हिन्दू कोड बिल में दत्तक गृहण का अधिकार

18 वर्ष से अधिक आयु की एक स्वस्थ मन की महिला भी गोद ले सकती है। अगर वह अविवाहिता, तलाकशुदा एवं विधवा है।

निष्कर्ष

निश्चित रूप से हिन्दू कोड बिल 1950 के दशक में पारित किए गए कई कानूनों का सम्मिलित रूप था। जिसका उद्देश्य भारत के हिन्दू पर्सनल लॉ को संहिताबद्ध एवं सुधारना था।

स्वतन्त्रता के पहले और बाद में भी महिलाओं को समाज में बराबरी का अधिकार दिलाने के लिए कई आन्दोलन किए गए लेकिन भारत की आधी आबादी के अधिकारों का कानूनी दस्तावेज तैयार किया, भारत के पहले कानून मंत्री डा0 भीमराव अम्बेडकर ने।

भारत की स्वतन्त्रता के साथ ही महिलाओं को वोट देने का अधिकार पुरुषों के समान प्राप्त हुआ।

डा0 अम्बेडकर एक नये युग का निर्माण करना चाहते थे। इसलिए वह स्त्री स्वतन्त्रता के प्रबल समर्थक थे। 19 जुलाई 1942 नागपुर में हुए एक सभा में उन्होंने सम्बोधित करके कहा था।

"नारी जगत की प्रगति जिस अनुपात में हुई होगी उसी अनुपात में मैं उस समाज की गति को आंकता हूँ।"

किसी ने कल्पना भी नहीं की होगी कि आजादी से पहले बाबा साहब स्त्री की स्थिति और दुर्दशा को लेकर जो चिन्तन कर रहे थे वर्तमान समय में इतना प्रासंगिक होगा। स्त्री चेतना की ज्योति डा0 अम्बेडकर ने जलाई वह आज चारों तरफ फैल रही है। देर से ही सही स्त्रियों को उनके मौलिक अधिकार आज मिलने लगे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. "भारतीय महिलायें और हिन्दू कोड बिल" –डॉ0 अनिल सूर्य
2. "भारतीय नारी के उद्धारक डा0 भीमराव अम्बेडकर" 4th Edition 2020
3. "हिन्दू नारी का उत्थान और पतन" –डा0 कुसुम मेघवाल

युवाओं को स्वरोजगार के प्रति प्रेषित करने में स्वावलम्बी भारत अभियान की भूमिका विश्लेषणात्मक अध्ययन

**शिवम द्विवेदी*
शोधार्थी, वाणिज्य विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली
***डॉ० कविता श्रीवास्त्व*
****डॉ० बिंद्रेश कुमार यादव*

मैं युवा हूँ सोच रखता हूँ कुछ नया कर दिखाने की।
मुझमें जोश हो सोच को परिणाम तक पहुँचाने का।

- शिवम द्विवेदी

सारांश

वर्ष 1947 में मिली राजनैतिक स्वतंत्रता के बाद अनेक प्रकार की आर्थिक नीतियाँ अपनाई गयीं जिनके मिश्रित परिणाम मिले। गत 30 वर्षो से वैश्वीकरण की नीति अपनायी जा रही है। इन 30 वर्षो की अवधि के दौरान यद्यपि सफल घरेलू उत्पाद की वृद्धि उसके पूर्व के 40 वर्षो की नियोजित वृद्धि की तुलना में अधिक थी, किन्तु रोजगार के अवसर अनुपातिक रूप से सृजित नहीं हुए थे। इसलिए इस अवधि की जीडीपी में संवृद्धि को रोजगार विहीन संवृद्धि भी कहा गया। सरकारी आंकड़ों के अनुसार यद्यपि गरीबी में तेजी से कमी आई खासकर पिछले दो दशकों में गरीबी रेखा (बीपीएल) 15: से नीचे आ गई है। किन्तु जब तक देश पूर्ण रोजगार युक्त नहीं होगा तब तक वह पूर्व स्वावलम्बन व वैश्विक मार्गदर्शक के अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकेगा। प्रत्येक वर्ष भारत की जनसंख्या लगभग 1.2 करोड़ बढ़ जाती है। भारत की जनसंख्या का कारण एक बड़ा वर्ग युवा है।

प्रस्तावना

वर्तमान भारत एक विश्व में तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। किसी भी देश का आर्थिक विकास उस देश की कार्यशील जनसंख्या से सकारात्मक रूप प्रभावित होता है। भारत एक युवा आबादी वाला देश है। रोजगार विकास और समृद्धि के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी है। रोजगार की गुणवत्ता और मात्रा यह निर्धारित करती है कि आर्थिक उत्पादन किस हद तक आबादी के लिए जीवन की बेहतर गुणवत्ता में बदलता है। रोजगार को बढ़ावा देने से तात्पर्य मांग-आधारित विकास को शक्ति प्रदान करना है। भारत 140 करोड़ से अधिक व्यक्तियों की भूमि है जिनमें से 67 प्रतिशत लोग 15-64 आयु वर्ग के हैं, जोकि भारत के

युवा देश होने का द्योतक है। भारत में रोजगार प्राप्त करने वाले लोगों में से भारत में सरकारी नौकरियाँ, भारत के संगठित क्षेत्र में (निजी+सरकारी) में 152 (15 करोड़ 20 लाख) मिलियन नौकरियाँ हैं। जिसमें सरकारी (क्षेत्र+राज्य) नौकरियाँ 14 मिलियन (एक करोड़ 40 लाख है।) शेष 79–80: लोग कृषि लघु कुटीर उद्योगों से अपना रोजगार करते हैं।

अध्ययन की आवश्यकता

भारत का जनसांख्यिकीय लाभांश विनिर्माण और सेवाओं में निरंतर उच्च विकास और विश्वस्तरीय प्रतिस्पध र्ा के लिए एक कदम है। भारत के युवाओं की वैध आकांक्षाओं के अनुरूप रोजगार के उपयुक्त अवसरों का सृजन भी जीवनकाल में एक बार मिलने वाले देश के जनसांख्यिकीय लाभांश का लाभ उठाने के लिए आवश्यक है। भारत में युवाओं को स्वरोजगार की ओर प्रेरित करने तथा उनके कौशल को गति देने के लिए भारत सरकार द्वारा अनेक योजनायें चलायी जा रही हैं। इनमें से एक स्वावलम्बन भारत अभियान भी है। यह अभियान भारत सरकार की एक महत्वाकांक्षी योजना है जिसका उद्देश्य युवाओं को स्वरोजगार हेतु आर्थिक सहायता प्रदान कर उन्हें इसके लिए प्रेरित करना है। सामान्यता युवा वर्ग विशेष कर सरकारी विभागों और प्राइवेट कम्पनी में रोजगार मांगते हैं। ऐसी नीतियाँ बनाने की जरूरत है। जो उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ अधिक रोजगार के अवसर पैदा करे।

स्वावलम्बी भारत अभियान एक प्रभावशाली आंदोलन है। जिसके निहितार्थ स्वरोजगार के प्रति युवाओं की अभिवृत्ति, जागरूकता और तत्परता को सकारात्मक दिशा में प्रोत्साहित करना होगा। साल 2021 के आंकड़ों पर जायें रिपोर्ट्स के मुताबिक, देश के सभी राज्यों में से सबसे ज्यादा सरकारी नौकरी पाने वाले लोग उत्तर प्रदेश के हैं। बस हमें स्वरोजगार के लिये भी प्रेरित करना होगा।

सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा

परिशिया सैम्पसन (2020) के अनुसार आत्मनिर्भर भारत अभियान एक विचार के रूप समझने विश्लेषण करने व्याख्या करने और सकारात्मक सोच के साथ अपनाने का पात्र है। कोविड के बाद के युग में भारतीय अर्थव्यवस्था में आत्मनिर्भरता अस्तित्व और अनेक भारतीय द्वारा उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। यह माना जाता है कि घरेलू बचत दर निवेश पर की दर पूँजी निनर्माण जीडीपी, निर्यात और जीएसपी सहित अर्थव्यवस्था के प्रदर्शन के सभी संकेतकों के संदर्भ में अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में सक्षम है।

देवदास रक्षित (2020) के अनुसार भारत में कलस्टर क्षेत्रीय कौशल और विशेषज्ञता पर आधारित एक आत्मनिर्भर वातावरण बनाने की स्कल कुंजी है। कोविड-19 द्वारा फैले राष्ट्रव्यापी, तालाबंदी से भारतीय अर्थव्यवस्था को एक गंभीर झटका दिया इसने साबित कर दिया है कि आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के लिए एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

डॉ. भाविनी के पटेल (2022) के अनुसार स्थानीय उत्पादों के लिए मुखर होने का अभिमान उचित है। जब आयात पर निर्भरता अधिक हो गयी है जहाँ से कई क्षेत्र में आयात 40 प्रतिशत से अधिक है। ऐसे समय में शिप पेट के लिए सीमा शुल्क निकासी में देरी करना जब आर्थिक पुनरुद्धार एक प्राथमिकता है। खुद को नुकसान पहुँचा सकता है।

समस्या कथन - युवाओं को स्वरोजगार के लिए प्रेरित करने स्वावलम्बी भारत अभियान की भूमिका का अयोध्या के क्षेत्र में किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य - स्वरोजगार के प्रति युवाओं में जागरूकता उत्पन्न करने में स्वावलम्बी भारत अभियान की प्रभावशीलता का अध्ययन करना है।

शोध विधि - प्रस्तुत शोध वणर्नात्मक प्रकृति का है। अध्ययन में विश्लेषण हेतु मुख्यत: द्वितीयक स्रोतों का सहारा लिया गया है। इसके अन्तर्गत विभिन्न योजनाओं के स्त्रोतों, रिपोर्टों आदि को लिया गया है।

स्वावलम्बी भारत अभियान

भारत में बेरोजगारी की समस्या एक विकराल समस्या है। जिसके समाधान ढूंढने हेतु गंभीर प्रयासों के साथ-साथ जन जागरूकता की अत्यंत आवश्यकता है। भारत में बढ़ रहे युवा बेरोजगारों के साथ उद्यमिता को प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार द्वारा 'स्वावलंबी भारत अभियान' के रूप में 12 जनवरी 2022 को एक पहल की शुरूआत की गयी। इस पहल का उद्देश्य बेरोजगारी और गरीबी से मुक्त 'समृद्ध भारत' का विकास करना है। इसकी शुरूआत के समय श्रम, खेती, सहकारिता, लघु उद्यम, शिक्षा और उपभोक्ता मामलों के क्षेत्र में काम करने वाले कुल आठ संगठन शामिल थे परन्तु वर्तमान में 32 संगठन इस अभियान का हिस्सा हैं।

स्वरोजगार के प्रति युवाओं में जागरूकता उत्पन्न करने में स्वावलम्बी भारत अभियान की प्रभावशीलता:-

स्वावलंबी भारत अभियान का भारत में युआवों को स्वरोजगार के प्रति प्रेरित करने में उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा है। यहाँ कुछ प्रमुख पहलू दिए गए हैं-

1. **उद्यमी भावना:**- अभियान ने युवाओं में उद्यमशीलता की भावना को प्रज्वलित किया है। यह शैक्षणिक संस्थानों, प्रशिक्षण केंद्रों और यहाँ तक कि घर पर युवा मन तक पहुँचता है, यह विश्वास पैदा करता है कि वे अपने भाग्य के निर्माता हो सकते हैं।

2. **कौशल विकास और व्यावसायिक प्रशिक्षण:**- यह पहल युवाओं को आधुनिक नौकरी बाजार के लिए आवश्यक कौशल से लैस करने पर केंद्रित है। उद्योग की माँगों के साथ यह संरेखण कौशल अंतर को कम करने और रोजगार क्षमता बढ़ाने में मदद करता है।

3. **उद्यमिता को बढ़ावा:**- स्वरोजगार और सूक्ष्म उद्यमों के निर्माण को प्रोत्साहित करके, अभियान ने युवाओं में

उद्यमिता की संस्कृति को बढ़ावा दिया है। यह न केवल नौकरियों का सृजन करता है बल्कि युवा व्यक्तियों को नौकरी सृजक भी बनाता है।

4. **स्टार्ट-अप के लिए समर्थनः**- अभियान विभिन्न कार्यक्रमों और संसाधनों के माध्यम से स्टार्ट-अप के लिए समर्थन प्रदान करता है, जिससे युवा उद्यमियों को अपने व्यवसाय शुरू करने और बनाए रखने में मदद मिलती है। इस समर्थन में फंडिंग, मेंटरशिप और नेटवर्किंग के अवसरों तक पहुँच शामिल है।

5. **आर्थिक सशक्तिकरणः**- स्थानीय संसाधनों, सरकारी कार्यक्रमों और तकनीकी शिक्षा को एकीकृत करके, स्वावलंबी भारत अभियान युवाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाता है। यह समग्र दृष्टिकोण सुनिश्चित करता है कि युवा लोग अर्थव्यवस्था में सार्थक योगदान दे सकें।

6. **शहरी-ग्रामीण विभाजन को पाटनाः**- यह पहल शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों तक पहुँचती है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि देश भर में रोजगार और उद्यमिता के अवसर उपलब्ध हैं। इससे रोजगार में क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने में मदद मिलती है।

7. **लिंग समावेशनः**- यह अभियान युवा महिलाओं को पारंपरिक रूप से पुरुषों द्वारा संचालित भूमिकाओं को निभाने के लिए सशक्त बनाकर लिंग बाधाओं को तोड़ने पर भी ध्यान केंद्रित करता है। यह समावेशी दृष्टिकोण सुनिश्चित करता है कि युवा आबादी के सभी वर्गों को इस पहल से लाभ मिले।

8. **वैश्विक संबंधः**- यह अभियान वैश्विक सहयोग को बढ़ावा दे रहा है, युवा भारतीय उद्यमियों को अंतर्राष्ट्रीय बाजारों, विचारों और भागीदारों से जोड़ रहा है, जिससे विश्व मंच पर राष्ट्र के प्रभाव का विस्तार हो रहा है।

इस प्रकार स्वावलंबी भारत अभियान केवल एक पहल नहीं है, बल्कि एक परिवर्तनकारी शक्ति है जो युवाओं को अपनी क्षमता का दोहन करने और राष्ट्र की प्रगति में योगदान करने के लिए सशक्त बना रही है।

निष्कर्ष

युवा वर्ग किसी भी देश की वास्तविक सम्पत्ति और शक्ति होता है। बेरोजगार युवा देश की सबसे प्रमुख समस्या होते हैं। इन्हें केवल नौकरियों के सहारे नहीं छोड़ा जा सकता। अतः आर्थिक-सामाजिक रूप से स्वावलम्बी बनने के लिए स्वरोजगार की ओर युवा वर्ग का उन्मुख होना आवश्यक है।

स्वावलंबी भारत अभियान (एसबीए) ने उद्यमिता को प्रोत्साहित करके, स्वरोजगार के अवसर प्रदान करके और आत्मनिर्भरता की संस्कृति को बढ़ावा देकर भारत के युवाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। उद्यमिता संवर्धन एसबीए ने स्कूलों और कॉलेजों सहित युवाओं के लिए उद्यमिता संवर्धन कार्यक्रम और कार्यशालाएँ आयोजित की हैं। एसबीए ने रोजगार केंद्र भी स्थापित किए हैं, जो उद्यमिता, स्वरोजगार और अन्य आत्मनिर्भरता से संबंधित गतिविधियों पर युवाओं का मार्गदर्शन करने के लिए केंद्र बिंदु के रूप में काम करते हैं। स्वरोजगार के अवसर एसबीए ने युवा उद्यमिता अभियान जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से युवाओं के लिए स्वरोजगार के

अवसर पैदा किए हैं। वित्तीय समावेशन एसबीए को एक सामाजिक–आर्थिक प्रयास माना जाता है जिसका उद्देश्य युवाओं के लिए वित्तीय समावेशन हासिल करना है। सशक्तिकरण एसबीए एक ऐसा आंदोलन है जो एक युवा, गतिशील भारत की आकांक्षाओं के साथ प्रतिध्वनित होता है। आत्मनिर्भरता की संस्कृति एसबीए युवाओं को अपने भविष्य के निर्माता बनने और आत्मनिर्भरता की संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित करता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. आर्थिक सर्वेक्षण 2023–24।
2. Swavalamban Bharat Abhiyan completes 2 years; achieves significant progress in empowering Indian entrepreneurs, The Times of India, Jan. 16, 2024.
3. https://hindi.mysba.in/our-resources/
4. https://ourstartupindia.com/introduction-of-swavlambi-bharat-abhiyan/

मासिक धर्म प्रबंधन : अलीगढ़ जनपद की ग्रामीण एवं नगरीय महिलाओं का तुलनात्मक अध्ययन

रजनी बघेल
शोधार्थी (समाजशास्त्र)
श्री वार्ष्णेय कॉलेज, अलीगढ़
डॉ0 भीमराव आम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा (उ0प्र0)

शोध सार

मासिक धर्म एक स्वभाविक जैविक प्रक्रिया है। लड़कियों में मासिक धर्म चक्र की शुरुआत होने की औसत उम्र 9 से 16 वर्ष की आयु है, लेकिन वैयक्तिक शारीरिक विभिन्नताऐं, रहन-सहन खानपान के साथ ही भौगोलिक परिवेश अर्थात् जलवायु की प्रकृति से भी मासिक धर्म शुरू होने के समय में बदलाव आ सकता है। एक मासिक धर्म के पहले दिन से शुरू होकर दूसरे मासिक धर्म आने तक का समय मासिक धर्म चक्र कहलाता है, यह औसत 28 से 32 दिनों का होता है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन विश्लषेणात्मक प्रकृति का है, इसमें सुविधापूर्ण निदर्शन प्रविधि (Convenience Sampling Technique) से ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र की कुल 80 महिलाओं का चयन उत्तरदाताओं के रूप में किया। जिसमें साक्षात्कार अनुसूची के द्वारा प्राथमिक आंकड़ों को एकत्रित किया। प्रस्तुत शोध निष्कर्ष में पाया गया कि मासिक धर्म के दौरान ग्रामीण क्षेत्र की 50% महिलाओं की तुलना में नगरीय क्षेत्र की 77.5% महिलाएँ सेनेटरी नैपकिन का प्रयोग करती है। इसके साथ ही 85% महिलाओं को सेनेटरी नैपकिन खरीदते समय शर्म एवं झिझक महसूस होती है तथा 100% महिलायें मासिक धर्म के समय धार्मिक कार्यों में शामिल नहीं होती अर्थात् सामाजिक नियमों एवं प्रथाओं का पालन करती है।

मुख्य शब्दः मासिक धर्म चक्र, प्रबंधन एवं स्वच्छता, सामाजिक निषेध, सेनेटरी नैपकिन।

प्रस्तावना

मासिक धर्म एक स्वाभाविक जैविक प्रक्रिया है। एक प्रक्रिया के रूप में यह भविष्य में लड़कियों को गर्भ धारणा करने की क्षमता पैदा करके उन्हें पूर्णता प्रदान करती है। लड़कियों में मासिक धर्म चक्र की शुरुआत अक्सर किशोरावस्था में 9 से 16 वर्ष की आयु में होती है लेकिन यह प्रत्येक किशोर लड़की की मासिक धर्म

शुरु होने की उम्र में अन्तर उसके रहन-सहन, खानपान, शारीरिक विशेषताओं के साथ ही जलवायु से प्रभावित होता है। इस चक्र के समय उसके शरीर से रक्तस्त्रव उसके महावारी चक्र के अनुसार एक निश्चित अंतराल पर होता है। अधिकांश लड़कियों और महिलाओं में यह मासिक धर्म चक्र 28 से 32 दिनों का होता है। एक मासिक धर्म के पहले दिन से शुरु होकर दूसरे मासिक धर्म आने तक का समय मासिक धर्म चक्र कहलाता है।[1]

मासिक धर्म के विभिन्न चरण :

1. मासिक धर्म के पहले चरण में किशोर लड़कियों में मासिक धर्म की शुरुआत होने पर यह पहला दिन माना जाता है।

2. मासिक धर्मचक्र का दूसरा चरण पीरियड समाप्त होने के आखिरी दिन से शुरू होता है इसमे दोनों अंडाशयों में से एक अंडाशय एक अण्डा का निर्माण करने लगता है जो कि फैलोपियन ट्यूब में होता है। इस दौरान गर्भाशय का अस्तर अण्डा के लिए तैयारी करता हुआ मोटा होना शुरू कर देता है।

3. मासिक धर्म के तीसरे चरण में अण्डोत्सर्जन (ऑव्यूलेशन) कहा जाता है। यह मासिक धर्म चक्र के करीब बीच (28 अथवा 30 दिनों के चक्र का 14 अथवा 15 दिन) के समय में होता है। जिसमें एक परिपक्व अंडा अंडाशय से निकलकर फैलोपियन ट्यूब में प्रवेश करता है। मासिक धर्म चक्र के इस चरण में संभोग करने पर स्त्री के गर्भवती हो जाने की अधिक संभावना होती है क्योंकि इस समय गर्भाशय की दीवार भी अंडे को ग्रहण करने के लिए तैयार होती है।

4. मासिक धर्म के चौथे चरण में अण्डा फैलोपियन ट्यूब से गुजरते हुए गर्भाशय की ओर बढ़ता है। गर्भाशय की दीवार का अस्तर मोटा होते रहना प्रोजेस्टेरोन हार्मोन के बढ़े हुए स्तर के कारण होता है। जब इस चरण में अण्डा का शुक्राणु द्वारा निषेचन नहीं हो पाता है तो यह दीवार का अस्तर टूटने लगता है और तब फिर से नया मासिक धर्म चक्र शुरु हो जाता है।[2]

सामान्य जनता में मासिक धर्म के बारे में जानकारी बढ़ाने के साथ जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र संगठन द्वारा प्रत्येक वर्ष विश्वभर में 28 मई को मासिक धर्म स्वच्छता दिवस मनाया जाता है। जिससे दुनिया में मासिक धर्म संबंधी नियमों, प्रथाओं एवं परम्पराओं, निषेधों के खिलाफ जागरुकता फैले।[3]

भारत के स्कूलों में इंटरनेशनल जर्नल आफ एनवायरमेंटल रिसर्च एंड पब्लिक हेल्थ' द्वारा किये गये सर्वे में निष्कर्ष में यह पता चला कि भारतीय समाज में किशोर लड़कियों को पहला मासिक धर्म शुरु होने के समय पचास प्रतिशत से भी कम लड़कियों को इसके बारे में थोड़ा-बहुत जानकारी थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में मासिक धर्म संबंधी विषय पर चुप्पी साध ली जाती है इसे सामान्य जैविक प्रक्रिया न मानकर कलंकित रूप में समझा जाता है।[4]

यूनिफार्म नेशनल इंस्टीट्यूट आफ अर्बन अफेयर्स (2020) द्वारा किये गये शोध अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि नगरीय क्षेत्रों में गरीब एवं वंचित वर्ग की लड़कियों को मासिक धर्म के दौरान मिलने वाली मूलभूत सुविधाओं का अभाव है। जिससे प्रत्येक दो में से सिर्फ एक लड़की इस दौरान सेनेटरी नैपकिन (पैड) का प्रयोग कर पाती, जिसकी वजह से उन्हें अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता है।[5]

भारत में (ग्रामीण क्षेत्र के साथ ही नगरीय क्षेत्र में) आर्थिक रूप से कमजोर एवं वंचित वर्ग युवा किशोरियाँ मासिक धर्म के बारे में पहले से कोई जानकारी अथवा पूर्ण ज्ञान नहीं होने के कारण उपलब्ध साध ना का प्रयोग नहीं कर पाती तथा इस दौरान खुद के साथ होने वाले भेदभाव को समझ नहीं पाती। किशोर लड़कियों को मासिक धर्म चक्र के जैविक कारणों का पता नहीं होता, जिससे वह पहली बार में अत्यधिक भयभीत हो जाती है। इसके लिए जागरूकता बढ़ाकर एवं खुलकर इस विषय पर चर्चा करने से लड़कियों को भावनात्मक सहयोग दिया जा सकता है।[6]

भारतीय समाज में मासिक धर्म से जुड़ी अनेक भ्रान्तियाँ, निषेध (टैबू) रूढ़िवादी विचारों ने मासिक ध र्म स्वच्छता में सुधार लाने हेतु किए गए विभिन्न सकारात्मक पहलू अथवा प्रयासों में बाधा का कार्य किया है। ये बाधायें लड़कियों एवं महिलाओं के आत्मसम्मान को कम करने के साथ ही उनकी गरिमा का उल्लंघन करती है। बुनियादी जानकारी एवं उचित संसाधनों के अभाव में महिलाओं और लड़कियों के स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। लड़कियों की शिक्षा को प्रभावित करने में स्कूलों में मासिक धर्म के प्रबंधन की आवश्यक सुविधाएँ नहीं होना भी महत्वपूर्ण कारण है, जिसके कारण भारत में किशोरावस्था तक पहुँचाने के बाद 23% लड़कियाँ स्कूल जाना बंद कर देती हैं।[7]

मासिक धर्म संबंधी मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराने एवं स्वच्छता के साथ ही उचित प्रबंधन हेतु सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों द्वारा अनेक कार्यक्रम चलाए जा रहे है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय ने केन्द्र सरकार को स्कूलों में मुफ्त सैनेटरी नैपकिन (पैड) उपलब्ध कराने के लिए एक राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक नीति बनाने को प्रेरित किया। ऐसी नीतियों को लागू करने में मासिक धर्म संबंधी विभिन्न उत्पादों की महँगी दर जैसे कारण चुनौतियों के रूप में शामिल है।[8]

"ग्रामीण भारत में किशोरियों में मासिक धर्म स्वच्छता को बढ़ावा देने की योजना" को स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा शुरु किया गया इसके माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में 10-19 वर्ष आयु वर्ग की लड़कियों को मासिक धर्म के दौरान स्वच्छता रखने को प्रेरित किया जाता है। भारत के ग्रामीण क्षेत्र में मासिक धर्म संबंधी स्वच्छता को बढ़ाने के लिए 3,13,255 आँगनबाड़ी केन्द्र के साथ ही 3,69,461 स्कूलों में इसे लागू किया। इस योजना के तहत 6 सेनेटरी नैपकिन का एक पैकेट 6 रुपये में उपलब्ध कराना है।[9] इसके साथ ही प्रधानमंत्री भारतीय जन औषधि परियोजना के अन्तर्गत केन्द्र सरकार ने लड़कियों/महिलाओं के लिए 1 रुपये प्रति दर से सेनेटरी नैपकिन (पैड) लान्च करके मासिक धर्म स्वास्थ्य सेवाओं की सुगम एवं आसान उपलब्धता सुनिश्चित की है।[10]

साहित्य समीक्षा

नीलसन (2020) ने भारतीय समाज में महिलाओं के मासिक धर्म से संबंधित अस्वस्थ प्रथाओं का उनके स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन किया। शोध निष्कर्षों से स्पष्ट था कि 12–18 वर्ष आयु वर्ग की किशोरियों को मासिक धर्म संबंधी पर्याप्त सुविधा उपलब्ध नहीं होने के कारण हर महीने पाँच दिन का अवकाश लेना पड़ा जबकि कुछ किशोरियों ने मासिक धर्म शुरु होने के बाद स्कूल जाना ही छोड़ दिया क्योंकि इस दौरान उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। इसके साथ ही 70% से अधिक लड़कियों एवं महिलाओं को मासिक धर्म संबंधी अस्वच्छता के कारण किसी न किसी प्रकार के संक्रमण का सामना करना पड़ा।[11]

ठाकरे एवं अन्य (2012) ने ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र से संबंधित लड़कियों का तुलनात्मक अध्ययन किया, जिसके निष्कर्ष में पाया गया कि नगरीय लड़कियों की तुलना में ग्रामीण लड़कियों को मासिक ध र्म के समय ज्यादा परेशानियों का सामना करना पड़ा क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों की किशोरियों में मासिक धर्म को लेकर जागरुकता का अभाव पाया गया। परिवारों का परम्परावादी होने के कारण उन्हें रुढ़िवादी विचारों का सामना करना पड़ा।[12]

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लषेणात्मक प्रकृति का है। शोधा उद्देश्यों को ध्यान रखते हुए साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से आंकड़ों को संकलित किया।

निदर्शन

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु अलीगढ़ जनपद के तहसील कोल के ग्रामीण क्षेत्र की 40 महिलाओं तथा नगरीय क्षेत्र की 40 महिलाओं का चयन सुविधापूर्ण निदर्शन प्रविधि (Convenience Sampling Technique) से किया।

शोध उद्देश्य

मासिक धर्म संबंधी स्वच्छता एवं प्रबंधन के संदर्भ में ग्रामीण एवं नगरीय महिलाओं का अध्ययन करना।

आकड़ों का विश्लेषण :

तालिका नं0-1 उत्तरदाताओं का निवास आधारित विवरण

निवासी	संख्या	प्रतिशत
ग्रामीण क्षेत्र	40	50%
नगरीय क्षेत्र	40	50%
कुल उत्तरदाता	80	100%

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि शोध अध्ययन में उत्तरदाताओं के रूप में शामिल 50% महिलाएँ ग्रामीण क्षेत्र तथा 50% महिलाएँ नगरीय क्षेत्र की निवासी थी।

तालिका नं0-2 उत्तरदाताओं का वर्तमान उम्र का विवरण

उम्र (वर्ष में)	संख्या	प्रतिशत
20-25 वर्ष	25	31.25%
26-30 वर्ष	18	22.5%
31-35 वर्ष	22	27.5%
36-40 वर्ष	10	12.5%
40 वर्ष से अधिक	05	6.5%
कुल उत्तरदाता	80	100%

तालिका नं0 2 से स्पष्ट है कि प्रस्तुत शोध अध्ययन में उत्तरदाताओं के रूप में शामिल सर्वाधिक 32. 25% महिलाएँ 20-25 वर्ष आयु वर्ग की थी। इसके पश्चात् 27.5% महिलाएँ 31-35 वर्ष आयु वर्ग, 22.5% महिलाएँ 26-30 वर्ष आयु वर्ग की, 12.5% महिलाएँ 36-40 वर्ष आयु वर्ग तथा 40 वर्ष से अधिक उम्र की केवल 6.25% महिलाऐं शोध अध्ययन में सम्मिलित हुए।

तालिका नं0-3 उत्तरदाताओं का शैक्षिक स्तर संबंधी विवरण

शिक्षा का स्तर	संख्या	प्रतिशत
शिक्षित	06	7.5%
हाईस्कूल	30	37.5%
इण्टरमीडिएट	29	36.25%
स्नातक	12	15%
परास्नातक	03	3.75%
कुल उत्तरदाता	80	100%

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि शोध अध्ययन में महिलाओं में सर्वाधिक 3.75% महिलाएँ हाईस्कूल में पास थी। इसके पश्चात् 36.25% महिलाएँ इण्टरमीडिएट पास, 15% महिलाएँ स्नातक पास तथा 3.75% महिलाएँ परास्नातक पास थी। केवल 7.5% महिलाएँ अशिक्षित थी।

तालिका नं0-4 परिवार के प्रकार संबंधी विवरण

परिवार का प्रकार	संख्या	प्रतिशत (%)
संयुक्त परिवार	27	33.75%
एकाकी परिवार	48	60%
एकल परिवार	05	6.25%
कुल उत्तरदाता	80	100%

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 60% महिलाएँ एकाकी परिवार (Nuclear Family) तथा 33.75% महिलाएँ संयुक्त परिवार (Joint Family) में रहती हैं। सिर्फ 6.25% महिलाएँ एकल अभिभावक परिवार (Single Parent Family) में रहती हैं।

तालिका नं0-5 मासिक धर्म स्वच्छता हेतु उपलब्ध विकल्प का प्रयोग

	ग्रामीण महिलाएँ		नगरीय महिलाएँ	
विकल्प	संख्या	प्रतिशत (%)	संख्या	प्रतिशत (%)
केवल सेनेटरी नैपकिन (पैड)	20/40	50%	31/40	77.5%
केवल कपड़ा	08/40	20%	02/40	05%
पैड और कपड़ा दोनों	12/40	30%	06/40	15%
टैम्पोन और मेंस्टुअल कप	00/40	100%	01/40	2.5%

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि मासिक धर्म के दौरान ग्रामीण क्षेत्र 50% महिलाओं की तुलना में नगरीय क्षेत्र 77.5% महिलाएँ सेनेटरी नैपकिन (पैड) का प्रयोग करती हैं। ग्रामीण क्षेत्र 20: महिलाएँ तथा नगरीय क्षेत्र 5% महिलाएँ सिर्फ कपड़ा का प्रयोग करती हैं। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्र की 30% की तुलना में केवल नगरीय क्षेत्र की 15% महिलाएँ सेनेटरी नैपकिन और कपड़ा दोनों प्रयोग का प्रयोग करती हैं। शोध अध्ययन में शामिल ग्रामीण क्षेत्र की कोई भी महिला टैम्पोन या मेस्टुअल का प्रयोग नहीं करती जबकि नगरीय क्षेत्र की सिर्फ 01 (2.5%) महिला टैम्पोन या मेस्टुअल कप का प्रयोग करती है।

तालिका नं0-6 सेनेटरी नैपकिन (पैड) प्रयोग नहीं करने के कारण

कारण	संख्या	प्रतिशत (%)
सेनेटरी नैपकिन महंगा होना	45/80	56.25%
समय पर पैड उपलब्ध नहीं होना	15/80	18.75%
कपड़ा आरामदायक लगना	10/80	12.5%
घर पर कपड़ा/बाहर जाने पर पैड का प्रयोग	18/80	22.5%

तालिका नं0 6 में प्रदर्शित आंकड़ों से स्पष्ट है कि शोध में शामिल 56.25% महिलाओं ने सेनेटरी नैपकिन (पैड) की कीमत को अधिक बताया जबकि 18.75% महिलाओं ने पैड नहीं प्रयोग करने का कारण मासिक धर्म के दौरान पैड उपलब्ध नहीं होना बताया। 12.5% महिलाओं ने कपड़े के इस्तेमाल को अधिक आरामदायक बताया जबकि 22.5: महिलाओं ने बताया कि वह घर पर कपड़े का प्रयोग और घर से बाहर जाने पर पैड का प्रयोग करती है।

तालिका नं0-7 मासिक धर्म के दौरान होने वाली समस्याऐं

समस्याऐं	संख्या	प्रतिशत (%)
पेट दर्द, बदनदर्द एवं ऐंठन	76/80	95%
चिड़चिड़ापन	44/80	55%
कपड़ों पर दाग या धब्बा लगने का डर	80/80	100%
पैड खरीदते समय शर्म एवं झिझक महसूस होना	68/80	85%

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 95% महिलाओं को मासिक धर्म के दौरान पेट दर्द, बदन दर्द और ऐंठन की परेशानी का सामना करना पड़ता है जबकि 55% महिलाओं में चिड़चिड़ापन की समस्या देखी गयी। शोध में शामिल 100% उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि मासिक धर्म के दौरान उन्हें कपड़ों पर दाग लगने का डर लगा रहता है, इसके साथ ही 85: महिलाओं को पैड खरीदते समय शर्म व झिझक महसूस होती है।

तालिका नं0-8 मासिक धर्म संबंधी सामाजिक नियमों एवं प्रथाओं का पालन

उत्तर	संख्या	प्रतिशत (%)
हाँ	80	100%
नहीं	00	00%

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 100% महिलाऐं मासिक धर्म संबंधी सामाजिक नियमों, प्रथाओं एवं निषेधों का पालन करती है। जिसमें धार्मिक कार्यों अथवा पूजा पाठ आदि में शामिल होना नहीं है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि उत्तरदाताओं के रूप में शामिल ग्रामीण एवं नगरीय महिलाओं की संख्या बराबर है। सर्वाधिक महिलाऐं 20–25 आयु वर्ग की थी, इसके पश्चात 31–35 आयु वर्ग की 22. 5% थी। शैक्षिक स्तर पर देखा जाये तो सर्वाधिक 36.25% महिलाऐं इण्टरमीडिएट उत्तीर्ण थी। संयुक्त परिवार (33.7%) की तुलना में एकाकी परिवार की (60%) उत्तरदाता थी।

शोध निष्कर्षों से स्पष्ट है कि ग्रामीण महिलाओं की तुलना में नगरीय महिलाएँ सेनेटरी नैपकिन का अधिक प्रयोग करती है। शोधा में शामिल अधिकांश महिलाओं ने माना कि सेनेटरी नैपकिन की दर मंहगी है। इसके साथ ही अधिकांश महिलाओं को मासिक धर्म के दौरान अनेक शारीरिक मनोवैज्ञानिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. माहवारी स्वच्छता : संसाधन पुस्तिका (Srhralliance.in) बिहार वालेन्ट्री हेल्थ एसोसिएशन पटना–800001 बिहार। PP-11
2. Ibdi PP. 11-12
3. https: // www.monstrualhygieneday.org
4. Foster,s & Montgomery P. (2021) A Study of environmentally friendly menstrual Absorbents in context of social change for adoescent girls in low and middle income contries. 76 (18) 9766. doi : 103390/ijerph18189766
5. Deshpande et al: Menstrual hygiene among adolescents girls: A Study from Urban slum area 7(6): 1439-1445 doi: 10.4103/Jfmpc 8018
6. Batt. M (2019) 'Menstruation: A biological phenomenon and not a social stigma period' IACHSS 3rd International Academic Conference on numanties and Social Science. Berlin German PP 29-32
7. ekgokjh LoPNrk % lalk/ku iqfLrdk ¼Srhralliance.in½ fcgkj okysUV³h gsYFk ,lksfl,'ku iVuk 800001 fcgkjA PP-1
8. https://www.thehindu.com/news/national/superme-court-refuses-to-entortain-pil-seeking-mencrual-pain-leave-for-female-students-and-cooking-women/article 66548297 ece.
9. https://Pib.gov.in/press Release page.aspx? PRSQ = 1632082
10. Press information Bureau GOI Government Approves School for manstrual Hygiene 1.5 Crore girls to Get low cost sanitory Nepkins 2010.
11. Nilesen A.C. Sanitary Protection: every woman"s Health right. Sionery community development organization Plan media.
12. Thakre (2012) Urban-Rural Difference in mantrul Problam and Poactices of Girls Students in Nagput, India, Indian Peadiatries Vol. 49.PP 733-735

दिनकर के साहित्य में उपस्थित विमर्श के विविध आयाम : एक अनुशीलन

डॉ. आलोक कुमार पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर,
स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग,
एम. एस. कॉलेज, मोतिहारी, (पूर्वी चम्पारण)
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, (बिहार)

आज के साहित्य का परिदृश्य विमर्शवादी है। आज किसी भी परंपरागत ज्ञान या निष्कर्ष को अंतिम नहीं माना जा रहा है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विमर्श का दौर चल पड़ा है। किसी विषय या अवधारणा के विश्लेषण, चर्चा या बातचीत के माध्यम से किसी अन्य अभिलक्षित सिद्धांत या अवधारणा या विचारधारा तक पहुंचने की प्रक्रिया को विमर्श कहा जा सकता है। भाषा-विशेषज्ञ कमलेश कमल के अनुसार, "यह 'विमर्श' शब्द 'मृश्' धातु से बना है जिसका अर्थ 'स्पर्श करना' या 'छूना' है। 'वि' का अर्थ है- 'विशेष रूप से'। इस प्रकार 'विमर्श' का अर्थ 'विशेष रूप से छूना' है। जिस प्रकार किसी भौतिक वस्तु के गुण-दोष को परखने के लिए उसे छूकर एवं टटोलकर देखा जाता है, ठीक उसी तरह विमर्श में किसी विषय के विविध पहलुओं को टटोला, जाँचा और परखा जाता है।"[1] दिनकर के साहित्य में राष्ट्र, समाज और मनुष्य के विभिन्न पहलुओं पर विमर्श प्रस्तुत किया गया है।

दिनकर को राष्ट्रीयता की भावना को प्रकट करने वाला प्रमुख हस्ताक्षर माना जाता है। दिनकर के लेखन का समय राजनीतिक-सामाजिक-वैचारिक रूप से संघर्ष का समय है। युग की अपेक्षा के अनुरूप दिनकर ने सृजनात्मकता के द्वारा अपनी सजग, सकारात्मक और सक्रिय भूमिका का निर्वहन किया है। एक तरफ दिनकर ने संघर्ष का आह्वान किया है तो दूसरी तरफ मानव-मूल्यों के आग्रह एवं स्थापना के द्वारा राष्ट्रीय गौरव को जागृत किया। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्रता के बाद देश में व्यापत विसंगतियों तथा विषमताओं का जीवंत चित्रण भी किया है।

दिनकर भारत के जनसामान्य में व्याप्त मिथकों, आख्यानों और आद्यबिम्बों को आधुनिक अर्थों एवं सन्दर्भों में सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान की है। उन्होंने अध्यात्म को भारत की उपलब्धि माना है, तो विज्ञान को इसकी आवश्यकता। उनके साहित्य में परंपरा और आधुनिकता का समन्वय देखने को मिलता है। भारत के विभिन्न चिंतकों राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक ने यह माना है कि आधुनिक होने का अर्थ यह नहीं है कि परंपराओं को पूरी तरह से खारिज कर दिया जाय और आधुनिकता को संपूर्णता में अपना ली जाय। वे भारतीय संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ अंश को संरक्षित करने और संस्कृति के सर्वोत्तम भाग को स्वीकार करने के पक्षधर रहे हैं। दिनकर भी भारत की संस्कृति के श्रेष्ठ अंश को संरक्षित करना चाहते हैं और वे भारतीय दृष्टिकोण के अनुरूप स्वीकार्य पाश्चात्य संस्कृति के सर्वोत्तम भाग को भी स्वीकार करना चाहते है। उन्होंने आधुनिकता के सकारात्मक एवं सृजनात्मक

रूप को पसंद किया, उसके अनुपयोगी, विकृत, वीभत्स तथा पतित रूप को अस्वीकार करते किया है। उनके आधुनिकता संबंधी विचार को स्पष्ट करते हुए प्रो. त्रिविक्रम नारायण सिंह लिखते हैं, "दिनकर का विरोध वैसे आधुनिकता से है जो मनुष्य को केवल शरीर मानती है, जबकि आत्मा के बिना शरीर निष्प्राण है। केवल विज्ञान और टेक्नोलॉजी भारतीय समाज को विकास के नाम पर शक्तिसंपन्न चाहे जितना बना दे, खुशहाल, सुखमय और शांतिमय समाज का नियामक कदापि नहीं हो सकता है। इसी एकांगी विकास के कारण बल, बुद्धि, अहंकार, हिंसा, युद्ध, आतंक आदि का तापमान तो तेज हुआ है लेकिन विनम्रता, शालीनता, दया, करुणा और प्रेम का ग्राफ नीचे गिरा है। इसीलिए दिनकर खाटी और रुक्ष आधुनिकता का प्रतिकार करते हैं और समन्वयशील सम्मिश्रत आधुनिकता का पक्ष ग्रहण करते हैं।"[2]

दिनकर का मानना है कि परंपराओं को बिना सम्यक् रूप से विचार किए उनका त्याग नहीं करना चाहिए। उसमें बहुत कुछ ऐसा है जो हमारे लिए, मानव-जीवन के लिए उपयोगी है, जीवनदायी है, संरक्षणीय एवं अनुकरणीय है। उन्होंने 'हारे को हरिनाम' कविता में लिखा है,

"परंपरा को अंधी लाठी से मत पीटो,
उसमें बहुत कुछ है,
जो जीवित है जीवन-दायक है,
जैसे भी हो ध्वंस से बचा रखने लायक है।"[3]

दिनकर के लेखन में ओज, विद्रोह एवं वैचारिकता का सम्मिश्रण है। उनके साहित्य में व्यापकता एवं गहराई भी है। दिनकर की साहित्य-साधना के वैशिष्ट्य पर विचार करते हुए कुमार निर्मलेंदु लिखते हैं, "दिनकर अपने युग की समस्त विविधताओं को अपनी रचनाधर्मिता में समेटे हुए उसके प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी प्रारंभिक रचनाएँ कवि-सम्मेलनों के प्रभाव में लिखी गई थी। 'हुंकार' की कविताओं ने अपने समय में एक बड़े जनसमुदाय को आकर्षित और आनंदित किया था। उनको प्रशंसा और प्रसिद्धि तो 'रेणुका' और 'हुंकार' से मिली; किंतु कविता के इतिहास में उनका महत्व 'रसवंती', 'द्वंदगीत', 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी', 'उर्वशी' तथा 'कोयला और कवित्व' जैसी काव्य कृतियों के कारण ही है।"[4]

आज युद्ध जैसी विभीषिका से संपूर्ण विश्व अस्त, व्यस्त और त्रस्त है। युद्ध और शांति जैसी वैश्विक समस्याओं का सन्दर्भ 'कुरुक्षेत्र' से जुड़ता है। दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में सत्य, अहिंसा, न्याय, शांति आदि मूल्यों पर अपनी संवेदनशील एवं मानवीय दृष्टि से विचार करते हुए तत्संबंधी गहन विमर्श प्रस्तुत किया है। 'कुरूक्षेत्र' उनकी अन्य रचनाओं में अपनी कथ्य और शिल्प के कारण भी विशिष्ट स्थान रखती है। प्रो. गणेश प्रसाद ने विचार एवं भाव में समन्वय की स्थिति के कारण दिनकर की कृतियों में 'कुरुक्षेत्र' को ही श्रेष्ठ माना है। उन्हीं के शब्दों में, "बहुत सारी कृतियों के बावजूद कुरुक्षेत्र ही दिनकर का प्रतिनिधि काव्य ठहरता है क्योंकि इसी काव्य में दिनकर में विचार पुरुष एवं भाव पुरुष में एकात्मक की स्थिति है।"[5]

रामधारी सिंह दिनकर का 'कुरूक्षेत्र' विश्व-युद्धों की पृष्ठभूमि तथा युद्ध-चिंतन की परंपरा में एक महत्वपूर्ण एवं सार्थक हस्तक्षेप है। युद्ध-चिंतन से संबंधित काव्य-रचनाओं में इसका विशिष्ट स्थान है। उनका मानना है कि शांति स्थापित करने के नाम पर युद्ध किया जाता है, परंतु हर युद्ध अगले युद्ध की भूमिका तैयार करता है।

उन्होंने युद्ध की समस्या-समाधान-संबंधी संभावनाओं की पड़ताल भी की है। वे सामाजिक-आर्थिक विषमता को युद्ध, असंतोष और अशांति का मूल कारण मानते हैं। उनका मानना है कि जब तक समता, समानता, एवं सहकार की भावना के अनुरूप समन्वय, संतुलन व सहभागिता नहीं होगी, तब तक युद्ध होते रहेंगे।

विज्ञान केवल मानव जीवन की सुविधा एकत्र करने का साधन मात्र नहीं है, बल्कि यह जीवन की समस्याओं का समाधान निकालने का भी एक जरिया है। इसने मानवता के विकास में अपेक्षित, परिवर्तनकारी एवं क्रांतिकारी सहयोग भी दिया है, जिसके फलस्वरूप एक नये युग का आगाज हुआ। परन्तु मनुष्य ने अपने लोभ एवं स्वार्थ की पूर्ति के लिए इसके अनियंत्रित, अतिशय और अनावश्यक उपयोग ने विभिन्न समस्याओं को जन्म दिया। दिनकर 'कुरूक्षेत्र' के माध्यम से इसपर गहन और गंभीर चिंतन् प्रस्तुत करते हैं।

दिनकर ने देखा है कि विज्ञान की भूमिका प्रभुत्वशाली वर्ग, जिसका संसाधनों पर नियंत्रण है, उन्हें और मजबूती प्रदान करता है। हिटलर के द्वारा गैस चौंबर का इस्तेमाल, अमेरिका का हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु हमले आदि इसी असंवेदनशीलता, क्रुरता और अमानवीयता की ओर इशारा करते हैं। इनके विचार में युद्ध की विभीषिका और त्रसदी के लिए विज्ञान का नकारात्मक एवं संहारक उपयोग अधिाक जिम्मेदार है। जैसे-जैसे विज्ञान ने प्रगति की, युद्ध का स्वरूप और विध्वंसक तथा विनाशक होता चला गया। प्रथम और द्वि तीय विश्व युद्ध इसके भयानक परिणाम हुए। विज्ञान का बाजारवाद एवं राजनीति के द्वारा दुरूपयोग की ओर इशारा करते हुए प्रसिद्ध आलोचक शंभूनाथ ने लिखा है, "इसे एक विडंबना कहा जाएगा कि धीरे-धीरे विज्ञान पर बाजार और राजनीति का कब्जा होता गया और मानवता की समस्याएँ सुलझने की बजाय उलझती गई। ध ारती पर पहले की तरह प्रचंड रूप से हिंसा भी बनी रह गई और अभाव भी छाया रहा। विज्ञान मूल्यों की जगह सिर्फ वस्तुएँ भर बन कर रह गया।"[6]

विज्ञान के उपयोग के मामले में दिनकर मनुष्य को अपात्र तथा अयोग्य मानते हैं। विज्ञान के कारण उत्पन्न हुई त्रासदी को देखते हुए दिनकर का मानना है कि मनुष्य अभी इतना विकसित, विवेकवान और परिपक्व नहीं हुआ है कि वह विज्ञान का सृजनात्मक, सकारात्मक और समुचित उपयोग सुनिश्चित कर सके। वे विज्ञान और वैज्ञानिक आविष्कारों का विवेकसम्मत उपयोग, मानव और मानवता के कल्याणार्थ करने के पक्षधार हैं। मनुष्य को अपनी संकिर्णताओं, कमजोरियों और अदूरदर्शी विचारों के कारण विज्ञान के लाभ से अधिक हानि और परेशानी उठानी पड़ी है। आज विज्ञान वरदान के बदले अभिशाप में बदल गया है, जिससे दिनकर निराश और दुखी हैं। इसने दुधारी तलवार की तरह मानवजाति और मानवता को त्रासद स्थिति में पहुँचा दिया है, दिनकर इसके नियंता 'मानव' को 'नादान शिशु' की संज्ञा देते हैं,

"सावधान मनुष्य, यदि विज्ञान है तलवार,
तो इसे दे फेंक तजकर मोह स्मृति के पार,
हो चुका है सिद्ध है तू शिशु अभी नादान,
फूल, कांटों की नहीं कुछ भी तुझे पहचान।"[7]

यहाँ पर दिनकर विज्ञान की सकारात्मक उपलब्धियों पर विमर्श न करके विज्ञान के नकारात्मक और खतरनाक पक्षों को रेखांकित किया है। इसके विध्वंसात्मक परिणाम की ओर उनका अर्थवान इशारा है जिसके

घातक और विनाशक परिणामों को अंतत: संपूर्ण मानवजाति को ही भुगतना होगा।

विश्व युद्ध के दौरान विज्ञान के घातक और विनाशक उपयोग की पृष्ठभूमि में 'विज्ञान : वरदान या अभिशाप' से संबंधित विमर्श अपने चरम पर था। 'कुरुक्षेत्र' के माध्यम से 'मनुज के श्रेय' का प्रश्न उठाते हुए दिनकर ने इस विमर्श में सार्थक हस्तक्षेप किया है। मनुष्य की वर्तमान पीढ़ी के साथ ही आने वाली पीढ़ी को भी आगाह किया है। दिनकर ने विज्ञान को मनुज का श्रेय मानने से इनकार किया है। मनुष्य के श्रेय के संबंध में उनका मानना है कि समान, संवेदनशील, समावेशी तथा मानवीय मूल्यों पर आधारित समाज ही मनुष्य के लिए कल्याणकारी और श्रेयस्कर हो सकता है। वे मनुष्य का मनुष्य से परस्पर स्नेह, सम्मान, सहकार और 'मानवोचित' संबंधों की अनिवार्यता तथा आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। मनुष्य के श्रेय को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं,

"श्रेय होगा धर्म का आलोक वह निर्बंध।
मनुज जोड़ेगा मनुज से यह उचित संबंध।

श्रेय होगा मनुज का समता विधायक ज्ञान,
स्नेह सिंचित न्याय पर नव विश्व का निर्माण।"[8]

रामधारी सिंह दिनकर ने मानवतावाद को आधार बनाकर अपने काव्य की रचना की। उन्होंने देखा की अशांति एवं युद्ध का वास्तविक कारण आर्थिक तथा सामाजिक विषमता में निहित है। इसका उन्मूलन तब तक नहीं किया जाता है तब तक स्थाई शांति संभव नहीं हो सकती है। संसाधनों के न्यायपूर्ण एवं समतापूर्ण वितरण तथा आर्थिक-संवृद्धि संबंधी लाभ के सहभाग और समभाग को सभी तक सुगमता से पहुंचना आवश्यक एवं अनिवार्य मानते हैं। इसलिए 'कुरूक्षेत्र' में लिखते हैं,

"शांति नहीं तब तक, जब तक सुख भाग न नर का सम हो,

नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो।"[9]

दिनकर के साहित्य में देश के भविष्य नौनिहालों के संदर्भ को भी उचित प्रतिनिधित्व मिला है। दिनकर की सामाजिक और मानवीय चेतना बच्चों दुर्दशा और पीड़ा को देखकर व्याकुल है। वे व्यवस्था के प्रति आक्रोश से भर जाते हैं। बच्चों की असहाय और असह्य स्थिति का चित्रण करते हुए उनकी संवेदना निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त होती है,

"श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बच्चे अकुलाते हैं
मां की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं।
हटो व्योम के मेघपन से स्वर्ग लूटने हम आते हैं,
दूध दूध को वत्स तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं।"[10]

स्वार्थी और लोभी नेताओं के स्वेच्छाचारिता, कुकृत्य तथा क्षरणशील राजनीति पर भी दिनकर का महत्त्वपूर्ण विमर्श है। सत्ता पर आसीन राजनेताओं और लोकतंत्र की सच्चाई का दिनकर पर्दाफाँस करते हैं। वे आम लोगों

की हताशा, दासता, विषमता, शोषण आदि से दुखी हैं। जनता के प्रति लापरवाही, कर्तव्यहीनता और उदासीनता उन्हें सालता है। मूल्यहीन, अर्थहीन और दिशाहीन राजनीति उन्हें पीड़ा देती हैं,

"जनता की छाती भिदे और तुम नींद भरो,
अपने भर तो यह जुल्म नहीं होने दूंगा।
तुम भला कहो या बुरा मुझे परवाह नहीं।
पर दोपहरी में तुम्हें नहीं सोने दूंगा।"[11]

दिनकर राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रीयता के बड़े बहुत बड़े पैरोकार हैं। उनकी सुसामंजस्यपूर्ण, सकारात्मक एवं समावेशी विचार दृष्टि ने राष्ट्रीय-भावना का संचार कर भारत को एक नई दशा और दिशा दी। उन्होंने देश में व्याप्त विभिन्न संकीर्णताओं से ऊपर उठकर राष्ट्रीय ऐक्य की भावधारा का संचार किया। वे अपने साहित्य के माध्यम से व्यापक जनसमुदाय से जुड़े और उन्हें प्रेरित किया। उनकी राष्ट्रीयता स्वतंत्रता सेनानियों की तरह प्रखर और प्रभावी थी। प्रसिद्ध आलोचक नंदकिशोर नवल के शब्दों में, "दिनकर जी की राष्ट्रीयता पर जब हम विचार करते हैं, तो पता चलता है कि वह उग्र राष्ट्रीयता है। जिसके पीछे लोकमान्य तिलक जैसे नेताओं और भगत सिंह व चन्द्रशेखर आजाद जैसे बलिदानियों की प्रेरणा थी।"[12] राष्ट्रीय भावना के विशिष्ट कवि होने के कारण इन्हें 'आधुनिक काल का दूसरा राष्ट्रकवि कहा जाता है।'[13]

रामधारी सिंह दिनकर के प्रचंड राष्ट्र प्रेम के द्वारा अपनी भावनाओं को जन-जन तक पहुंचाने एवं आम जनता को राष्ट्र निर्माण से जोड़ने की प्रक्रिया के संबंध में प्रसिद्ध आलोचक सत्यकाम ने लिखा है, "उनकी कविताओं में राष्ट्र प्रेम बहुत प्रखर और आवेशयुक्त मुद्रा में मौजूद है। उनकी कविताओं में एक और जन-जन को उद्‌बोधित करने का प्रयास किया गया है तो दूसरी ओर जनता को राष्ट्र के निर्माण से जोड़ने की प्रेरण ा दी गई है।"[14] राष्ट्रीय भावना तथा राष्ट्रीय एकता के विकास हेतु अपेक्षित दृष्टिकोण के सन्दर्भ में वरिष्ठ आलोचक शंभुनाथ ने कहा है, "राष्ट्रीय एकता एक सहृदय, सामंजस्यपूर्ण और सकारात्मक जीवन-दृष्टि के बिना संभव नहीं है। धार्मिक, जातीय, लैंगिक और जातिवादी वर्चस्व की आकांक्षा रखकर राष्ट्रीय भावना कभी संभव नहीं होगी।"[15] दिनकर राष्ट्र के नाम पर सुविधाभोगी नेताओं के कार्यशैली से क्षुब्ध हैं। राष्ट्र के संबंध में प्रेमचंद का भी मानना है कि राष्ट्र आज केवल सुविधा भोगने और लाभ उठाने का माध्यम बनता जा रहा है। उनके शब्दों में, "राष्ट्र आज बहुतों के लिए सुविधा उठाने की जगह है।"[16] तथाकथित नेताओं और दलों की देश-भक्ति पर प्रेमचंद को संदेह रहा है। उन्हें लगता है की राजनीतिक दल अपनी-अपनी स्वार्थ-सिद्धि में लगे हुए हैं, राष्ट्र की चिंता पर उनका ध्यान नहीं है। प्रेमचंद ने सवाल उठाया है, "सभी दल अपनी अपनी रक्षा करेंगे, राष्ट्र की रक्षा कौन करेगा?"[17] इन सभी ज्वलंत प्रश्नों पर दिनकर ने सम्यक् विमर्श किया है।

ज्ञानपीठ पुरस्कार से पुरस्कृत उर्वशी दिनकर की एक महत्वपूर्ण रचना है। इसमें प्रेम, सौंदर्य और अध्यात्म पर केन्द्रित विमर्श है। 'उर्वशी' में जीवन के विविध सार्थक एवं महत्वपूर्ण प्रश्नों प्रसंगों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ऐसा करने में दिनकर सिद्धहस्त थे। दिनकर की विशिष्टता को रेखांकित करते हुए रामविलास शर्मा ने लिखा है, "निराला जी के बाद मुझे किसी वर्तमान कवि की रचना में ऐसा मेघमंद्र स्वर सुनने को नहीं मिला जैसा दिनकर की उर्वशी में। इस काव्य में जीवन-संबंधी ऐसे प्रश्न प्रस्तुत किए गए हैं

जिन्हें वर्तमान युग का कवि ही प्रस्तुत कर सकता था।"[18]

दिनकर भारत में व्याप्त विसंगतियों, शोषण, भेद-भाव तथा पक्षपात-पूर्ण व्यवहार से क्षुब्ध हैं। वे शोषण की संस्कृति और ऊँच-नीच के बीच की खाई को खत्म करना चाहते हैं। उनका मानना है कि जिस समाज में मनुष्य भूख और अभाव से पीड़ित हो, कष्टों से जूझ रहा हो, उस समाज का कवि कल्पना-लोक में नहीं जी सकता, उसे यथार्थ-लोक में उतरकर कड़े अनुभव से गुजरना होगा। इसीलिए रेणुका में कृषक-मेघों को देखकर उनका भी मन रो पड़ता है। इसके माध्यम से वे समाज में बढ़ रही संवेदनहीनता, विकास की विडंबनाओं तथा व्यवस्था की विसंगतियों को व्यापकता से उजागर किया है। वे लिखते हैं,

"विद्युत की इस चका-चौंध में देख, दीप की लौ रोती है,
अरी हृदय को थाम, महल के लिए झोपड़ी बलि होती है।"[19]

उनकी कविता भारत के ग्रामीण जीवन से संबंधित कविताओं में उच्च स्थान की अधिकारिणी है। विविध विमर्शों के घटाटोप में कृषक विमर्श पर अपेक्षाकृत कम लिखा गया है, परंतु उस समय भी दिनकर के साहित्य में इसका अभाव नहीं है। कृषकों की भुखमरी, लाचारी, शोषण उनके लिए एक प्रमुख विषय रहा है। उन्होंने बहुत संवेदनशीलता से कृषक जीवन की त्रासदी का जीवंत चित्र अंकित किया है। उन्हीं के शब्दों में,

"अर्धनग्न दंपति के घर में, मैं झोंका बन जाऊंगी,
लज्जित हों न अतिथि सम्मुख, वे दीपक तुरंत बुझाऊंगी।

शिशु मचलेंगे दूध देख जननी उनको बहकायेगी
मैं फाड़ूंगी हृदय लाज से आंख नहीं रो पाएगी।"[20]

दिनकर ने अपने साहित्य में सामाजिक विषमताओं, विडंबनाओं एवं मानवीय गरिमा को तोड़नेवाली शक्तियों की असली मंशा को उजागर किया है। वे समाज में निहित विभिन्न बुराईयों, रूढ़ियों एवं जड़ परंपराओं का विरोध करते हैं। उनकी यह कोशिश रही है कि समाज इनके दुष्चक्र से बहार निकल जाए। वे मानवतावादी और समतामूलक समाज बनाने के पक्षधर थे।

दिनकर विराग की जगह राग, अकर्मण्यता की जगह कर्मण्यता, भोग की जगह त्याग और निवृत्ति की जगह प्रवृत्ति को महत्व देते थे। उन्होंने अपने विमर्श के केंद्र में मानवीय संवेदना और मानवता को रखा है। दिनकर आजीवन कर्मवादी रहे, वे कर्मवादी के साथ-साथ स्वप्नवादी भी हैं, जो इन्हें दार्शनिक बनाती है। दिनकर अन्य दर्शनिकों की भांति जीवन की तटस्थता पर जोर नहीं देते हैं वे कर्मठता पर बल देते हैं। दिनकर का जीवन कर्मवादी रहा है वे सच्चे कर्मयोगी हैं। दिनकर का मनना है कि मनुष्य ने अपने चारों तरफ सभ्यता की चमक-दमक और कृत्रिम आवरण से स्वयं को ढ़क लिया है, परंतु उनका आंतरिक पक्ष संकीर्ण, निष्ठुर, अशांत और अविकसित ही रहा है।

दिनकर ने महाभारत के उपेक्षित पात्र कर्ण को केंद्र में रखते हुए 'रश्मिरथी' की रचना की। उन्होंने मनुष्यता, कर्मशीलता और वीरता को मनुष्य की श्रेष्ठता का आधार माना तथा जाति और गोत्र के आधार पर

श्रेष्ठ बनने के दंभ को सिरे से खारिज किया है। 'रश्मिरथी' की भूमिका में दिनकर ने लिखा है, "यह युग दलितों और उपेक्षितों के उद्धार का युग है। ... हमारे समाज में मानवीय गुणों की पहचान बढ़ने वाली है, कुल और जाति का अहंकार विदा हो रहा है। आगे मनुष्य केवल उस पद का अधिकारी होगा जो उसके सामर्थ्य से सूचित होता है, उस पद का नहीं जो उसके माता-पिता या वंश की देन है।"[21]

दिनकर का लेखन छायावाद, प्रगतिवाद के साथ ही नई कविता तक के कालखंड में व्याप्त है। दिनकर की रचना इस बात की उदाहरण पेश करती है कि बिना किसी वैचारिक बंधन में बंधे हुए भी कवि रचनाकार अपने समाज के गरीब और शोषित लोगों की आवाज कविता में उठा सकता है, उनके लिए सार्थक हस्तक्षेप कर सकता है। दिनकर के दुर्धर्ष व्यक्तित्व एवं विपुल कृतित्व की लोकप्रियता, श्रेष्ठता और बहुआयामीता पर टिप्पणी करते हुए कुमार निर्मलेंदु ने लिखा है, "छायावादोत्तर युग के हिंदी कवियों में वे सर्वाधिक लोकप्रिय रहे हैं। कहते हैं कि लोकप्रिय होना और श्रेष्ठ होना अलग-अलग बात है। परंतु दिनकर की विशेषता यह है कि वे लोकप्रिय भी है और श्रेष्ठ भी। उनके इंद्रधनुषी व्यक्तित्व की भांति ही उनका कृतित्व भी बहुआयामी है। हिंदी कविता के साथ ही उन्होंने हिंदी गद्य की विभिन्न विधाओं को भी अपनी रचनात्मकता से समृद्ध किया है। वे हिंदी के उन गिने-चुने कवियों में से एक है, जो कालातीत होते हैं।"[22] कहना न होगा कि रामध ारी सिंह दिनकर को अपने विशिष्ट कृतित्व और विलक्षण व्यक्तित्व के कारण कालजयी रचनाकारों की श्रेणी में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है।

अत: कहा जा सकता है कि दिनकर ने राष्ट्रीयता के साथ ही आर्थिक-सामाजिक विषमता का चित्रण करते हुए एक सशक्त साहित्यिक हस्तक्षेप किया है। उनके साहित्य में भारतीय संस्कृति एवं जीवन-मूल्यों का गहन विश्लेषण तथा सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है। उनकी प्रतिबद्धता किसी विचारधारा की बजाय आम जनता के प्रति थी, वे केवल सिद्धांत के आधार पर ही जनता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जाहिर नहीं करते बल्कि समाज में व्याप्त विडंबनापूर्ण स्थिति की तीव्र अनुभूति को उन्होंने रचनात्मक लेखन बदल दिया है। दिनकर ने कभी भी अपने व्यक्तिगत हित के लिए जीवन के आदर्शों से समझौता नहीं किया उन्होंने हमेशा सामाजिक और राष्ट्रीय हितों को सामने रखा है। दिनकर ने मानव-कल्याण से प्रेरित अपनी रचनाओं में विविध विमर्शों के माध्यम से सार्थकता प्रदान की है।

संदर्भ-सूची :

1. भाषा संशय-शोधन : कमलेश कमल, प्रभात पेपरबैक, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2022, पृ.सं.-203,
2. शोध मनीषा : सं. प्रो. सतीश कुमार राय, अंक-2, वर्ष : दिसंबर 2021, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, पृ.सं.-168,
3. दिनकर रचनावली : सं. नंदकिशोर नवल, खण्ड-2, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 2011, पृ.सं.-284,
4. दिनकर : एक पुनर्विचार-कुमार निर्मलेंदु, लोक भारती पेपर बैक्स, प्रयागराज, प्रथम संस्करण : 2021, पृ.सं.-10,
5. साहित्यिक निबंध : प्रो. (डॉ.) गणेश प्रसाद, गुडमैन (पी. एंड डी.), पटना, प्रथम संस्करण : 2014, पृ.सं.-526,
6. हिंदी साहित्य ज्ञानकोश : प्र.सं. शंभुनाथ, खण्ड : 6, भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता, प्रथम संस्करण : 2019, पृष्ठ

संख्या-3483,

7. साहित्यिक निबंध : प्रो. (डॉ.) गणेश प्रसाद, गुडमैन (पी. एंड डी.), पटना, प्रथम संस्करण : 2014, पृ.सं.-528,
8. कुरूक्षेत्र : रामधारी सिंह दिनकर, राजपाल एंड संस, दिल्ली, संस्करण : 2010, पृ.सं.-72,
9. वहीं, पृ.सं.-77,
10. साहित्यिक निबंध : प्रो. (डॉ.) गणेश प्रसाद, गुडमैन (पी. एंड डी.), पटना, प्रथम संस्करण : 2014, पृ.सं.-532,
11. वहीं, पृ.सं.-532,
12. परिषद् पत्रिका : प्र.सं. प्रो. रामबुझावन सिंह, वर्ष : 50, अंक : 1-4, अप्रैल 2010 से मार्च 2011, स्वर्ण जयंती अंक, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, पृ.सं.-607,
13. अंतिम जन : सं. डॉ. ज्वाला प्रसाद, अंक : 7, वर्ष -4, संख्या : 54, सितंबर 2024, गांधी स्मृति एवं दर्शन परिषद, नई दिल्ली, पृ.सं.-42,
14. हिंदी साहित्य ज्ञानकोश : प्र.सं. शंभुनाथ, खण्ड : 6, भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता, प्रथम संस्करण : 2019, पृष्ठ संख्या-3187,
15. वहीं, पृ.सं.-3183,
16. वहीं, पृ.सं.-3183,
17. वहीं, पृ.सं.-3183,
18. कविता के नए प्रतिमान : नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, इक्कीसवां संस्करण : 2021, पृ.सं.-70,
19. दिनकर रचनावली : सं. नंदकिशोर नवल, खण्ड : 1, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 2011, पृ.सं.-70,
20. दिनकर रचनावली : सं. नंदकिशोर नवल, खण्ड : 3, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 2011, पृ.सं.-79,
21. दिनकर रचनावली : सं. नंदकिशोर नवल, खण्ड : 5, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 2011, पृ.सं.-72,
22. दिनकर : एक पुनर्विचार-कुमार निर्मलेंदु, लोक भारती पेपर बैक्स, प्रयागराज, प्रथम संस्करण : 2021, पृ.सं.-11

मानवीय संवेदना और "सूनी घाटी का सूरज"

डॉ. विनय कुमार शुक्ला
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
शासकीय रामानुज प्रताप सिंहदेव
स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बैकुण्ठपुर, कोरिया (छ.ग.)

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा-साहित्य में श्रीलाल शुक्ल उन गिने-चुने कथाकारों में है जिनकी चिंता के केन्द्र में भारतीय लोकतंत्र और उसकी विडम्बनाओं में जूझता-कराहता साधारण मनुष्य रहा है। मानवीय संवेदना इनके लेखन का मूल तत्व है, जिसके संबंध में रचनाकार शुक्ल जी कहना है "मेरे व्यक्तित्व की संरचना में इस वैचारिक और संवेदनात्मक प्रवृत्ति का ही परिणाम है कि 1957 में लिखे गए 'सूनी घाटी का सूरज' से लेकर मेरे नवीनतम उपन्यास 'विश्रामपुर का संत' में सामान्य आदमी के प्रति लेखकीय बेचैनी बराबर प्रकट होती रही है"[1] अपनी रचना-यात्रा के दौरान सामाजिक यथार्थ के उद्घाटन व समाज के पीड़ित वर्ग के प्रति वैचारिक प्रतिबद्धता की दृष्टि से प्रेमचन्द ने जिस यथार्थवादी धारा का शुभारम्भ किया उसे निराला, फणीश्वरनाथ रेणू, राही मासूम रजा, रांगेय राघव, यशपाल, नागार्जुन, शिवप्रसाद सिंह, भीष्म साहनी जैसे अनेक रचनाकारों ने पल्लवित किया। श्रीलाल शुक्ल ने इस परम्परा को एक नयी अर्थवत्ता प्रदान की है। इन्होंने पाँच दशक के निरंतर लेखन कर्म द्वारा हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। अनेक विधाओं में लेखन के बावजूद इनकी कथा साहित्य में उपस्थिति बेजोड़ है। उपन्यास लेखन की तरु इनके आकर्षण का कारण शायद यह भी है कि ये चिकोटी काटने यानी छोटे-छोटे झटके देने में विश्वास नहीं करते। उपन्यास के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में कहा है कि "वर्तमान जगत में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करवाते हैं। आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करते है।" इसी संदर्भ में उपन्यासकार के कार्य के बारे में ऑयन वॉट का कथन है कि "उपन्यासकार का मुख्य कार्य मानवीय अनुभवों को निष्ठापूर्वक ईमानदारी से व्यक्त करना है।"[3] श्रीलाल शुक्ल का रचनाकर्म अपने समय के सामाजिक यथार्थ का सशक्त दस्तावेज है। आम आदमी के प्रति पक्षधरता को इनके पहले उपन्यास "सूनी घाटी का सूरज" से लेकर "राग-विराग" तक में स्पष्ट रूप से रेखांकित किया जा सकता है।

"सूनी घाटी का सूरज" शुक्ल जी का प्रथम उपन्यास होने के बावजूद यह उनके सामाजिक बोध और सृजनात्मक उत्तरादायित्व दोनों को उजागर करता है। आलोच्य उपन्यास का नायक रामदास है जो अपने संस्मरण सत्या को पढ़ने के लिए देता है और यही संस्मरण उपन्यास का रूप धारण कर लेता है। यहाँ पर जो कहानी संस्मरण के माध्यम से हमारे सम्मुख आती है वह संधिकाल का समय है जिसके बारे में रामदास का कहना है "यह संधिकाल है। न जाने किस अतल से कुछ उभरता सा है। तब नहीं जान पड़ता कि क्या हो रहा है।

पर, जब सब कुछ धीरे-धीरे एक नए तत्व से ढँक जाता है, जब जान पड़ता है कि जो पहले था, वह अब नहीं रहा। तब लोग बाहर आते हैं और कहते हैं कि यह नया तत्व हमसे पैदा हुआ है।"[4] यह संधिकाल का समय आजादी के कुछ समय पहले व बाद के समय के बीच का है। यह वह दौर है जब मर्दों को बारह आना, आरतों को आठ आना और बच्चों को चार आना मजूरी मिलती थी। जिससे कि इसके कालक्रम का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है। इस उपन्यास का कथानक सीधा-सादा है जिसमें कहीं कोई उलझाव नहीं है। इसका नायक रामदास ग्रामीण है और एक ऐसे ठाकुर (क्षत्रिय) का बेटा है जिसे अपनी तीन बेटियों की शादी के लिए कुल डेढ़ बीघा जमीन और घर अपने ही खानदान के अमीर ठाकुर के यहाँ गिरवी रख देना पड़ता है। वह बड़े ठाकुर के यहाँ ताउम्र बधुआ मजदूर की जिन्दगी व्यतीत करते हुए एक दर्दनाक मौत मर जाता है। इस प्रकार रामदास बचपन में ही अनाथ हो जाता है। वह गरीब है पर सवर्ण है जिसका कि उसे कुछ लाभ भी मिलता है। बचपन में अनाथ हुआ रामदास अपनी लगन और मेहनत की बदौलत उच्च शिक्षा प्राप्त करता है। उसकी इस यात्रा में अनेकों लोग उसकी मदद करते हैं और उससे अपना मतलब साधते हैं। वह हर मोड़ पर ठगा जाता है। बड़े ठाकुर, मुंशी नवरतनलाल, अमीन साहब, जड़ावन वाली, हेडमास्टर अम्बिकेश सिंह, डॉ. सिन्हा, ठाकुर राजेश्वर सिंह के साथ साथ अपनी प्रेमिका सत्या उर्फ अनीता द्वारा भी छला जाता है। इस तरह शिकारी अनेक हैं लेकिन शिकार हर बार वही रहता है। इस उपन्यास में जिस रामदास का चरित्र लेखक ने प्रस्तुत किया है वह एक समूची पीढ़ी का प्रतिनिधि बन जाता है जो विभिन्न संघर्षों के बावजूद अपने गंतव्य तक नहीं पहुँच पाते।

इस उपन्यास में गाँव की जिंदगी का सूक्ष्म और प्रामाणिक चित्रण मिलता है। रमदस्सा (रामदास) का मालिक की भैंसो को चराना, चरवाहों की आदतें, हरकतें एवं उनके दैनिक क्रियाकलाप बड़ी सूक्ष्मता से अंकित हुए हैं। गाँव की औरतों का चित्रण जिनमें छोटका (छोटकी ठकुराइन) का बेमेल विवाह व यारों के साथ आशनाई का किस्सा, सास के डर से औरतों द्वारा घी, दूध, शक्कर आदि चोरी से खाना एवं चोरी से घर का अनाज बेच देना आदि का चित्रण यथार्थ ढंग से किया गया है। गाँव के स्कूल, उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थी एवं मास्टरों द्वारा पढ़ाने का तरीका तत्कालीन ग्रामीण समाज के बिम्ब हैं। लेखक ने 'विंध्य देश' के प्रांतों में फैली चैतुआ मजदूरों की अमानवीय दशा का चित्रण बड़े मार्मिक ढंग से किया है – "जिस अभिशप्त देश में मैं खड़ा हूँ, वहाँ सब कुछ देखने के लिए ही है। यहाँ एक ओर आठ आने के पीछे कोई स्त्री साँप और बिच्छुओं को रौंदती हुई दो रोगी बच्चों के भविष्य की आशंका से काँपते हुए प्राणों के साथ मन-मन भर के पत्थर सिर पर लादकर, पहाड़ियों की ऊँची-नीची पगडंडियों पर टकराती चलती है। यहाँ अशिक्षा और दरिद्रता के क्रूर आतंक में मानव-शरीर का अब भी दासों-जैसा व्यापार होता है। रोगों के संक्रामक आघातों और प्रकृतिक विपत्तियों को झेलने की, सिवाए भाग्य के और कोई औषधि नहीं हैं।"[5] रामदास का समूचा जीवन इसी दरिद्रता के क्रूर आतंक को देखते व अनुभव करते गुजरता है। वह अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति और कठोर परिश्रम की बदौलत अपने भाग्य को बदलना चाहता है पर अंत में सब ओर से ठुकराए जाने के बाद वापस इन्हीं चैतुओं के बीच में वापस आता है। प्रतिभा के अवमूल्यन का जीता-जागता प्रमाण उसका जीवन हमारे सामने प्रस्तुत करता है। वे कौन से कारण हैं जिनके चलते रामदास अपने मंजिल को नहीं प्राप्त कर पाता। रामदास सब प्रकार से योग्य है परन्तु उसके अयोग्य मित्र अपनी इसी काबिलियत की बदौलत बड़े-से-बड़े पदों तक पहुँच जाते हैं पर वह

एक सीमा के आगे नहीं बढ़ पाता। आज के युग में जब पैसा और पैरवी किसी पद को प्राप्त करने के लिए योग्यता का पैमाना हो तो रामदास की स्थिति इससे बेहतर नहीं हो सकती। इस उपन्यास में रामदास माध्यम से उपन्यासकार ने सहमे, सिसकते एवं मुरझाये जीवन का सटीक चित्रण किया है। नायक सोचता है कि "शिकार सदैव वहीं रहता, शिकारी ही बदलते। इन्हीं शिकारियों में जमीदार, राजे, महाजन आते। चोर और डकेत आते। कन्या के विवाह में घर में दूध देने वाली भैंस खुला ले जाने वाले नये रिश्तेदार आते। सादे कागज पर अंगूठा लगाने के बाध्य करने वाली असहायता की स्थिति आती। पत्थर जैसी छाती को पीस कर, समस्त पुरुषार्थ को आंसुओं में बहा देने वाली निराशा आती। सब तरह से जीवन को जकड़कर पथराई आंखों से सब कुछ देखते रहने वाली जड़ता आती। शिकार वही था शिकार अनेक थे।" यह दयनीय स्थिति उस वर्ग की है जो अपनी तमाम मशक्कत के बावजूद समाज के प्रभु वर्ग द्वारा शोषित व प्रताड़ित होता रहा है।

रामदास जीवन के हर मोर्चे पर किल होता है। सत्या जिसका जिक्र रामदास के संस्मरण में अनीता के रूप में है वह भी उसे छोड़कर आई.सी.एस. रामानुज से विवाह कर लेती है। वह अपने पति द्वारा पूछे गए रामदास से संबंधित प्रश्नों का जवाब देते हुए कहती है, "तुम गलत सोचते थे। रामदास में जड़ता नहीं, जिससे वह अपने संसार को भुला दे, जिसके सहारे वह किसी को तुम्हारी तरह प्यार कर सके।[7] यह रामदास का कौन सा संसार है जिसे वह भूल नहीं पाता और जिसके कारण वह हर जगह उपेक्षा का शिकार होता है?

मेरी समझ में वह आम जनता द्वारा निर्मित संसार है जो पग-पग पर प्रताड़ित और लांक्षित होता आया है। उसके मन में उन लोगों के प्रति गहरी मानवीय संवेदना विद्यमान है, उस संसार से वह अपने को अलग नहीं कर पाता। इस उपन्यास में सामाजिक यथार्थ का चित्रण का बखूबी हुआ है। हमारा देश जिसकी सत्तर फीसदी आबादी गाँवों में रहती है वह तमाम तरह की रूढ़ियों, अंधविश्वासों, गरीबी, शोषण, क्रूरता से ग्रस्त है। यहाँ पर व्याप्त भौतिक संसाधन कुछ लोगों द्वारा भोगने के लिए हैं तो अधिकतर लोगों द्वारा मात्र देखने के लिए हैं। इस उपन्यास में वर्णित शोषण कथा मन में गहरे उतरती है।

श्री लाल शुक्ल ने अपने इस प्रथम उपन्यास में कई शैलियों का प्रयोग किया है। पहली बात तो यह कि यह समूचा संस्मरणात्मक शैली में लिखा गया है जोकि पूर्वदीप्ति (फ्लैश बैक) के रूप में रूपायित हुई है। यह समूचा उपन्यास एक चलचित्र की भाँति चलता जान पड़ता है। साथ ही इस में व्यंग्य, विडम्बना एवं विसंगति के शैली पक्ष का भी उपयोग किया गया है। जिस व्यंग्य की धार से 'राग दरबारी' आप्लावित है उसकी झलक यहीं से दिखलाई पड़ने लगती है। यहाँ व्यंग्य उस समाज पर है जो असहाय का शोषण करता है। योग्यता के बावजूद रामदास को लेक्चरर की नौकरी नहीं मिल पाती क्योंकि उसके पास किसी बड़े आदमी की सिफारिश नहीं थी, या वह किसी बड़े आदमी का दामाद नहीं था। इस प्रकार की विडम्बनाएं इस उपन्यास में पन्ने-दर-पन्ने दर्ज हैं जो पाठकों को टीस से भर देती हैं। यथार्थवादी शैली में लिखा होने के कारण इस उपन्यास की माषा सरल, सीधी किन्तु व्यंजनापूर्ण है।

यहाँ पर भाषा का प्रयोग भी पात्रनुकूल है एवं ग्रामीण मुहावरों का प्रयोग भी यथावसर किया गया है जैसे- 'बाप ने मारी मेढ़की, बेटा तीरंदाज', 'सब कुकुरिया जगन्नाथन जाएँगी तो पत्तल कौन चाटेगा'।

निष्कर्ष

रूप में यह उपन्यास हमारे समक्ष सामाजिक यथार्थ को बखूबी प्रस्तुत करता है। सूरज तो सूरज होता है फिर वह चाहे खुले आसमान में अपना तेज विस्तारित करे या फिर घाटी में। रामदास की नियति या सार्थकता सूनी घाटी का सूरज बनने में है जिसे वह अपने चरित्र के माध्यम से चरितार्थ करता है। 'श्रीलाल शुक्ल' अपने इस प्रथम उपन्यास में ही पाठकों के सम्मुख सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत कर मानवीय संवेदना के प्रति अपनी पक्षधारता दिखलाते हैं। सिर्फ उनके व्यंग्य पर वाह–वाह करना उनके रचनाकर्म के साथ अन्याय होगा। हमें उन विसंगतियों एवं विडम्बनाओं को भी देखना चाहिए जिससे आकुल होकर व्यंग्य की धारा प्रवाहमान होती है। श्रीलाल शुक्ल सच्चे अर्थों में मानवीय संवेदना से सम्पन्न रचनाकार हैं।

सन्दर्भ :

1. मेरे साक्षात्कार : शुक्ल श्रीलाल, किताबघर प्रकाशन, पृ. 124
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास : शुक्ल रामचन्द्र, पृ. 293
3. उपन्यास का उदय : ऑयन वॉट, पृ. 7
4. सूनी घाटी का सूरज : शुक्ल श्रीलाल , पृ. 9
5. सूनी घाटी का सूरज : शुक्ल श्रीलाल, पृ. 59
6. सूनी घाटी का सूरज : शुक्ल श्रीलाल, पृ. 132
7. सूनी घाटी का सूरज : शुक्ल श्रीलाल, पृ. 143

वर्तमान देश-दशा और रघुवीर सहाय की कविता

डॉ. विनय कुमार शुक्ला
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
शासकीय रामानुज प्रताप सिंहदेव
स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बैकुण्ठपुर, कोरिया (छ.ग.)

वर्तमान साहित्यिक घटाटोप और सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों के मझधार में प्रेमचन्द का यह कथन बरबस ध्यान आकर्षित करता है कि हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो। सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो. जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो जो इसमें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है। साहित्य और उसमें भी कविता चलताऊ रपट कर्म नहीं जिसे जब चाहे लिख बोल के जी हल्का कर लिया। यह बाह्य और अंतरतम सुन्दर प्रकटीकरण है। यह दौर खबरों की भीषणतम् आवाजाही का दौर है। जहाँ सिर्फ और सिर्फ खबर है और उसके भीतर की चीख दब सी गई है या यो कहें कि जानबूझकर दबा दी गई है। हमें यू लगता है कि हम आस-पास होने वाली घटनाओं से वाकिफ हैं पर उस घटना के घटित होने की जो प्रक्रिया है उससे हम बेखबर है। इस संदर्भ में रघुबीर सहाय की कविताएँ एक आम मतदाता की हालत का मुकम्मान बयान पेश करती है। समय बीतने के साथ रघुवीर सहाय की कविताओं की प्रासंगिकता बढ़ती ही जा रही है। आज जब वर्तमान समाज व्यवस्था के बीच आम लोगों का मानवीय गरिमा के साथ जीना लगभग असंभव हो गया है। इस स्थिति में रघुवीर सहाय की कविताएँ पहले इस जीवन-विरोधी स्थिति की पहचान कराती हैं। फिर उससे मुठभेड़ के लिए हमें शक्ति देती है। भारतीय लोकतंत्र की महान परिकल्पना जिस मतदान आधारित तंत्र व्यवस्था के आधार पर कायम हुई यहाँ मतदाता भ्रष्टाचार और अभिव्यक्ति न कर पाने की घुटन के बीच इस कदर चॉप कर रख दिया गया है जहाँ स्वाधीनता शब्द बेमानी है -

बाँध में दरार
पाखण्ड वक्तव्य में
घटतौल न्याय में
मिलावट दवाई में
नीति में टोटका
अहंकार भाषण में
आचरण में खोट हर हफ्ते मैने विरोध किया
सचमुच स्वाधीन हो जाने का इतना भय
एक दास जाति में।[1]

'आत्मकथा के विरुद्ध' शीर्षक संग्रह की कविताएँ सरसरी तौर पर खबरों की रपट मालूम पड़ती है। पर यह खबर सिर्फ खबर न होकर समाज में मनुष्य की बदलती जीवन-स्थितियों की तलाश है। जहाँ समाज-व्यवस्था के बीच साधाारण मनुष्य अरक्षित और असहाय होकर भी मानवीय गरिमा हतु संघर्ष करने को तैयार है। संग्रह का प्रकाशन वर्ष (1967) आजादी के बाद के बीस बरसों की बद से बदतर हो जाने की कहानी बयां करता है। वे कौन से हालात है जिन्होंने इन बीस बरसों के दरम्यान आम मतदाता को उसकी आशाओं और आकाक्षाओं से परे धकेलकर नारकीय जीवन या मुलाम की जिंदगी जीने को बाध्य किये हुए हैं। जहाँ असहायता और भयावहता का साम्राज्य पसरता जा रहा-

बीस वर्ष
खो गये भरमे उपदेश में
एक पूरी पीढ़ी जनमी पली पुसी क्लेश में
बेगानी हो गयी अपने ही देश में
वह
अपने बचपन की
आजादी
छीनकर लाऊँगा।
x x x x

फिर बीस साल बाद
एक संयोग से
मैं यह कहूंगा जो
बीस साल से सच था
x x x x

बीस साल
धोखा दिया गया
वहीं मुझे फिर कहा जायेगा विश्वास करने को[2]

खबरों का आलम यह है कि जीते जी आम मनुष्य की स्थिति-परिस्थिति कोई खबर नहीं। जहाँ अभावग्रस्त लोगों की मृत्यु ही खबर बन पाती है लेकिन लगातार मृत्यु की ओर बढ़ती उनकी जीवन परिस्थितियों खबर नहीं बन पाती। रघुवीर सहाय की कविताओं में यह खबरधर्मिता सर्जनात्मक है। रघुवीर सहाय का पत्रकारिता से गहरा नाता रहा है. इस कारण कभी-कभी उनकी कविता पर अखबारी भाषा की बात भी चलताऊ ढंग से चेप दी गई है। पर वे पत्रकार और साहित्यकार की हकीकत से पूर्णत: वाकि है, उनकी सीमाओं और क्षमताओं के साथ। बकौल रघुवीर सहाय "पत्रकार और साहित्यकार में कोई अंतर है क्या? मैं मानता हूँ कि नहीं। इसलिए नहीं कि साहित्यकार रोजी के लिए अखबार में नौकरी करते हैं, बल्कि इसलिए कि पत्रकार और साहित्यकार दोनो नये मानव-संबंधों की तलाश करते हैं। दोनों ही दिखाना चाहते हैं कि दो मनुष्यों के

बीच नया संबंध क्या बना। दोनों के उद्देश्य में पूर्ण समानता है। कृतित्व में समानता कमोवेश है। पत्रकार जिन तथ्यों को एकत्र करता है उनको क्रमबद्ध करते हुए उन्हें उस परस्पर संबंध में विच्छिन्न नहीं करता जिससे कि वे जुड़े हुए और क्रमबद्ध है। उसके ऊपर तो यह लाजमी होता है कि यह आपको तर्क से विश्वस्त करे कि यह हुआ तो यह इसका कारण है, ये तथ्य हैं. और यह समय, देश, काल परिस्थिति आदि जिनके कारण ये तथ्य पूरे होते हैं। साहित्यकार इससे भिन्न कुछ करता है। साहित्यकार के लिए तथ्यों की जानकारी उतनी ही अनिवार्य है जितनी पत्रकार के लिए है, परंतु उन तथ्यों का गतानुगत क्रम उसके लिए अवश्य नहीं है, यह उसको उलट-पुलट सकता है। पत्रकार के लिए यथार्थ वही है जो संभव हो चुका है।[3] साहित्यकार के लिए वह है जो संभव हो सकता है।

रघुवीर सहाय पत्रकारिता और कवि के बीच संबंधों को लेकर सतर्क है। इसी कारण मुश्किलें भी उनके सामने बार-बार आती है। जहाँ उनको लिए सबसे मुश्किल और एक ही सही रास्ता है कि मैं सब सेनाओं में लड़ूँ-किसी में ढाल सहित किसी में निष्कवच होकर मगर अपने को अन्त में मरने सिर्फ अपने मोर्चे पर दूँ। अपने भाषा के शिल्प के और उस दो तरफा जिम्मेदारी के मोर्चे पर जिसे साहित्य कहते हैं। उनके यहाँ हर रचना सपना अपने व्यक्तित्व को बिखरने से बचाने का प्रयत्न है।[4]

'आत्महत्या के विरूद्ध' शीर्षक कविताएँ भारतीय राजनीति के लहराते जंगल से हमें रूबरू कराती है। आज राजनीतिक प्रभाव क्षेत्र से समाज का कोई भी अंग अछूता नहीं। जनता के प्रतिनिधि जनता से ही बेखबर है संसद से लेकर सड़क तक जितनी लोकतांत्रिक प्रतिनिधि संस्थाएं है उनका जनता की समस्याओं से कुछ लेना-देना नहीं है। हालात यहाँ यह है-

सिंहासन ऊँचा है सभाकक्ष छोटा है
अगणित पिताओं के
एक परिवार के
मुंह बाये बैठे हैं लड़के सरकार के
लूले काने बहरे विविध प्रकार के
हल्की सी दुर्गन्ध में भर गया है सभाकक्ष[5]

नेता, पदाधिकारियों का हर दिन मनुष्य से एक दर्जा नीचे रहने वालों की जमात के दर्द से कोई वास्ता नहीं है। यहाँ आम आदमी की मौत भी तमाशा है। ऐसी परिस्थिति में कवि की जदोजहद राजनीतिक विद्रूप के तहत उपजी उस अमानवीय स्थिति से पाठकों को रूबरू कराना है। पर यह रूबरू होना किसी धमाके की तरह न होकर एक सधे ढंग से है। कवि के अनुसार मैं उन लोगों के बारे में बहुत आश्वस्त नहीं हूँ जो कि कहते हैं कि आप असहमति इस धमाके से करिये कि आप मर जाये बिना कोई बात कहे और वही तमाशा सब देखें।[6] यह अनायास नहीं कि-

कितना अच्छा था छायावादी
एक दुख लेकर वह एक गान देता था
कितना कुशल था प्रगतिवादी

हर दुख का कारण वह पहचान लेता था
कितना महान था गीतकार
जो दुख के मारे अपनी जान लेता था
कितना अकेला हूँ मैं इस समाज में
जहाँ सदा मरता है एक और मतदाता।[7]

इस भारतीय आम मतदाता की जद्दोजहद रघुवीर सहाय के रचना केन्द्र में है। जहाँ हालात ये बन चुके हैं कि इस देश में स्वाधीनता शब्द का अवमूल्यन तंत्र के स्तर पर हुआ है। तत्र को स्वाधीन व्यक्ति से परहेज है, क्योंकि स्वाधीन व्यक्तियों की अधिकता किसी भी तरह से सत्ता के हित में नहीं। वहाँ तो शर्त ही यह है कि आप मुझे अपनी स्वाधीनता दीजिए हम आपको नागरिकता का दर्जा देंगे। जाहिर तौर पर हम अपनी आजादी का एक हिस्सा इसलिए देते हैं कि वह समाज का और राज्य का प्रबंध करे, तो इस प्रकार सत्ता के और हमारे बीच में एक रिश्ता बनता है। वह हमेशा तनाव का रिश्ता होगा और जनता इस रिश्ते को समझ नहीं पाती या उसे इस रिश्ते को समझने नहीं दिया जाता। कवि का सब कुछ के बावजूद इस जनता से एक खास रिश्ता है–

"क्योंकि आज भाषा ही मेरी एक मुश्किल नहीं रही
एक मेरी मुश्किल है जनता
जिससे मुझे नफरत है सच्ची और निस्संग
जिस पर कि मेरा क्रोध बार–बार न्योछावर होता है।
हो सकता है कि कोई मेरी कविता आखिरी कविता हो जाये
मैं मुक्त हो जाऊँ।[8]

यह मुक्ति की छटपटाहट एक सहृदय कवि के मन में व्याप्त वह टीस है जो आम जनता के दु:ख–दर्द से उपजी है। पर यहाँ असहायता नहीं बल्कि समाज और सत्ता में व्याप्त आतंक से मुठभेड़ है। साथ ही एक उद्दाम जिजिविषा मी भविष्य की सार्थकता के प्रति। रघुवीर सहाय के चिंतन क्रम में समाज की समझने–बुझने की प्रक्रिया इतनी गहन है कि वहीं समाज की समझने का मतलब यह है कि समाज के मनुष्य और मनुष्य के बीच जितने गैर–इंसानी रिश्ते हैं उनकी समझ और कहाँ से वे पैदा होते हैं उनकी समझ और उनकी जड़ों तक पहुँच, इतिहास की समझ। यह समझ ही कवि की अभिव्यक्ति को यह क्षमता देती है कि सत्ता की हनक और उसके आतंक के साधारण मतदाता पर पड़ने वाले प्रभाव को देख–दिखा सके जहाँ–

"कितना आसान है नाम लिखा लेना
मरते मनुष्य के बारे में क्या करूँ क्या करूँ मरते मनुष्य का
अन्तरंग परिषद में पूछकर तय करना कितना
आसान है कितनी दिलचस्प है नेहरू की
आशंसा पाटिल की भर्त्सना कथा
कितनी घुटन के अन्दर घुटन के
अन्दर घुटन से कितनी सहज मुक्ति।[9]

स्वाधीनता संग्राम भारत के आम जन की मुक्ति का संग्राम था। तमाम सपने जोड़े और बुने गये थे आजाद भारत के लिए। पर आजादी के बाद के बीस बरसों के दरम्यान ही उसकी सींवन दरकने लगी। आधुनिक भारत को सजाने संवारने के नाम पर बहुत सारी योजनाओं और राजनेताओं के भाषणों की घुटी भी इस होने वाले मोहभंग से निजात नहीं दिला पाई। हालात यह बने कि देश का बुद्धिजीवी तबका इसे लेकर इस कदर व्यथित है कि–

देश की व्यवस्था का विराट वैभव
व्याप्त है चारों ओर
एक कोने में दुबक ही तो सकता हूँ
सब लोग जो कुछ रचाते है उसमें
केवल अपना मत नहीं दे ही तो सकता हूँ
वह मैं करता हूँ
किसी से नहीं डरता हूँ अपने आप और बेकार।[10]

यह उस आजाद भारत की हकीकत है जिसे वैश्विक मानचित्र पर अभी आजाद हुए कुल बीस वर्ष हुए हैं और साधारण मतदाता सत्ता की भूलभुलैया में इस कदर भ्रमित हो चुका है कि वह दिन-प्रतिदिन इस दमघोंटू माहौल में तिल-तिल मरने को विवश है। समाजवाद की बयार उस तक नहीं पहुंचती। चर्चा जरूर गरम है संसद से सड़क तक के सत्ता के गलियारों में कि आम जनता की फिक्र में वे किस कदर हलकान है। पर यह चर्चा है केसी जहाँ–

"बीस बड़े अखबारों के प्रतिनिधि पूछे पचीस बार
क्या हुआ समाजवाद
कहे महासंघपति पचीस बार हम करेंगे विचार
आँख मारकर पचीस बार वह हँसे वह, पचीस बार
हँसे बीस अखबार
एक नयी ही तरह की हँसी यह है।[11]

यह हँसी दशहत पैदा करती है। राजनीतिक गलियारों में होने वाली चर्चा का आम जनता से कोई वास्ता नहीं। रघुवीर सहाय उन चन्द कवियों में से हैं जहाँ स्वाधीनता के विद्रूप के बीच उनकी रचना आकार लेती है। आत्महत्या एक गुमनामी की चुपचाप होने वाली कार्यवाही है। जिसे गोल-मटोल शब्दों द्वारा सभ्य समाज में फारिग कर दिया जाता है। पर यह आत्मकथा कितनी महीन और सोची-समझी प्रक्रिया है कवि की सतर्क निगाह इस पर है। सिर्फ सांसों का रूक जाना या देह का मिटना ही आत्महत्या नहीं वरन आत्महत्या तो वह भी है जहाँ लोग जिंदा लाश की तरह बुत बने चुपचाप स्वयं को नियति के हवाले कर देते हैं। पर यह नियति शब्द खोखला है राज-समाज द्वारा आम जनता पर आरोपित किया गया है। आत्महत्या के इस पाखंड के खिलाफ, आम जनता को तिल-तिल कर मरने की ओर अग्रसर करने वाली सत्ता के खिलाफ कवि का प्रतिरोध इस कदर है कि–

कुछ होगा कछ होगा अगर में बोलूंगा
न टूटे न टूटे तिलिस्म सत्ता का मेरे अन्दर एक कायर
टूटेगा टूट
मेरे मन टूट एक बार सही तरह
अच्छी तरह टूट झूठमूठ अब मत रूठ।[12]

रघुवीर सहाय के यहाँ समाज और राजनीति मे भीतर–भीतर चल रही साजिश को खबर की शक्ल में पेश किया गया है पर वह खबर मात्र सूचना प्रदान करने तक ही सीमित नहीं। वरन वहीं घटनाओं के घटने के कारणों की तलाश है। एक ऐसा समाज जहाँ आजादी सिर्फ अभिजात वर्ग तक सीमित होकर रह गई है और एक आम मतदाता रोज मरने को मजबूर है। यह मजबूरी क्यों और किन दबाबों के चलते उत्पन्न हो रही। रघुवीर सहाय की कविता इसका मुकम्मल बयान है। देश की विराट एवं भव्य व्यवस्था से उत्पन्न वैभव किस कदर आम जन को दिग्भ्रम की स्थिति में डाले हुए है उनकी रपट है रघुवीर सहाय की कविता।

संदर्भ –

1. सहाय रघुवीर – आत्मकथा के विरूद्ध, पृ० 84
2. सहाय रघुवीर – आत्मकथा के विरुद्ध, पृ० 18, 83, 2
3. सहाय रघुवीर – लिखने का कारण पृ० 177
4. सहाय रघुवीर – आत्मकथा के विरुद्ध, भूमिका
5. सहाय रघुवीर – आत्मकथा के विरुद्ध, पृ० 16–17
6. पूर्वग्रह, अंक नवम्बर–दिसम्बर 1976, पृ० 30
7. सहाय रघुवीर – आत्मकथा के विरूद्ध, पृ० 69
8. वही, पृ० 71
9. वही, पृ० 22
10. वही, पृ० 11
11. वही, पृ० 12
12. वही, पृ० 20

पंडित दीनदयाल उपाध्याय व्यक्तित्व एवं विचार

**डॉ. ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता*
असिस्टेंट प्रोफेसर
(हिंदी विभाग, किरोड़ीमल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय)
***एम एस सरस्वती दुबे*
हिंदी विषय में स्नातक व परास्नातक
(हिंदी विभाग, किरोड़ीमल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय)

भारतीय राष्ट्रीयता व भारत भूमि के प्रति मातृत्व भाव को जन-जन तक पहुँचने वाले, समाज में एकात्मता का मंत्र देने वाले, तपस्वी व्यक्तित्व का जन्म ब्रज भूमि मथुरा जिले के नगला चंद्रभान ग्राम में हुआ। परदादा पंडित हरिराम उपाध्याय प्रख्यात ज्योतिषी थे, दादा राम प्रसाद के पुत्र भगवती प्रसाद आपके पूज्य पिता थे, माता श्रीमती राम प्यारी बहुत ही धर्म परायण महिला थीं। 25 सितंबर 1916 का दिन सम्पूर्ण देश के लिए ऐतिहासिक है क्योंकि इस दिन जन्मे बालक को इतिहास में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के नाम से जाना गया। बचपन में इन्हें लोग सामान्यत: 'दीना' के नाम से पुकारते थे। आपके पिता जलेसर में सहायक स्टेशन मास्टर के रूप में पदस्थ थे।

दीनदयाल का पालन पोषण एवं विकास असमान्य स्थिति में हुआ। उन्हें ऐसी परिस्थितियाँ प्राप्त हुई जिसमें सामान्य व्यक्ति का व्यक्तित्व बुझ सकता है। दीनदयाल अपने नाना के घर आए हुए थे की समाचार प्राप्त हुआ कि उनके पिता का देहांत हो गया है दीनदयाल पितृहीन हो गए उनकी मां विधवा। शोक व चिंता की पीड़ा में वह कुपोषण की शिकार होकर क्षय रोगग्रस्त हो गईं। उस समय क्षय रोग का इलाज असम्भव था और मां भी परलोक सिधार गयीं और दीनदयाल अनाथ हो गए। दीनदयाल मामा पर आश्रित हो गए। अल्पायु में ही वह अपने छोटे भाई शिवदयाल की चिंता स्वयं करते थे। दीनदयाल जी बहुत ही प्रतिभाशाली व मेधावी विद्यार्थियों में से थे दीनदयाल के मामा जी श्री नारायण शुक्ला का स्थानांतरण राजगढ़ से सीकर के लिए हो गया यहाँ उन्होंने 10 वीं कक्षा में प्रवेश लिया उन्हें पता था कि सफलता का यही मोड है जहाँ से शिखर तक पहुँचा जा सकता है।

पंडित जी बहुत ही मेधावी विद्यार्थियों में से थे जिसके कारण उन्हें अनेक बार स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया। वे कानपुर के सनातन धर्म कालेज से गणित विषय में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। इलाहाबाद से वे एल.टी हुए। इस बीच पढ़ाई के लिए उन्हें कुछ समय गंगापुर, कोटा, आगरा तथा रामगढ़ में भी रहना पड़ा। मेधावी छात्रों में से होने के कारण उन्होंने पूरी महाविद्यालयीन शिक्षा छात्रवृत्ति के बल पर पूरी की।

सन् 1937 में आपका संबंध राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से हुआ। उसी वर्ष संघ के छ: उत्सवों में से एक मकर-संक्रांति के उत्सव में वेदमूर्ति पंडित सातवलेकर के करकमलों द्वारा कानपुर की शाखा को ध्वज दिया

गया। इस शुभ अवसर पर पंडित जी ने संघ सेवा की प्रतिज्ञा ली। इस दैवीय कार्य से जोड़ने का श्रेय मुख्यत: माननीय पूर्व सर संघचालक भाऊराव जी देवरस को है। सन् 1942 में पंडित दीनदयाल जी ने लखीमपुर जिला प्रचारक के नाते प्रचारक-जीवन की शुरूआत की। एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में आपके लिए प्राचार्य पद हेतु प्रस्ताव रखा गया, किन्तु संघ में प्रचारक का दायित्व पूर्णकालिक होता है ऐसे में पद का स्वीकार करना तर्कसंगत न होने के कारण उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। सन् 1947 में उत्तरप्रदेश के सह-प्रांत प्रचारक के रूप में दायित्व का निर्वाह किया।

सन् 1947 में 'राष्ट्रधर्म' पत्रिका की स्थापना हुई। पण्डित जी के मार्गदर्शन में 'राष्ट्रधर्म' मासिक, 'पांचजन्य' साप्ताहिक तथा 'स्वदेश' दैनिक पत्र प्रकाशित होते थे। पंडित जी ने अंतिम दो पत्रों के संपादक के रूप में कार्य किया। प्रकाशन के प्रबंध निदेशक भारत रत्न श्री नानाजी देशमुख थे। संपादन का कार्य सर्वश्री महावीर प्रसाद त्रिपाठी, राजीवलोचन अग्निहोत्री, अटलबिहारी वाजपेयी आदि ने क्रमश: संभाला था। राष्ट्रधर्म परिवार के वत्सलकर्ता पं. दीनदयाल जी थे।

अधिवक्ता राजकुमार (लखनऊ) की अध्यक्षता में उ. प्र. जनसंघ की स्थापना हुई। उस समय दीनदयाल जी को प्रदेश जनसंघ का काम सौंपा गया। उससे पूर्व 5 मई, 1951 को डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में कलकत्ता में श्पीपुल्स पार्टीश की स्थापना हुई। 27 मई 1951 को विविध प्रांतों के कार्यकर्ताओं की दिल्ली में प्रारंभिक बैठक हुई जिसमें अखिल भारतीय दल की स्थापना का विचार हुआ। श्यामाप्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में 21 अक्तूबर 1951 को भारतीय जनसंघ की स्थापना की अधिकृत घोषणा की गयी। जनसंघ का प्रथम अखिल भारतीय अधिवेशन दिसम्बर 1952 में कानपुर में हुआ। उस समय जनसंघ के अखिल भारतीय महामंत्री के रूप में दीनदयाल जी के नाम की घोषणा की गयी। इस अधिवेशन में पारित 15 प्रस्तावों में से 7 उपाध्याय जी ने प्रस्तुत किये। डॉ० मुखर्जी ने उनकी कार्यकुशलता और क्षमता से प्रभावित होकर कहा- 'यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाएँ, तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँ।'

पण्डित जी साहित्यिक व्यक्तित्व भी थे अत: उनके मानस व राजनीतिक विचार को पूर्ण रूप से समझने के लिए दृष्टि निम्न लेखों का मूल पाठ हम दो-चार हो सकते हैं।

पंडित दीनदयाल जी के लेख वि.स. 2005-06 से 1947-49 के मध्य के हैं जो निम्न हैं-

राष्ट्रधर्म इतिहास:

(1) भारतीय राष्ट्रधारा का मुख्यप्रवाह (बुद्ध से शंकराचार्य तक) वर्ष-1, अंक-1, श्रावणी पूर्णिमा, विक्रम सं. 2004

(2) भगवान कृष्ण: वर्ष-1, अंक-2, भाद्रपद पूर्णिमा, 2004

(3) संस्कृति: चिति वर्ष-1, अंक-3-4, कार्तिक पूर्णिमा, 2004

(4) राजनीतिः राष्ट्रजीवन की समस्याएँ अंक-9, शरद्पूर्णिमा, 2006

(5) भारतीय राजनीति की मौलिक भूलें: अंक-11, मार्गशीर्ष पूर्णिमा, 2006

पांचजन्य इतिहास-दृष्टिः

(1) लोकमान्य तिलक की राजनीति : स्वतंत्र भारत में लोकमान्य की प्रथम जयंती के अवसर पर, श्रावणकृष्ण 8, 2005

(2) व्यंग्यात्मकः 144 (धारा 144 के इतिहास एवं उपयोग पर व्यंग्य) आषाढ़ शुक्ल 7, 2005

(3) ललित निबंधः राजनीतिक आय-व्ययः भाद्रपद शुक्ल 10,2005, जुलाई 1949 से जुलाई 1950

(4) सांस्कृतिकः जीवन का ध्येय, राष्ट्रीय आत्मानुभूति : भाद्रपद कृष्ण 9, 2006

(5) विजयादशमी (सहिष्णुता के समान ही जयिष्णुता की आवश्यकता) विजयादशमी विशेषांक, 2006

(6) राजनीतिः भारतीय संविधान पर एक दृष्टि (कठोर एवं वृहद् संविधान के निर्माण के स्थान पर संवैधनिक विकास-प्रक्रिया प्रारंभ करने का आग्रह; मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थी संवत् 2006

इसी कालखण्ड में दीनदयाल जी की दो साहित्यिक कृतियाँ प्रकाशित हुई 'जगद्गुरु शंकराचार्य' तथा नाटक 'सम्राट चन्द्रगुप्त' पंडित जी ने इस नाटक के माध्यम से चंद्रगुप्त को केन्द्र में रखकर राष्ट्रप्रेम को प्रकट किया। चंद्रगुप्त के रूप में एक ऐसे नायक को गढ़ा जो राष्ट्रवाद का पर्याय था। पंडित जी की इस कृति को रचने के पीछे एक प्रेरणा थी। बात उन दिनों की है जब पंडित जी उत्तर प्रदेश के सह-प्रांत प्रचारक थे। एक दिन बैठक के दौरान तत्कालीन प्रांत प्रचारक पूज्य श्री भाऊराव देवरस ने चिंता व्यक्त की कि शाखाओं में बाल स्वयंसेवक तो आते हैं, लेकिन हमारे विचार बाल-सुलभ भाषा में उपलब्ध नहीं हैं। वास्तव में बाल-साहित्य की बहुत आवश्यकता है। पंडित जी ने इस बात को बहुत गंभीरता से लिया और पूरी रात जागकर लिखते रहे, अगले दिन सुबह पूज्य भाऊराव देवरस को अपनी कृति सौंपते हुए बोले देखिए बाल स्वयंसेवकों के लिए यह पुस्तक केसी रहेगी? उन्हें भी यह पुस्तक पसंद आयी। निश्चित रूप से उनमें बाल साहित्य को प्रस्तुत करने की भी प्रतिभा थी। हमें युवाओं/ वयस्कों के लिए लिखने वाले तो तमाम मिल जाते हैं परंतु बाल साहित्य लिखने वालों की संख्या बहुत कम है। यह उनकी पहली पुस्तक थी जो 1946 में प्रकाशित हुई थी।

पंडित जी विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। नयी भाषा सीखने में उनकी विशेष रुचि थी अतः वे अपने प्रवास के समय दिखने वाले विज्ञापनों के पोस्टर, साइन बोर्ड आदि को देख कर भारतीय भाषा तथा लिपि सीखते थे। देर तक रात्रि घण्टों अध्ययन भी करते थे। उनके बारे में कहा जाता है कि विद्यार्थी जीवन में गणित का जो प्रश्न उनसे हल नहीं होता था, वे उसी की चिंता में सो जाते थे। स्वप्न में ही समस्या का समाधान प्राप्त हो जाता था और वे उसे सुबह सुलझा लेते थे। इन प्रसंगों के माध्यम पंडित जी के साहित्यिक परांगता और दृढ़ इच्छाशक्ति की बहुत कुछ कल्पना की जा सकती है।

वस्तुत: दीनदयाल जी का मूल स्वभाव संघप्रचारक का ही था। संघ कार्य को किसी नये स्थान पर प्रारंभ करने में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था, इसकी कल्पना शायद आज नहीं की जा सकती अथवा वर्तमान परिस्थितियों को देखकर आज के नागरिकों को अविश्वास हो सकता है कि पं. जी ने भड़भूजे की दुकान से सिर्फ चने खरीदकर उसी पर कई दिन तक जीवन-निर्वाह किया था। मुहम्मदी के लोगों ने उन्हें दुकान के बाहर की पटरी पर रात बिताते देखा था। स्टेशन से गाँव जाने के लिए तांगेवाला दो पैसे अधिक माँग रहा था, तो उसकी बचत करने के लिए भारी वर्षा में दीनदयाल जी को भीगते हुए लोगों ने देखा था। बाह्य परिस्थिति की प्रतिकूलता तो थी ही, साथ ही स्वयं दीनदयाल जी की अनासक्त कर्मयोगी प्रवृत्ति भी महत्त्वपूर्ण थी। आगे चलकर जीवन में अनुकूलता प्राप्त होने के बाद भी उन्होंने उसका लाभ नहीं उठाया क्योंकि संघ अपने स्वयंसेवकों को स्वावलंबी,परिश्रमी, मितव्ययी, परोपकारी, कृतज्ञ, समाज से समाज के लिए सहयोग, नि:स्वार्थ जैसे तमाम गुणों को सहज ही भरने का कार्य करता है। संघ न्यूनतम संसाधनों से अधिकम कार्य की प्रवृत्ति का विकास करता है उदाहरणत: पण्डित जी द्वारा अपने कपड़े को स्वयं धोना व फटे-पुराने कपड़ों की सिलाई कर काम चलना आदि ।

प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक पहचान होती है इसी प्रकार से भारत की भी एक पहचान है। चाहे वह हमारे राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा के माध्यम से हो अथवा हमारी सांस्कृतिक व भाषाई विविधता से हो 'वसुधैव कुटुंबकम' हमारी पहचान है। पण्डित जी कहते हैं 'बिना राष्ट्रीय पहचान के स्वतंत्रता की कल्पना व्यर्थ है' जिस प्रकार से हमें एक अनाथ बालक स्वतंत्र दिख सकता है परंतु वास्तव में वह स्वतंत्र होता नहीं है, वह अपनी पहचान और अस्तित्व की निरंतर मानसिक और सामाजिक लड़ाई लड़ता रहता है।

मनुष्य की प्रबुद्धता के विषय में पंडित जी के विचार हैं कि 'मानवीय ज्ञान सभी की अपनी संपत्ति है' इसी संदर्भ में संस्कृत का एक श्लोक है-

'न चोरहार्य न राजहार्य न भ्रतृभाज्यं न च भारकारि!
व्यये कृते वर्धति एव नित्यं विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् !!'

अर्थात इसे न ही कोई चोर चुरा सकता है, न ही राजा छीन सकता है, न ही इसको संभालना मुश्किल है और न ही इसका भाइयो में बंटवारा होता है। यह खर्च करने से बढ़ने वाला धन हमारी विद्या है जो सभी धनो से सर्वश्रेष्ठ है। वहीं ज्ञान सीमा में बँधा हुआ नहीं होता है 'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' जिस प्रकार से राजा की पूजा केवल अपने राज्य की सीमा में ही होती है किंतु विद्वान की सर्वत्र पूजा जाती है। विद्वत्ता भौगोलिक सीमा में बँधी नहीं होती है।

दीनदयाल जी इन्द्रिय संयम के विषय में कहते हैं कि 'शक्ति हमारे असंयत व्यवहार में नहीं बल्कि संयत कार्यवाही में निहित है' वहीं नैतिकता के विषय में कहते हैं कि 'नैतिकता के सिद्धांत किसी के द्वारा बनाए नहीं जाते, बल्कि खोजे जाते हैं' यदि हमें किसी व्यक्ति वस्तु के प्रति अपनी श्रद्धा को बढ़ानी होती है तो हम उससे किसी न किसी रूप में अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं जिसके कारण न केवल हमारी श्रद्धा बढ़ती है बल्कि निकटता भी स्थापित हो जाती है जैसे 'हमारी राष्ट्रीयता का आधार भारत माता है, केवल भारत नहीं। माता शब्द हटा दीजिये तो भारत केवल जमीन का टुकड़ा मात्र बनकर रह जायेगा।'

इसी बात को आगे बढ़ाते हुए श्रद्धेय अटल बिहारी वाजपेयी जी कहते हैं कि 'भारत जमीन का टुकड़ा नहीं, जीता जागता राष्ट्रपुरुष है। हिमालय मस्तक है, कश्मीर किरीट है,पंजाब और बंगाल दो विशाल कंधे हैं। पूर्वी और पश्चिमी घाट दो विशाल जंघायें हैं। कन्याकुमारी इसके चरण हैं, सागर इसके पग पखारता है। यह चन्दन की भूमि है, अभिनन्दन की भूमि है,यह तर्पण की भूमि है, यह अर्पण की भूमि है। इसका कंकर-कंकर शंकर है, इसका बिन्दु-बिन्दु गंगाजल है। हम जियेंगे तो इसके लिये मरेंगे तो इसके लिये।'

पण्डित जी कहते हैं 'ये जरूरी है कि हम हमारी राष्ट्रीय पहचान के बारे में सोचें, जिसके बिना स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है।' भारत संस्कृति सम्पन्न देश है पण्डित जी अपनी संस्कृति और परम्परा के वाहक हैं एक प्रसंग से इस बात को समझा जा सकता है। यह घटना सन् 1937 की है, जब वे छात्र जीवन में थे और कानपुर के सनातन धर्म कॉलेज में अध्ययनरत् थे। तब कॉलेज में अंग्रेजी पढ़ाने वाले शिक्षक ने 01 जनवरी को कक्षा में सभी विद्यार्थियों को नव वर्ष की बधाई दी। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जानते थे कि शिक्षक पर अंग्रेजी संस्कृति का प्रभाव है। इसलिए पंडित जी ने भरी कक्षा में तपाक से कहा- 'आपके स्नेह के प्रति पूरा सम्मान है आचार्य, किंतु मैं इस नव वर्ष की बधाई को नहीं स्वीकारूंगा क्योंकि यह मेरा नव वर्ष नहीं।' यह सुन सभी स्तब्ध हो गए। पंडित जी ने फिर बोलना शुरू किया - 'मेरी संस्कृति के नव वर्ष पर तो प्रकृति भी खुशी से झूम उठती है और वह गुड़ी पड़वा (चौत्र शुक्ल प्रतिपदा) पर आता है।' यह सुनकर शिक्षक विचार करने पर मजबूर हो गए। बाद में उन्होंने स्वयं भी कभी अंग्रेजी नव वर्ष नहीं मनाया।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय दार्शनिक विचार की बात करें तो इनके द्वारा प्रस्तुत दर्शन को 'एकात्म मानववाद' कहा जाता है जिसका उद्देश्य एक ऐसा 'स्वदेशी सामाजिक-आर्थिक मॉडल' प्रस्तुत करना था जिसमें विकास के केंद्र में मानव हो। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने पश्चिमी 'पूंजीवादी व्यक्तिवाद' एवं 'मार्क्सवादी समाजवाद' दोनों का विरोध किया, लेकिन आधुनिक तकनीक एवं पश्चिमी विज्ञान का स्वागत भी किया। ये पूंजीवाद एवं समाजवाद के मध्य एक ऐसी राह के पक्षधर थे जिसमें दोनों प्रणालियों के गुण तो मौजूद हों लेकिन उनके अतिरेक एवं अलगाव जैसे अवगुण न हो। इनके अनुसार पूंजीवादी एवं समाजवादी विचारधाराएँ केवल मानव के शरीर एवं मन की आवश्यकताओं पर विचार करती है इसलिए वे भौतिकवादी उद्देश्य पर आधारित हैं जबकि मानव के संपूर्ण विकास के लिए इनके साथ-साथ आत्मिक विकास भी आवश्यक है। साथ ही, उन्होंने एक वर्गहीन, जातिहीन और संघर्ष मुक्त सामाजिक व्यवस्था की कल्पना की थी।

एकात्म मानववाद की वर्तमान प्रासंगिकता- एकात्म मानववाद का उद्देश्य व्यक्ति एवं समाज की आवश्यकता को संतुलित करते हुए प्रत्येक मानव को गरिमापूर्ण जीवन सुनिश्चित करना है। यह प्राकृतिक संसाधनों के संध ारणीय उपभोग का समर्थन करता है जिससे कि उन संसाधनों की पुनः पूर्ति की जा सके।

आज वैश्विक स्तर पर एक बड़ी जनसंख्या गरीबी में जीवन यापन कर रही है। विश्वभर में विकास के कई मॉडल लाए गए लेकिन आशानुरूप परिणाम नहीं मिला। अतः दुनिया को एक ऐसे विकास मॉडल की तलाश है जो एकीकृत और संधारणीय हो। एकात्म मानववाद ऐसा ही एक दर्शन है जो अपनी प्रकृति में एकीकृत एवं संधारणीय है।

एकात्म मानववाद न केवल राजनीतिक बल्कि आर्थिक एवं सामाजिक लोकतंत्र एवं स्वतंत्रता को भी बढ़ाता है। यह सिद्धांत विविधता को प्रोत्साहन देता है अत: भारत जैससे विविधतापूर्ण देश के लिए यह सर्वाधिक उपयुक्त है। एक वाक्य में कहें तो एकात्म मानववाद का उद्देश्य प्रत्येक मानव को गरिमापूर्ण जीवन प्रदान करना है एवं 'अंत्योदय' से तात्पर्य अंतिम व्यक्ति के उदय अर्थात सामर्थ्यवान बनाने से है। वर्तमान समय में सरकार पंडित दीनदयाल जी के विचार को आत्मसात करते हुए आगे बढ़ रही है। अंत्योदय का लक्ष्य अंतिम व्यक्ति को विकास से सीधे जोड़ना है। शासन भी अपनी प्रतिबद्धता को दिखाते हुए चल रही विकास योजनाओं से सीधे वंचित वर्ग को जोड़कर लाभ दिलाने का कार्य कर रहा है। प्रत्यक्ष लाभ भुगतान (Direct Benefit Transfer DBT) अंत्योदय का बहुत प्रसांगिक उदाहरण है। अत: यह दर्शन न केवल भारत अपितु सभी विकासशील देशों में सदैव प्रासंगिक रहेगा।

प्राय: ऐसा कहा जाता है कि विराट व्यक्तित्व को धारण करने वाले महापुरुषों को परमात्मा भी शीघ्र अपने पास बुला लेते हैं। वर्ष 1967 में कालीकट अधिवेशन में उपाध्याय जी भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वह मात्र 43 दिन जनसंघ के अध्यक्ष रहे। 11 फरवरी 1968 को रात्रि की गाड़ी से पं. दीनदयाल लखनऊ से पटना जा रहे थे। दूसरे दिन सुबह गाड़ी जब मुगलसराय स्टेशन पर पहुँची तो पंडित जी का नि:श्वास शरीर मिला। चारों ओर दु:ख व निराशा फैल गयी। पूरा देश शोक में डूब गया। ऐसे संत पुरुष को किसने मारा होगा? आज भी वह प्रश्न अनुत्तरित है। उस समय पं. जी उम्र मात्र 52 वर्ष थी।

आपके असामयिक निधन पर भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन व राजनीतिक दलों के नेताओं ने शोक व्यक्त किया। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा, 'श्री उपाध्याय देश के राजनीतिक जीवन में एक प्रमुख भूमिका अदा कर रहे थे। जनसंघ और काँग्रेस के बीच मतभेद चाहे जो हों, श्री उपाध्याय सर्वाधिक सम्मानपात्र नेता थे और उन्होंने अपना जीवन देश की एकता एवं संस्कृति को समर्पित कर दिया था।' तत्कालीन सर संघचालक श्री गुरुजी, संघ के सरकार्यवाह माननीय बालासाहेब देवरस, जनसंघ की कार्यकरणी सदस्यों आदि लोगों ने उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की। भारत की संसद ने भी पंडित जी के सांसद न होते हुए भी उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। मानो भारत की राष्ट्रशक्ति ही आर्त हृदय से कह रही थी- 'बड़े शौक से सुन रहा था जमाना, तुम्हीं सो गये दास्ताँ कहते-कहते'।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. दीनदयालय संपूर्ण वाड्मय, राष्ट्र जीवन की दिशा, राष्ट्र चिंतन: पंडित दीनदयाल उपाध्याय
2. संकलन-संपादन गुप्ता, विजय कुमार पं. दीनदयाल उपाध्याय, सुरुचि प्रकाशन केशव कुंज, झण्डेवाला, नई दिल्ली 110055
3. सं.अग्रवाल, रविन्द्र पं. दीनदयालजी: प्रेरक विचार, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
4. ठेंगड़ी दत्तोपन्त, पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार-दर्शन खण्ड-2 एकात्म मानव दर्शन, सुरुचि प्रकाशन केशव कुंज, झण्डेवाला, नई दिल्ली 110055
5. ठेंगड़ी दत्तोपन्त, पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार-दर्शन खण्ड-5 विचार दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, केशव कुंज, झण्डेवाला, नई दिल्ली 110055

6. ठेंगड़ी दत्तोपन्त, पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार-दर्शन खण्ड-7 व्यक्ति दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, केशव कुंज, झण्डेवाला, नई दिल्ली 110055
7. उपाध्याय, पं.दीनदयाल, राष्ट्र जीवन की दिशा, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ
8. उपाध्याय, पं.दीनदयाल, राष्ट्र चिंतन, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ

PART – II

Experiencing Silent Echoes

Dr. Gopal Thakur

During my early study period, my Guru used to say, 'Where there is no sun, there is the poet.' So, there is nothing impossible in poetry. That is why, I think the poets were even expelled from the Platonian Republic. Here also is a rhetorical topic for poetry chosen by a couple of litterateurs, Dr. Santosh Patel and Dr. Kalyani Pradhan. Dr. Patel is the poet and Dr. Pradhan is the translator. I think topicalization of the seventy poems translated into English from the poetry composed in Hindi "Silent Echoes" is quite appropriate. The di-word naming of the collection seems conflicting one another on the surface as silence never favors echoes whereas the echoes can never remain silent. But in depth, the title represents silencing the echoes. Certainly, it is the symbol of suppression not merely economically but in the names of caste and creed.

As known to the world, Marxian theory of dialectical and historical materialism created scientific socialism and Leninist contribution added national liberation and proletarianism to it. Both condemned bourgeois exploitation and brought strategy to reach communism replacing utopia, for elimination of capitalism. Maoists added peasants' revolution against feudalism and colonialism naming it New Democracy. Communist parities followed them worldwide. But Soviet Union itself collapsed in the nineties due to atrocities of Russian social imperialism that suppressed all sorts of non-Russian nations and nationalities. It was the outcome of Marism. The impact of the very fall collapsed many other socialist republics, especially in Eastern Europe. The Indian communists ignored Quit India Movements against British colonialism under veil of Internationalism. Besides, West Bengal exercised communist rule under parliamentary electoral system for a few decades but significant changes were not observed in life-style of the oppressed class people. On the contrary, the feudal dictatorial Panchayat regime was overthrown in the nineties in Nepal through a popular movement staged by democrats and communists together, and the communists got involved in power since 1994 even under constitutional monarchial parliamentary system. But the suppressed national identities along with oppressed class of peasants and laborers didn't experience changes in their life-style. The Maoists declared people's war in 1996 including national liberation and inclusion of the oppressed in the names of caste and creed within their agenda. It was mixed up with the popular movement in 2006 and the monarchy was overthrown. The Constitution of Nepal was promulgated in 2015 in spite of strong agitation of Madhesh. Any way, Nepal has been exercising Federal Democratic

Republic rule with inclusion of Dalits, Muslims, Women and some other minorities too in the state affairs. Though some developments have been observed in the physical infrastructure and social security sector of the populace, the significant changes in the peasants' and laborers' life-style are still a want. The situation in South Asia remains almost the same, but why?

The western world stepped into capitalism overthrowing the feudal system centuries ago. But South Asia has still been overloaded with feudalism and India is the sample one. The Indian feudalism is quite different from elsewhere in the world. It is so rooted in the Hindu caste system that the conversion also fails among those converted from Hindus. Directly or indirectly, crusade has been the universal crisis since long ago but the worst dramas are being staged in the Middle East and South Asia these days.

It is so because Dharma and Religion have been made synonymous. But the Indian sub-continent has very clear doctrine what Dharma is: -

ɖ̤ritih kʂʌma dʌmoʌsteyʌm ʃaucʌmindriyʌnigrʌhʌh
ɖ̤īrvidya sʌtyamakroɖ̤o dʌʃʌkʌm ɖ̤ʌrmʌlʌkʂʌɳʌm.

'Patience, forgiveness, anti-discriminatory stance, non-stealing, purity, control of senses, righteous action, knowledge, truth and giving up anger are the ten indications of dharma.'

Among the ten indications, none of them favours superstition in the name of spiritualism, rather all are the characteristics of humanity. On the contrary the religion is universally defined as the belief in and worship of a superhuman power or powers, especially a God or gods. In this way the dharma was contaminated with religion and the crusade is its outcome worldwide. In South Asia or Indian sub-continent, there is crusade within the same religion, i.e., Hinduism, deeply rooted in *vʌɳʌ vyʌwʌstʰa* 'caste system'. The very system primarily categorised division of labour:

'jʌnmʌna jayʌte ʃudrʌ sʌnskaradwijocyʌte
vedʌ pʌʈʰitwa b̤ʌwedviprʌh brʌm̤ʌ janatīti brʌm̤ʌnʌ.'

'All are *fudras* 'completely raw and unskilled' by birth. The one by *sanskar* 'uplifting into culture' ascends into *dwija* 'semi-human'. The study of Vedas culminates him into dwij 'intellectual' and if and only if he meets with *brama* 'celebacy', he turns into Brahmin.'

But very deceitfully Brahminism emerged and invisibly confirmed permanency to *varna* 'caste' on the basis of birth or dynasty: -

'pʌtitopi dvijʌh ʃreʂʈʰʌ nʌcʌ ʃudrʌ jītendriyʌ
pujitopi bʌnɖ̤ya gʌī kʰʌrʌ dugɖ̤a nʌ pūjyʌte.'

'Brahmin is the only supreme even though he is the *patit* 'retrograded' one. Because the

cow only is worshiped even if she is nulliparous, not a mare though she is giving milk.'

In this way *sanatani* later turned Hindus had the permanent caste system by birth.

This discriminatory direction is also carried by Tulsidas: -

'pūjʌhi vipra ʃīlʌ guɳʌ hīna
ʃudrʌ nʌ pūjʌhi vedʌ prʌvīɳa.'

'Worship Brahmins though out of discipline and skills, but not the Shudras full of all sorts of knowledge and skills.'

According to this caste system, Brahmins have rights to have and offer education, donation and sacrifice. The *ksetriya* 'ruler' has to have education and offer donation and sacrifice as well as to protect his subjects. The *vaifya* 'farmer/trader' has to farm land and run all sorts of businesses and act as the Brahmins and Rulers direct them; and the last one, the *fudra* 'laborer', has no alternatives other than to serve all the upper varnas. But the Brahminical deceitfulness didn't take a lull, it proceeded further to bar all Shudras and majority of Vaishyas from touchability. In this say the Brahmins declared a majority of Hindu Vaishyas and Shudras untouchable.

That is why Lord Buddha called all humans to be part of *sanga* 'union' and *damma* 'dharma or humane characteristics' but not of religion.

In due course of the social reforming movement by Jyotiba and Sabitribai Phule, M. K. Gandhi, Dr. Bhim Rao Ambedkar 'Baba Saheb' and others the Vaishyas and Shudras together form Bahujan whereas the untouchable Shudras form Dalit to restore their human rights what the poetry reflects time and again.

This is the central idea of the poetry of Dr. Patel. Besides, the internal colonialism, crisis of migrants' national identities, partiality in state machinery including judiciary also are the burning issues undermining all atrocities in the name of religious nationalism.

While I'm going through the literary deeds of Dr. Patel recreated in Dr. Pradhan's translation, I'm reflected with the scenes what are happening in Nepal. Sometimes I dream as if they are the creation of mine too. Dr. Patel admires Indian constitution and is filled with sorrow and agony on attempted reversal. In Nepal, the constitution is still wanting many progressive elements be included but the status quo political forces are trying their level worst to overturn it, no matter whatever signboard they display in the public.

Now I can exemplify some instances from the poetry: -

But when our silence breaks,
Our speaking

Becomes a weapon in someone else's favor. (We Remain Silent)

Really, this is the echo that is silent and if it breaks, it may bring Tsunami against silencers.

And the poor,
They remain where they were,
And you,
In the pursuit of erasing poverty,
Became the owner of a vast empire. (False Assurance)

The terminology of poverty elimination is very attractive and common effort to bring enrichment in life of the poor, especially in South Asia. But the result is only shameful as the poverty is only nurtured and riches collected by those who offer banners and placards to the poor in the vigil and demonstrations.

The throne of power will tremble,
And the poem of hope,
Will herald the beginning of a new morning. (Poem of Hope)

The lines seem coining with Eugène Pottier's lines from song of the international workers' movement: -

Say, how many on our flesh have feasted?
But if all this vampire flight
Should vanish from the sky some morning,
The sun will still shine on us as bright!

Certainly, hope is the ointment of all sorts of ailments offered by the vampires whose future is only to meet destruction and vanishment. That's why the poems of hope must be composed wherever to fight against exploitation wherever it exists whatever its disguise may be.

To maintain his nobility,
He sometimes dons a red robe,
Sometimes a green robe,
And sometimes a saffron robe. (A Noble Person)

Really the noble person is the one whose motto is only pretension. The nobility is very cunning to disguise as per the need of the contemporary situation. Even in Sanatani's Puranas the Asuras were those who were strict non-drinkers of *sura* 'alcohol' and those were its drinkers were Sura at the time of creation. But the Brahminism reversed the fact later on. Now the Suras are introduced as non-alcoholic whereas the Asuras as the alcoholic ones. It is so because the license of nobility only belongs to the rulers and Brahminism is the mental ruler in Sanatan turned Hinduism.

The lizard character of Brahminist supremacy has recently been observed changing semantics of *tarna* used in Sundarkand of Tulsi's Ramcharitmanas. Gita Press published its meaning 'to punish' but immediately changed it 'to educate' in the later editions though the translator remains the same. It's the outcome of Dalit and Feminist agitations.

The poet depicts COVID-19 pandemic dreadful but concludes with the following lines: -

But the world will end,
Within a few days,
When due to the pandemic,
The common people die,
The farmers die,
And the laborers die. (The World Will End Only Then)

Certainly, the world never stops its motion due to death of any supernatural power or any high-ranking supreme personalities but it immediately ends with death of peasants and laborers.

These lines also coincide with those of Popular Progressivist Poet Harihar Yadav: -

kera kʰʌiɦen ʧʰakurjī, kera nʌ lʌgaī
rʌɦi nʌ kisan jʌɦia dunia bilaī.

'The supreme idol God only eat bananas without plantation. So, the world will vanish on the day peasants are absent from the human beings.'

But the hunger of the stomach,
Is far greater,
Then the cuckoo's call.

Certainly, the rapture of music and imagery of dance are all relevant if the belly is full. There is a very truthful rhetoric in our Bhojpuri society: -

pãc kɔr ɮitʌr tʌb deota-pitʌr

'The deities and heavenly forefathers only come in memory when at least five morsels of meal are devoured first.'

All right, I accept your point.
I'll see what the future holds,
How much do you remember?
And how much do you let go of your own caste? (Don't talk about caste)

This is the reality. The continuity of the caste system doesn't bestow upon Vaishyas or Shudras but upon Brahminism. If the Brahmins go of their caste, no one else shout in its favor.

Justice is, in reality, a business,
And the judge, a businessman,

Who makes high bids,
The sun of justice rises in his courtyard,
Like a rose,
And thorns are left for the helpless,
The weak, the oppressed,
And the neglected, victimized people.

These lines are relevant to a folk-tale:

There were two brothers fighting for equal shares in parental property. The younger one went first to a court and offer a woolen carpet to the judge for justice in his favor. The elder competed him offering a milking cow to the judge. The judge gave a verdict declaring parental rights only in favor of the elder one. When the younger asked the judge what happened, the judge said, "I'm compelled because cow chewed the carpet you offered me."

Thus from the very beginning, the justice is the material on bid, who afford high get it faster.

Buddha, for them,
Is the hero of his own caste,
So, they organize seminars about him,
Some poetry recitals,
Some musical performances,
And hold caste conferences,
To send message that, like Buddha,
They too are peaceful and nonviolent,
Nurturers of humanity, proclaimers of unity,
But everyone knows they have been the greatest oppressors for centuries. (Buddha for Them)

These are lines coping with hypocrisy in my homeland. There is a very popular slogan painted even on the public transport vehicles, 'Buddha was born in Nepal.' Certainly, Buddha was born in Lumbini in *majjimdesʌ* or Madhesh now part of Nepal. But still the Buddha's motherland is Nepal but the identity of the descendants still feel scornful hatred in the country.

But they don't reveal how Biharis
Toiled hard in their agriculture and factories,
Earning wealth and fame in their language. (Disgusting Game)

In this poem, the poet's craftmanship portray a very toiling-moiling image of Biharis who only know how to make a barren piece of land fertile throughout India, driven back with torture from everywhere. The ruling behavior is almost identical with Madheshis all over Nepal. Madheshis are the one who even built Nepal Valley in the primitive history. Madhesh is the

only granary of Nepal. But non-Madheshi lords then and now also are elected from Madhesh as representatives whereas none of Madheshis have been even nominated candidate from any political party in hills or mountains in Nepal. Madheshis have not even cured wounds of Rhitik Roshan riot. The anti-Madheshi state sponsored discrimination is continuing till date in Nepal.

Concluding my review of the "Silent Echoes" I only have to write a few things. The poet looks successful echoing all sorts of suppression against the peasants and laborers still under continuity of religion-based nationalism. It's quite clear that patriotism and nationalism can't go together in any colorful pluri-national country. So, patriotism should be favored and nationalism be fallen down. Likewise, the atrocities by Lamas in the Buddhis monasteries should also be unveiled. It is so because Buddha who stood against Vedas, Brahmins and God has ultimately been worshipped as the nineth incarnation of God Vishnu. It is itself a matter of shame for a Buddhist. The Marxists also must think of strategic actions how to wage war against casteism, especially in South Asian context. I hope the poet will shed light in future.

The translation doesn't leave any hitch anywhere. The translated version also flows like a stream. But Dr. Pradhan hasn't superseded the poet's thought. Congratulations to both the litterateurs!

Kachorwa, Simraungadh Municipality-8, Bara
Madhesh State, Nepal
November 7, 2024.

Exploring the Fairs and Festivals of Western Odisha: A Study of Cultural Heritage and Community Dynamics

Dibya Ranjan Tripathy
PhD Research Scholar
Dr. Santosh Kumar Mallik
Assistant Professor, School of History,
Gangadhar Meher University, Sambalpur, Odisha

Abstract

In this study, the focus is put on the fairs and festivals of Western Odisha with particular reference to the cultural significance of these fairs, economic contribution and the community dynamics associated with them. Based on thematic analysis of crucial festivals like Nuakhai, Raja,Danda Yatra, Dhanu Yatra and Khambeswari Yatra, the research has established that these events are fundamental to the people nurturing their culture. For example, the harvest traditions and nature-revering characteristics of Nuakhai, the agricultural festival devoted to the feminine and fertility values of society, are reflected in the Raja festival. Khambeswari Yatra, an active religious festival, highlights local crafts and promotes tourism, thereby acting as a booster in the local economy. Economic benefits are apparent in the temporary markets created due to these festivals' consumption and the employment of the artisans and traders. The festivals also help the communities unite since these occasions provide chances to make peace and bond as a people. Nonetheless, one can argue that these cultural practices' originality is undermined by various global influences, including culture/modernity and commercialisation. In general, this study calls for intervention to respond to the current changes without losing the cultural essence of the concerned festivals to reap the economic benefits of the festivals. All in all, the findings underscore fairs and festivals as important cultural events that shape Western Odisha's culture and economy.

Keywords: Fairs and Festivals, Cultural Heritage, Economic Impact, Khambeswari Yatra, Nuakhai, Raja, Cultural Preservation, Modernization.

Introduction

The fairs and festivals in the Western region of Odisha are essential components of the social life of the people of the area, as well as their tangible and intangible culture. These occasions embody the various practices of the different ethnic communities, interspersed with religious, agricultural and sociocultural functions. Other festivals, such as Raja and Nuakhai, have emerged from the region's agrarian way of life and strengthen the bonds among the people by celebrating the seasons of agriculture. The Khambeswari Yatra in Bolangir and Boudh capitalizes on this by growing as an essential religious congregation that brings devotees together who then use the mela space to sell goods and farm produce for economic exchange among them. Moreover, these celebrations become essential for cultural identity as they have a network that propagates traditions and traditional customs to future generations. Western Odisha is going through a process of modernization and globalization. Still, the folk fairs & festivals are not inconsistent with it, at least till now, which indicates that they have successfully played their role in sustaining community ties besides safeguarding local heritage.

India is replete with such fairs and festivals, an essential component of its cultural landscape: vibrant expressions of the local traditions and community identities. For Western Odisha, these events are not just opportunities for celebrations but have an essence of Odian heritage with social interactions and community joineries. Many fairs and festivals are organized in this region, inhabited by various ethnic groups, each with its own customs.

A blend of religious, agricultural and socio-cultural practices is omnipresent in these celebrations, often showcasing the organic connection between culture with community dynamics. For example, the annual Khambeswari Yatra in the Bolangir district draws followers. It creates economic transactions among local artisans, vendors, and tourists, thus positively reinforcing the regional economy. Furthermore, the ritual observance of festivals such as Raja and Nuakhai relates to the cycles associated with agrarian economy, which are often ingrained in cultural practices, implying that agriculture sustains a community (regarding food security) and its tradition. Viewed in the context of these festivals, we can track how cultural practices change and are reinvented through processes of modernization and globalization.

This research focuses on understanding the various aspects of fairs and festivals in Western Odisha, looking at their cultural importance and the community interactions they encourage. By studying both old and new traditions, this work will help us better understand how these events help keep culture alive and bring people together in the area.

Here are some essential cultural fairs and festivals in Western Odisha:

1. **Nuakhai:** This farming festival is held to celebrate the new rice harvest. It includes rituals, traditional songs, and dances. Families gather to cook and offer the first rice to the gods, showing thanks for the harvest.
2. **Khambeswari Yatra:** This festival in Bolangir honours the goddess Khambeswari. Many people come to worship and enjoy cultural events, traditional shows, and stalls selling local crafts and food.
3. **Raja Parba:** This unique festival honours women and the farming cycle. It marks the start of the rainy season and the fertility of the land. Traditional practices, games, and folk dances are part of the festivities.
4. **Maha Shivaratri:** Maha Shivaratri is celebrated throughout India but is especially important in Western Odisha. People have big celebrations at different temples. The festival has all-night prayers, worship, and cultural shows in honour of Lord Shiva.
5. **Dussehra (Vijaya Dashami):** Dussehra is a vivacious festival showing good triumph over evil. In Western Odisha, people follow traditional customs, have parades, and enjoy cultural performances, especially those related to local gods and customs.

These events not only honour the rich culture of Western Odisha but also help bring the community together and support local businesses. They show the many different traditions of the region.

Literature Reveiews

The study of fairs and festivals in Western Odisha has become more popular among scholars, highlighting their importance as cultural displays and their part in bringing communities together. According to Panda, these festivals help present cultural diversities and offer some of the few avenues through which social groupings can celebrate their changing cultural paradigms in a complex socio-economic reality. His breakdown of the Nuakhai festival underlies the cultural pragmatic surface that allows its participants to communicate matters about social conformity.

Choudhury focuses on the economic aspects of these festivals, pointing out that they bring tourism money and support local wastrel craft industries. For instance, the Khambeswari Yatra celebrated in Bolangir has become one of the chiefs by which the locals make income by producing and selling various goods sold at the fair. . This economic perspective is complemented

by the work of Behera , who noted that implementing conventional practices with contemporary marketing approaches has enabled the local communities to derive financial benefits alongside protecting their cultural values.

Furthermore, Mohapatra et al. review the effects of globalization on these festivities, pointing out that outside pressures can change some techniques but are also rich with potential for renewal and creativity. He underlines the fundamental aspects that call for balancing between the traditions and the modern impacts. The tension between tradition and the contemporaneity of festivals is essential when considering how or why festivals in Western Odisha remain relevant and continue to change.

From the literature, it can be deduced that Western Odisha fairs and festivals have social-cultural, economic and even resilience dimensions. The cultural phenomena described require further investigations to reveal the additional aspects of their dynamics and evolution in contemporary society.

Research Methodology

This research is populated with a methodical exploration of the cultures associated with and communities engaged with the fairs and festivals of the Western Odisha region. This proposed work intends to employ a preponderance of secondary research, literature review, and case study approach to develop an appreciation of these events' socio-cultural, economic and community aspects.

1. Research Design

This paper uses a qualitative research approach to examine the complexities of fairs and festivals in Western Odisha. The strategy involves reviewing literature, historical evidence and documented and earlier performed festal scenarios to establish the culture and economics of such celebrations.

2. Secondary Data Analysis

The work uses only secondary sources of information, such as journals, government and historical documents and other scholarly studies. These sources provide a good treasure of details of the cultural, traditions, economic and social aspects related to fairs and festivals in Western Odisha.

a. Literature Review

A comprehensive literature review will be conducted to gather existing knowledge and scholarly perspectives on the subject. The review will include academic journals, books, conference papers, and online databases. Key themes such as cultural heritage, community dynamics, and economic impact will be identified and analysed .

b. Historical Records and Archives

To explain the general shift and historical importance of the fairs and festivals in western odisha, historical documents and other archival documents will be analysed. These records will examine how such events have evolved over the years and their function in maintaining culture.

3. Case Study Approach

The above research will use the case study method to give a general analysis of such destinies as Nuakhai, Raja and Khambeswari Mela. Based on existing literature and prior ethnographic findings, the film element in each case study will focus on members' cultural practices, religious rites, and other communal activities regarding the festival.

a. Nuakhai

About Nuakhai: The area of study will be the agrarian side of Nuakhai. Hence will attempt to elaborate on the Nuakhai rituals, their socio-cultural importance, and their impact on the bonding of the community.

b. Raja

The case of the Raja festival will be analysed based on the cultural and societal perspective focusing on its aspect related to womanhood and fertility and its role in altering the relationship structure of the society.

c. Khambeswari Yatra

The analysis of the Khambeswari Yatra will focus on religious importance orientation in developing the economy through local transportation and strengthening social identity

4. Data Analysis

a. Thematic Analysis

The systematic form of analysing texts will be the thematic analysis applied to materials collected in the literature review and case studies. The collected data will be analysed and placed under specific categories about festivals' culture, community, and socio-economic functions. To do that, the analysis will gather evidence based on the relationship between various sources of information and make connections if patterns occur.

b. Comparative Analysis

To reach a more profound understanding of the case studies, a comparative analysis will be conducted to reveal similarities and differences between the given cases. This approach will aid in getting a conceptual framework for comparing and contrasting similarities and differences of the different festivals in Western Odisha and an overall perspective towards their socio-culturally and economically.

5. Ethical Considerations

Concerning the research ethics, the research will accord the correct citation and accomplishment of all secondary sources. Cultural sensitivity and a proper representation of historical and cultural settings will always be observed in this study.

6. Limitations

Despite its ambit to generate a broad perspective about the fairs and festivals of Western Odisha some limitations may occur. The use of secondary sources of data collection may limit further penetration of current practice and participants' understanding. Further, study results may be affected by the participants' quality and availability of history and literature.

Results and Discussion

Despite its ambit to generate a broad perspective about the fairs and festivals of Western Odisha some limitations may occur. The use of secondary sources of data collection may limit

further penetration of current practice and participants' understanding. Further, study results may be affected by the participants' quality and availability of history and literature.

1. Cultural Significance

The festivals of Western Odisha include Nuakhai, Raja and Khambeswari Mela, which are trendy and vibrant parts of the region. Through such events, people maintain their ancestors' customs, practices, and stories and feel they are with their tribe. The literature also points to such rites as Nuakhai, which represent calendar festivals and are considered forms that sustain traditional modes of cultivation. Likewise, Raja was associated with womanhood and fertility, showing respect to society for female power and agricultural productivity.

Table 1: Key Cultural Aspects of Selected Festivals

Festival	Cultural Significance	Main Rituals/Practices
Nuakhai	Agrarian festival celebrating the harvest cycle	Offering of the first produce to deities; community feasts
Raja	Celebration of womanhood and fertility	Games, swings, and traditional songs celebrating femininity
Festival	Cultural Significance	Main Rituals/Practices
Khambeswari Mela	Religious gathering honoring Goddess Khambeswari	Devotional offerings, local handicrafts, religious procession

It also shows that cultural practices are transmitted during the festivals, and young people are exposed to and participate in artistic practices. This cultural sustainability is essential so that there is a clear cultural distinction between the Provinces so as not to fully absorb the advances of modernity and globalisation.

2. Economic Impact

The festivals are important economically to the people residing around the celebration. They set up temporary marketplaces to sell locally made craft, manufactured foods, and religious items that help small-scale businesses and artisans. For example, the Khambeswari Mela draws in thousands of people, improving the supply of handmade jewellery, metal crafts, and utensils. When comparing the three festivals, one can establish that Nuakhai is more of a cultural cum family festival. Hence, while giving an economic comparison, one can state that Raja and Khambeswari Mela are festivals that impact the economy with more vigour since they can attract tourists and encourage business.

Table 2: Comparative Economic Contributions of Festivals

Festival	Approximate Visitor Count	Estimated Economic Contribution (INR)	Economic Focus
Nuakhai	20,000	5 million	Agriculture-based, limited trade
Festival	Approximate Visitor Count	Estimated Economic Contribution (INR)	Economic Focus
			limited trade
Raja	50,000	15 million	Tourism, crafts, local trade
Khambeswari Mela	75,000	25 million	Handicrafts, religious items, food

From the above table, it can be deduced that Khambeswari Mela is the most effective festival in contributing to the locality's economy because of its attraction to many people and varieties of hawker products. This shows that festivals encompass cultural functions and economic activities supporting people's existence in that particular region.

3. Community Dynamics

Fairs and festivals are directly linked with social solidarity and identification with the group culture. Thus, the solidarity of persons on different levels of society where different sections are engaged in the activities of the events deepens social cohesion. As Singh mentioned, through the celebration of Raja and Nuakhai, people show unity and work together in group affairs through feasts, sports or religious ceremonies. It is further supported by the social integration that festivals play in solving local conflicts and bringing people together into one team. For example, in Nuakhai, people usually reunite with their families to sort out blood-related issues, reconcile, etc. This helps bring about unity in the society.

4. Challenges and Adaptations

Nevertheless, the perspective of the festivals of Western Odisha has some problems associated with modernisation processes, migration, and commercialisation. The impact of the urbanisation shift has occurred in some ways with the young generation with a lesser interest in performing rituals, as pointed out by Behera. Further, the analysis of the type of commodification by using Khambeswari Mela as a case study has also shown that commercialisation harmfully

affects cultural values as commercial interests gradually replace or mask religious and cultural ones. But such festivals are also transforming the modern world. In recent years, local leadership has been introducing modern practices like social media in promoting events and engaging the relevant tourism departments to enhance mobilisation. The said adaptations ensure that the festival sustains cultural relevance and, at the same time, maintains artistic integrity. There is evidence to suggest that the fairs and festivals of Western Odisha are colourful sociocultural events which provide socially cohesive and economically productive functions of cultural preservation. However, they experience pressures from modernity that require strategies to keep the phenomenon culturally existent. Future studies might look into how globalisation shapes the continuing growth of these festivals and how issues of culture and commerce are managed.

Thematic Analysis

The thematic analysis of the fairs and festivals of Western Odisha reveals three key themes: Cultural Values Sociology, Economic Effect and Population Changes. All these themes help to understand the complex place and significance of these occasions for the preservation of cultural heritage and traditions, strengthening of society, and supporting the economic sphere. The Culturally Importance is the idea of the Nuakhai, Raja, and Khambeswari Yatra festival being essential to the region and its traditions and ceremonies. For example, Nuakhai is the ritual of respect towards nature and is performed for defining agricultural calendar and thus serves the purpose of conserving the farm system. Raja glorifies the honour of women and maternity, the relation between the women's energy and the fruitful soil, and Khambeswari Mela enhances people's faith through ceremonies and fairs. This second theme is labelled Economic Impact, whereby the authors demonstrate how these festivals are instrumental in the growth of the local economy. Khambeswari Mela, like other religious annual fairs, also boosts the tourism industry. It improves that region's economy by selling handicrafts, food, and spiritual items, impacting small-scale artisans and traders. Even though Nuakhai has more cultural undertones of celebration, it also has the social economic ripple effect on local markets and agricultural produce. This theme focuses on the celebrations as cultural events and economic boosters to the area. The last theme is Community Dynamics and is about the positive impact of these festivals as a function of social integration and unified social identity. These events are an inclusive gathering that fosters individuals in a society and strengthens unity and togetherness. Nuakhai and most other such festivals act as clashes which help people settle their problems and social relations with family or community thereby helping maintain social order. Therefore, singling out these festivals is crucial not only as guardian of culture, but as an element in the social cohesion of the communities of Western Odisha.

Conclusion

The importance of fairs and festivals in the western Odisha came to focus in the study; this appreciated in keeping cultural history, social cohesion, and triggering economic development. This journey explores the regional nuances of the festivals such as Nuakhai, Raja, and Khambeswari Mela which are rooted in agriculture, feminine and religious aspects respectively. (decimal 4) These occasions greatly enhance the flow of tourists and business, and create employment slots for craftsmen and merchants.

Culturally, they foster unity and encourage the unity of community assembling them and are a means for conflict resolution and identification. However, it is for this very reason that modernization and commercialization contradict the genuine image of both kinds. For sustainability, there must be a balance between the cultural and economic values of their nations. Therefore, these fairs and festivals of western Odisha are indispensable to cultural prosperity and subsequent economical advancement. There should be long-term policies that would help them maintain their cultural value, but at the same time, advance the economic value which they own.

References

1. Patnaik, A. (2023). Cultural Practices in Western Odisha: A Historical Overview.
2. Nayak, D. S. (2020). Folk Traditions of Odisha: A Comprehensive Study
3. Mohanty, D. (2021). Cultural Heritage of Odisha: A Comprehensive Study
4. Sahu, K. (2022). Musical Instruments of Odisha: A Historical Overview
5. Panda, S. (2022). Cultural Identity and Community Cohesion in Odisha's Festivals. Indian Journal of Sociology, 30(4), 90-105
6. Choudhury, S. (2023). Fairs and Festivals: Economic Drivers in Western Odisha. Odisha Economic Review, 29(3), 78-92
7. Singh, A. (2023). The Role of Fairs in Economic Sustainability: Insights from Odisha. Journal of South Asian Studies, 18(3), 134-148
8. Behera, P. (2023). Traditional Practices and Economic Development: The Case of Fairs in Odisha. Journal of Rural Development, 40(2), 112-126
9. Mohapatra, R. (2024). The Interplay of Tradition and Modernity in Odisha's Festivals. Journal of Ethnographic Studies, 15(1), 21-36
10. Jena, T. (2024). Globalization and Cultural Dynamics: The Evolving Nature of Festivals in Odisha. International Journal of Cultural Studies, 12(1), 55-70
11. Das, R. (2024). Modernization and Cultural Identity: The Changing Landscape of Fairs and Festivals in Odisha. Journal of Cultural Studies, 18(1), 45-62

"Adolescent Vices and Modern Youth Subcultures: A Study of Tauseef Bareilvi's E-Cigarette"

Dr. Shajar Uddin
Assistant Professor,
Department of English,
Shri Varshney College, Aligarh

Abstract:

This research paper critically examines Tauseef Bareilvi's short story E-cigarette from his Sahitya Akademi Award-winning collection Zahan-Zaad. Through a detailed analysis of its narrative structure, thematic concerns, and characterization, the study explores modern adolescent subcultures and their moral and social implications. The story portrays youth rebellion, peer pressure, generational conflicts, and the detrimental effects of unbridled freedom in a technology-driven, consumerist society. Using Erik Erikson's theory of identity and adolescence and sociological perspectives on youth culture, the paper investigates the factors influencing teenage rebellion and the role of consumerism and technology. A comparative analysis with works such as The Catcher in the Rye, The Perks of Being a Wallflower, and Lord of the Flies, Fight Club, White Teeth, Never Let Me Go, highlights universal and culturally specific challenges of youth disillusionment and rebellion. This research paper also examines the contemporary youth subculture and its association with smoking trends, particularly focusing on hookah and e-cigarette usage as represented in two fictional narratives: Hubble-Bubble (A Hookah Party) by Dr. Shajar Uddin and E-Cigarette by Tauseef Bareilvi. The purpose of this research is to explore the thematic and cultural implications of modern adolescent subcultures as depicted in the short story E-cigarette and to compare its portrayal with other prominent works of English literature. The study underscores the relevance of literature as a critique of evolving moral landscapes and a tool to understand the complexities of modern family dynamics.

Keywords: adolescent subcultures, youth rebellion, generational conflict, consumerism, identity crisis, E-Cigarette, peer influence, modernity, Erik Erikson, Tauseef Bareilvi, The Catcher in the Rye, Lord of the Flies, Hubble-Bubble.

Introduction

The short story E-Cigarette by Tauseef Bareilvi is a poignant exploration of the complexities of adolescence in a rapidly evolving socio-cultural landscape. It delves into the interplay of parental dilemmas, moral degradation, and the pervasive influence of peer culture and modern technology. As part of Bareilvi's acclaimed collection Zahan-Zaad, the story captures the essence of contemporary societal issues, shedding light on the struggles faced by both parents and teenagers in reconciling traditional values with the allure of modernity.

Set against the backdrop of a consumer-driven, globalized society, E-Cigarette examine the tension between parental expectations and youthful recklessness. The narrative traces the journey of Ashhar, a once-promising teenager, as he navigates the pressures of peer influence, the temptations of new-age technology, and the complexities of identity formation. His rebellion and indulgence in activities like smoking e-cigarettes, extravagant parties, and adopting modern subcultures illustrate the challenges of parenting in an era where boundaries are blurred by technology and consumerism.

This paper seeks to explore the thematic and cultural implications of modern adolescent subcultures as depicted in E-Cigarette and situates the story within the broader context of English literature. By comparing it with iconic works like The Catcher in the Rye by J.D. Salinger, The Perks of Being a Wallflower by Stephen Chbosky, and Lord of the Flies by William Golding, the research aims to highlight universal concerns regarding youth rebellion, identity crises, and generational conflict.

Through a multidisciplinary approach that incorporates Erik Erikson's psychological theories on adolescence and sociological perspectives on consumerism, this study examines the story's narrative techniques, character development, and cultural commentary. Ultimately, this research aims to provide deeper insights into the struggles of modern families and the ways literature reflects and critiques the evolving dynamics of youth culture. The aim of this research is to analyse the literary representation of smoking trends in youth culture and their broader social, moral, and psychological consequences. Utilizing qualitative research methodology, the paper employs narrative analysis to dissect the themes, character motivations, and societal critiques embedded in the two fictional narratives: Hubble-Bubble (A Hookah Party) by Dr. Shajar Uddin and E-Cigarette by Tauseef Bareilvi. By juxtaposing these narratives, the study highlights the dangers of modern trends like hookah hubs and e-cigarettes, underscoring their role in fostering addiction, moral dilemmas, and familial conflict.

Key findings reveal that both stories serve as cautionary tales, illustrating the vulnerabilities of adolescents in the face of cultural commodification and modernity. The analysis also underscores the importance of parental guidance, education, and societal accountability in mitigating these issues.

This study aims to Investigate the factors influencing youth rebellion, peer pressure, and identity crises. It analyses the role of modern consumerism, technology, and social trends in shaping adolescent behaviour. It examines how literature reflects and critiques the evolving moral and social landscape of youth culture.

It establishes a comparative framework for understanding E-Cigarette in relation to other works like The Catcher in the Rye, The Perks of Being a Wallflower, and Lord of the Flies and Hubble-Bubble (A Hookah Party).

Analysis of the Short Story E-Cigarette

The study intends to provide insights into the universal and culturally specific elements of youth disillusionment, rebellion, and moral challenges, emphasizing how contemporary literature continues to engage with these themes.

Kamran Ali anxiously paces in the drawing room, waiting for his teenage son, Ashhar, who has not returned home by midnight. His wife, Sakeena Begum, prays fervently in a corner for their son's safe return. Both parents repeatedly try to call Ashhar, but he remains unreachable. Their anxiety peaks as Kamran regrets the freedom, they have allowed him. Ashhar eventually returns at dawn, sneaking into his room unnoticed. Despite their burning questions, his parents decide not to confront him immediately.

Later that afternoon, Sakeena tries to reprimand Ashhar for staying out all night. However, Ashhar brushes off her concern, complaining of a headache. His dismissive attitude leaves her speechless. Kamran and Sakeena are exasperated with Ashhar's lack of focus on studies and his growing disinterest in their advice.

Ashhar's academic and athletic excellence in earlier years had led his parents to grant him significant freedom. They provided him with a smartphone and a laptop, trusting him to use these tools for his studies. However, Ashhar begins exploiting this freedom, becoming a rebellious and uncontrollable youth, known in the neighborhood for his unruly behavior. Despite his parents' efforts to guide him, he prioritizes parties and social activities over his responsibilities.

Ashhar and his friends indulge in extravagant parties, where they experiment with smoking, drinking, and new trends like e-cigarettes. At a farmhouse party, Ashhar introduces e-cigarettes to his friends, boasting about the novelty and flavors. This becomes a defining moment in his social circle, cementing his popularity among peers. They embrace e-cigarettes as a status symbol and incorporate them into their routine.

The parties escalate in intensity, marked by excessive drinking, intimate encounters, and reckless behavior. During one party, Sonia confesses her love to Ashhar, but he dismisses her feelings with laughter, showcasing his nonchalant attitude. These gatherings further alienate Ashhar from his family and responsibilities.

E-cigarettes have become a widespread trend among the students, with Ashhar and his group leading the way. They begin using e-cigarettes openly at school and home, flaunting them as part of their identity. Ashhar also distributes nicotine gum to his friends, continually seeking new ways to maintain his social dominance.

One of Ashhar's friends, Leeza, announces a "satanic party" by the lakeside. The group performs bizarre rituals, including tasting each other's blood as part of a symbolic satanic worship ceremony. The night is filled with dancing, drinking, and other activities that reflect their growing descent into decadence and rebellion.

Kamran becomes increasingly alarmed by Ashhar's declining performance in academics and his defiance at home. Confrontations between father and son grow more intense. Kamran catches Ashhar smoking an e-cigarette and lashes out, accusing him of wasting his life. Despite the reprimand, Ashhar remains unrepentant, claiming that Kamran, as an "old-fashioned man," cannot understand the passions of his generation.

Hoping to mend their relationship and motivate Ashhar, Kamran and Sakeena plan a surprise party for his seventeenth birthday. However, Ashhar does not return home that day, leaving his parents anxious. Their search for him leads them to his school principal, who takes them to the lakeside ruins where the birthday party is happening.

At the party, Ashhar and his friends are found in a shocking state—intoxicated, semi-clothed, and engaging in inappropriate behavior. The parents are horrified by the scene, witnessing their children's debauchery and disregard for societal norms. Sonia leads the group in celebrating Ashhar's birthday, while the friends revel in their chaotic antics, oblivious to their parents' presence.

The confrontation between the parents and their children reveals the friends' collective defiance and self-identification with modern subcultures. They proudly declare themselves as

heterosexual, polysexual, LGBTQ+, and members of the "E-cigarette generation," emphasizing their rebellion against traditional values. Ashhar's confidence in leading this group underscores his complete estrangement from his family's expectations.

The story concludes with a poignant depiction of generational conflict, parental despair, and the devastating consequences of unchecked rebellion and indulgence. The narrative captures the challenges faced by modern families in grappling with the influences of contemporary youth culture.

Narrative Structure and Style: The story unfolds in a linear structure, beginning with parental anxiety and leading to the climactic confrontation between generations at the ruins. The episodic progression mirrors the incremental deterioration of the father-son relationship. The narrative style is descriptive and emotionally charged, with a focus on visual and sensory imagery—such as the scenes of debauchery and despair—which evoke a powerful response in readers.

Juxtaposition of Settings: The contrasting locations, such as the anxious domestic space and the chaotic, hedonistic party settings, underscore the tension between familial values and external influences.

Symbolism of the E-Cigarette: The E-Cigarette symbolizes rebellion, modernity, and the seductive allure of transgression. It serves as both a physical object and a metaphor for a generation disconnected from traditional values.

Generational Conflict: The story examines the widening gulf between parents and their children, highlighting differences in values, communication barriers, and mutual incomprehension. Kamran Ali represents an older generation struggling to adapt to the permissiveness and consumerism that shape his son's world.

Youth and Hedonism: The portrayal of Ashhar and his friends reflects a generation caught in the throes of materialism and escapism. Parties, e-cigarettes, and casual relationships embody their pursuit of instant gratification.

Parental Guilt and Accountability: Kamran Ali and Sakeena Begum regret their permissiveness but are unsure of how to regain control. Their helplessness reflects a broader societal struggle with parenting in an age of technology and moral relativism.

Identity and Belonging: The references to sexual identities (pansexual, monosexual, etc.) and the claim of being the "E-cigarette Generation" suggest a quest for identity and belonging in an increasingly fragmented society.

Impact of Modernity: The story critiques the darker aspects of modern culture, such as peer pressure, consumerism, and the misuse of technology, which alienate individuals from their families and traditional values.

Characterization of the Story

Ashhar embodies the contradictions of modern youth: intelligent and talented yet self-destructive. His rebellion stems from a combination of peer influence, lack of boundaries, and a desire to assert individuality. Kamran Ali represents the archetypal father figure, torn between authoritarianism and helplessness. His physical and emotional breakdown mirrors the erosion of parental authority in the modern age. Sakeena Begum is the quintessential nurturing mother, caught between love for her son and loyalty to her husband. Her quiet prayers and passive resistance highlight the limitations of traditional maternal roles in contemporary conflicts. Sonia and friends symbolize societal forces that lure youth away from familial bonds. Their diverse identities and confident assertions challenge traditional norms, emphasizing individualism over collectivism.

Literary Devices and Techniques

Imagery: Vivid descriptions of the party scenes, such as the satanic rituals and the chaotic gatherings, create a stark contrast with the sombre mood of the family home.

Dialogue: The conversational exchanges between characters reflect generational gaps, cultural shifts, and underlying tensions.

Symbolism: The ruins represent moral decay and the disintegration of values, while the idol of Satan signifies the allure of forbidden pleasures.

Irony: The parents' efforts to provide for Ashhar's happiness ironically contribute to his downfall.

Critique of Society and modernity: The story critiques the erosion of traditional values in a world dominated by consumerism and individualism. It portrays how modern technologies and cultural shifts redefine youth identity, often at the cost of familial and societal cohesion. The depiction of parties, gender fluidity, and drug use reflects real-world concerns about the influences shaping today's adolescents.

Comparing E-Cigarette with Contemporary Stories

The short story E-Cigarette addresses themes of adolescent rebellion, the erosion of traditional family structures, and the moral challenges of modernity. Similar themes are explored in contemporary stories such as We Need to Talk About Kevin by Lionel Shriver, The Perks of Being a Wallflower by Stephen Chbosky, and The Virgin Suicides by Jeffrey Eugenides, Fight Club, White Teeth, Never Let Me Go. By comparing these narratives, we can better understand

the shared concerns about youth, identity, and societal influences.

Themes of Adolescent Rebellion and Identity

E-Cigarette present a stark portrayal of teenage rebellion. Ashhar and his friends reject societal norms, embracing a hedonistic lifestyle characterized by e-cigarettes, drugs, and parties. Their behavior is a quest for identity and belonging, often at odds with their parents' expectations. The introduction of modern technologies, such as e-cigarettes, serves as a symbol of their detachment from traditional values.

The Perks of Being a Wallflower by Stephen Chbosky also focuses on teenage identity and rebellion, but with a more introspective lens. The protagonist, Charlie, struggles to fit in while dealing with trauma and mental health issues. Unlike E-Cigarette, which highlights external expressions of rebellion, The Perks of Being a Wallflower delves into the inner turmoil of adolescence. Both narratives, however, emphasize the role of peer groups in shaping youth identity.

While E-Cigarette critiques the visible consequences of rebellion, The Perks of Being a Wallflower explores the psychological underpinnings. Both stories underscore the tension between individuality and conformity in adolescence.

Generational Conflict

In E-Cigarette the conflict between Kamran Ali and Ashhar epitomizes generational struggles. Kamran, rooted in traditional values, cannot comprehend his son's modern lifestyle. This clash reflects broader societal changes, where parental authority is undermined by the influences of technology and globalization.

Lionel Shriver's novel We Need to Talk About Kevin presents a more harrowing depiction of generational conflict. The strained relationship between Eva and her son Kevin leads to devastating consequences. Like Kamran, Eva struggles to understand her child's behavior, leading to guilt and self-recrimination. Both stories highlight the helplessness of parents in dealing with rebellious children but differ in tone—E-Cigarette is more socially critical, while Kevin is psychological and tragic.

Both narratives expose the vulnerabilities of parenthood in modern contexts. However, E-Cigarette addresses rebellion as a collective generational issue, while Kevin focuses on an individual parent-child dynamic with darker overtones.

Moral Decay and Hedonism

In E-Cigarette Ashhar's descent into a lifestyle of parties, drugs, and e-cigarettes symbolizes the moral decline of contemporary youth influenced by consumerism and modernity. The satanic rituals and debauched gatherings serve as a metaphor for the erosion of moral values.

Jeffrey Eugenides' novel The Virgin Suicides similarly explores moral decay but through the lens of suburban America. The five Lisbon sisters are constrained by oppressive family rules, leading to tragic consequences. While E-Cigarette portrays excess and freedom as catalysts for moral decay, The Virgin Suicides examines the impact of repression and control.

Both stories depict youth as a vulnerable group susceptible to societal pressures. However, where E-Cigarette critiques overindulgence, The Virgin Suicides critiques the consequences of stifling freedom. Together, they offer two sides of the same coin: the dangers of excess and the perils of restriction.

Role of Peer Influence

In E-Cigarette peer influence is central to Ashhar's transformation. The story vividly portrays how friends introduce him to e-cigarettes, parties, and other hedonistic activities. This peer pressure amplifies his detachment from his family and traditional values.

Though written decades earlier, Lord of the Flies by William Golding remains relevant in discussing the destructive power of group dynamics. The boys' descent into savagery parallels the behaviour of Ashhar and his friends, showcasing how peer influence can dismantle individual morality.

Both stories demonstrate the power of peer influence in shaping behavior, but E-Cigarette focuses on a modern, urban context, while Lord of the Flies explores primal instincts in an isolated setting. The narratives share a cautionary tone about the collective behavior of youth.

Critique of cultural shift

E-Cigarette critiques the cultural shifts brought about by globalization and consumerism. The e-cigarette, a symbol of modernity, reflects the allure of quick pleasures over meaningful pursuits. The narrative questions the impact of technology and permissive parenting on youth morality.

Palahniuk's novel Fight Club critiques similar themes of consumerism and moral decay but focuses on disaffected adults rather than teenagers. Both narratives, however, portray their protagonists as products of a society obsessed with materialism and instant gratification.

Both stories serve as cultural critiques, but E-Cigarette focuses on generational conflict and youth, while Fight Club examines the existential crises of adulthood. Together, they provide a comprehensive commentary on societal challenges across age groups.

Comparison with J.D. Salinger's The Catcher in the Rye

Both stories portray disillusioned youth. In Salinger's novel, Holden Caulfield struggles with societal expectations and hypocrisy, while in E-Cigarette, Ashhar exhibits reckless rebellion against familial and social norms. Holden's estrangement from adults' parallels Ashhar's strained relationship with his parents, highlighting a generation gap and lack of effective communication. Holden's rebellion is internalized and rooted in trauma, whereas Ashhar's is outwardly destructive, involving group behaviour and material symbols like the E-Cigarette.

Comparison with Zadie Smith's White Teeth

Like E-Cigarette, White Teeth explores generational and cultural clashes. Ashhar's disobedience mirrors the tensions between parents and children in Smith's novel, particularly how first-generation immigrants struggle with their children's integration into modern Western cultures. While White Teeth deals with multicultural identity, E-Cigarette centers on urban youth rebellion and moral decay, with less emphasis on cultural hybridity.

Comparison with Kazuo Ishiguro's Never Let Me Go

Both stories explore existential dilemmas, though in distinct ways. In E-Cigarette, youth question traditional norms and experiment with new identities, whereas in Ishiguro's novel, clones grapple with mortality and purpose. In both stories, characters are shaped by their group dynamics. Ashhar's identity is influenced by his peers, just as Kathy, Tommy, and Ruth in Never Let Me Go are bound by their shared experiences. While Never Let Me Go focuses on ethical dilemmas surrounding humanity, E-Cigarette critiques contemporary youth consumerism and cultural decadence.

Comparison with Dr. Shajar Uddin's Hubble-Bubble (A Hookah Party)

Both Hubble-Bubble (A Hookah Party) by Dr. Shajar Uddin and E-cigarette by Tauseef Bareilvi address the multifaceted challenges of adolescence in contemporary society. These stories critique the evolving trends among youth, where modern subcultures, peer pressure, and a desire for experimentation often lead to moral and social dilemmas. Through their narratives, the authors shed light on the consequences of unchecked indulgence and the resultant erosion of traditional values.

In Hubble-Bubble (A Hookah Party), Zeba and her friends are lured into a world of hookah parties and indulgence. Their initial fascination with the new college culture leads them to experiment with activities that jeopardize their moral and physical safety. Similarly, in E-cigarette, Ashhar succumbs to peer influence, which drives him toward smoking e-cigarettes and engaging in reckless behaviours like extravagant parties. Both stories highlight how peer pressure and a yearning to belong to a glamorous youth culture steer adolescents toward self-destructive paths. Both stories explore the allure of modern trends—hookah hubs in Hubble-Bubble and e-cigarettes in E-cigarette—as symbols of rebellion and sophistication among teenagers. These trends become gateways for more dangerous activities. In Hubble-Bubble, the hookah hubs escalate into drug distribution centres, while in E-cigarette, the act of smoking symbolizes moral decline and a broader disconnection from family values.The familial conflict is another central theme. In Hubble-Bubble, Zeba and Sheeba's lies to their parents underline the growing disconnect between adolescents and their families. The devastating aftermath of the hookah parties, including addiction and societal disgrace, reflects the wider implications of youth indulgence on families and communities. Similarly, E-cigarette portrays Ashhar's strained relationship with his father, underscoring the generational gap and the inability of parents to bridge it effectively. Both stories serve as cultural critiques of a society that glorifies modernity while neglecting its adverse consequences.

Conclusion

The short story E-Cigarette is a poignant exploration of contemporary social issues. Through its compelling narrative and rich symbolism, it highlights the struggles of parenting, the rebellion of youth, and the challenges posed by modernity. The story serves as a cautionary tale, urging readers to reflect on the consequences of unchecked freedom and the importance of maintaining moral and emotional connections in a rapidly changing world.

The short story E-Cigarette shares thematic similarities with many contemporary narratives, exploring generational conflict, peer pressure, identity, and moral decay. By situating these issues within a modern context of consumerism and technology, it offers a unique critique of youth culture. When compared with stories like The Perks of Being a Wallflower, We Need to Talk About Kevin, and The Virgin Suicides, E-Cigarette emerges as a poignant addition to the literary exploration of modern adolescence. These stories collectively underscore the need for a balanced approach to parenting, the dangers of societal excess, and the enduring challenges of growing up in a rapidly changing world.

The short story E-Cigarette shares themes, characters, and motifs with several works in English literature, particularly those focusing on youth culture, rebellion, and moral dilemmas. Hubble-Bubble (A Hookah Party) and E-cigarette differ in their narrative tones and specific contexts, both stories converge on the critical issues facing today's youth. They explore the intersection of cultural shifts, technological advances, and adolescent identity crises. Together, they emphasize the need for stronger familial bonds, societal vigilance, and moral education to prevent the misdirection of youthful energy. These stories not only highlight individual struggles but also critique the societal frameworks that enable such destructive trends.

Works Cited:

1. *Tausīf Barelvī. Zahan Zād: Afsāne.* 'Arshiyah Pablīkeshanz, 2020.
2. Chbosky, Stephen. The Perks of Being a Wallflower. Pocket Books, 1999.
3. Eugenides, Jeffrey. The Virgin Suicides. Farrar, Straus and Giroux, 1993.
4. Golding, William. Lord of the Flies. Faber and Faber, 1954.
5. Palahniuk, Chuck. Fight Club. W.W. Norton & Company, 1996.
6. Shriver, Lionel. We Need to Talk About Kevin. Counterpoint Press, 2003.
7. Ishiguro, Kazuo. Never Let Me Go.Faber and Faber, 2010.
8. Salinger, J.D. The Catcher in the Rye. Little, Brown and Company, 1951.
9. Smith, Zadie. White Teeth. Hamish Hamilton, 2000.
10. Erikson, Erik H. Identity and the Life Cycle. International Universities Press, 1959.
11. Bezbaruah, Ripunjoy, and Meenal R. Kale. "A Study of Generational Conflicts in Stories and Novels of Jhumpa Lahiri." Journal of Critical Reviews, vol. 7, no. 1, 2020, pp. 2444–2450. www.jcreview.com/admin/Uploads/Files/65797a70529ac0.49461515.pdf. Accessed 30 Nov. 2024.
12. Smith, Zadie. "The Fall of My Teen-Age Self." The New Yorker, 20 Nov. 2023, www.newyorker.com/magazine/2023/11/27/the-fall-of-my-teen-age-self. Accessed 30 Nov. 2024.
13. Zhang, Zhiyu. "Exploring the Impact of Contemporary Consumerism on Young People." Lecture Notes in Education Psychology and Public Media, vol. 42, no. 1, Mar. 2024, pp. 118–124. ResearchGate, https://www.researchgate.net/publication/378963707_Exploring_the_Impact_of_Contemporary_Consumerism_on_Young_People. DOI:

10.54254/2753-7048/42/20240813. Accessed 30 Nov. 2024.

14. "Intergenerational Conflict." Fiveable, https://fiveable.me/key-terms/introduction-contemporary-literature/intergenerational-conflict. Accessed 30 Nov. 2024.
15. Alimi, Wasim Ahmad. "Zehan-Zaad: A Bold Attempt to Deviate from the Traditional Mode of Urdu Storytelling." Jahan-e-Adab o Fiction, 2023. Academia.edu, https://www.academia.edu/99444789/Zehan_Zaad_A_Bold_Attempt_to_Deviate_from_the_Traditional_Mode_of_Urdu_Storytelling. Accessed 30 Nov. 2024.
16. Uddin, Shajar. A Gala Day and Other Stories: A Collection of Short Stories. 1st ed., Educational Publishing House, 2023.

Cultural Preservation and Heritage Revitalization: Strategies for Sustaining Siddi and Girmitiya Identities in the Global Diaspora

Prof. Geeta Sahare
Department of Political Science,
****Abhijeet Chaudhary***
(Research Scholar, Department of African Studies, University of Delhi)

Abstract

Africa and India have been historically connected for trade and commerce since immemorial. However, it was only after the advent of colonialism that large-scale migration to and from took place. This article particularly focuses on two such groups representing the African diaspora in India and the Indian diaspora in Africa i.e., Siddis and Girmitiyas respectively. While the manner of migration of these two groups have been different temporally and spatially, they represent an identity of their own which has the potential to boost the Africa-India ties. Siddi's presence in India can be traced back as early as the 7th century. The most likely reason for their initial appearance in India was slavery, brought over by Arabs and later, Europeans during their colonizing of India. Girmitiya is derived from the term Girmit, a corruption of the English word, agreement. This indentured emigration began in the 19th century to meet the shortage of labor supply caused by the abolition of slavery in the British Empire in 1833. This paper seeks to present a historical study of the migration of these groups, understand how much they have assimilated into the local culture while preserving their unique identity as well as show some light on their present conditions. It further seeks to examine the potential of this shared history for Africa-India relations and the initiatives taken to boost the ties by building upon this strong historical connection.

Keywords: Diaspora, Girmitiya, Siddi, Africa, India, Identity

Introduction

India-Africa relations go a long way in history. The movement of goods, ideas, and people has been going on for centuries. Our understanding of the nearly 600 million people of India who are of African heritage comes from specialized literature, mostly from the field of genetics.

Just roughly 250,000 of them, however, can have their ancestry established by historical records, while the vast bulk of the remaining population must have their genealogy established through anthropological research or genetic testing. This sizable segment of India's population has been referred to by a variety of titles over the years, some of which are interchangeable and others of which indicate attempts to categorize the "Africans of India" according to both their origin and the date of their advent upon this Subcontinent (Czekalska & Kuczkiewicz-Fras, 2016).

Unlike the dearth of verifiable data on the migration of Africans to India, Indians' migration to Africa is relatively well-documented. The world of the mid-nineteenth century was entering a new phase in history. Slavery had been abolished, but other forms of labor had to be found to maintain the infrastructure of trade and expansion for the European nations, especially Britain.

P. S. Joshi argues that indentured labor was a new form of slavery and was inaugurated in India in 1830: The system of indentured labor had a history of its own. It was unique in that it was an invention of the British brain to substitute it for forced labor and slavery. The indentured 'coolies' were half-slaves, bound over body and soul by a hundred and one inhuman regulations (Joshi, 1942).

The Greek terms dia (across) and sperio (to scatter) are the source of the word "diaspora," which originally referred to the scattering and exile of the Jews. The phrase is now commonly used to describe all immigrants from different nations who settle down more or less permanently in the country they have moved to yet maintain ties to their "home" countries. (Amaresh, 2020) A diaspora is said to exist when "those individuals, living far from home, build some type of community with each other and retain contact, genuine or otherwise, with their country," according to the High-Level Committee on Indian Diaspora Report from 2000. (HLCID, 2000). A diaspora, according to Lovejoy, "cannot live without a motherland by its nature" (Lovejoy, 2001). Indians of African ancestry, however, have astonishingly little awareness of an African motherland. The idea of "Africa" as a geographical notion is only a nascent one from the twentieth century. African immigrants in the IOW came from a broad range of cultural and ethnic backgrounds in West, North, Central, and East Africa as well as the islands. The titles were used by the "host" groups and tend to be general. For example, Zanj/Sidi for the Swahili Coast and Hinterland; Habshi for Ethiopia are inaccurate assumptions that names for people of African heritage are indicative of exact origins.

The concept of identification describes how people perceive themselves as members of a certain social formation, such as an ethnic group, socioeconomic class, or country. It depends on how time and space are oriented in terms of geography and society. As a result, the idea of

identity becomes malleable. According to David Sill, "Psychosocial identity aims for conceptual coherence in both its individual and community dimensions, but it is also constantly determined by that past that must be lived down and by that prospective future that must be averted. Identity development is a constant struggle against strong, opposing identity components. They are brought to the forefront at times of intensified crises and cause a man to develop a homicidal hatred of "othernesses, which he sees as bad in strangers and himself" (Sill, 1968). The cross-cultural movement, colonialism, and post-independence period have constructed and reconfigured the facets of identity and integration in the regional socio-cultural framework in the case of the African diaspora in India. The Indian Diaspora in East Africa has also seen how many cultural aspects have been configured and reconfigured. Indian diaspora in Mauritius has seen changes, according to Crispin Bates. "Particularly in Mauritius, certain castes are hardly recognizable from a sub-continental viewpoint and may combine mutually hostile castes from an Indian environment. In Mauritius, a Rajput belongs to the Sudra Caste because this group claimed the title in the 19th century" (Bates, 2004). It has been argued that the context of terms such as Hindu and Indian have also been organized on various features which have a direct correlation to Indians of North India. Further, the Tamil community identifies itself as a religious identity; the Telugu and Marathis are dominated by regional identifications. It shows the multi-hybrid facet of diaspora within the essentialist aspect of the triadic association of homeland, host land, and community.

Crisis of Identity: The Siddi conundrum

Presently, coastal Karnataka, Gujarat, and some areas of Andhra Pradesh are home to Afro-Indians, commonly known as Siddis. They are primarily tribal people and are widely believed to be the offspring of slaves who were transported to India from East Africa, specifically from the Bantu-speaking parts of the continent. Although there is no definite date for the arrival of the first Siddis on the Subcontinent, it is widely believed that it occurred at least 700 years ago, if not earlier. Arab traders transported them across on ships and sold them to the kings of India as slaves. They quickly had a reputation for being fierce warriors and devoted slaves (Kumar, 2008). As a result, they held a variety of court posts, frequently served as soldiers, and some even had significant roles in the armies and political conflict. The strongest among them rose to power, while others purchased their release or fled, taking refuge in the wilderness, and founding autonomous villages. There are documented instances of African slave women rising to the position of queen under Muslim sultans. Most Indian Siddis now live in poverty and are typically unaware of their famous past, which is documented in the history books in various places.

For Indians of African origin, the identity question goes beyond the realm of academia. A prominent area of current concern is the empowering of communities of identifiably African heritage who have social, economic, and political difficulties, as the 2006 Goa conference highlighted. One such community is the Sidi in India. There are two opposing perspectives on their empowerment. Essentialists argue that it is important that these communities demonstrate their empowerment by claiming their membership in the worldwide diaspora of African victims. According to Harris' remarks at the Goa Conference, "Africans and peoples of African ancestry must play a more visible and aggressive role given the heritage of the Gwyn Campbell Slave Trades and the Indian Ocean World's legacy of the slave trade, enslavement, and subsequent disadvantage." This could well be the great challenge of the 21st century"(Kumar, 2008). Essentialist scholars insist on the African identity of such groups, irrespective of the group's self-perception. In India, particularly, the government has taken note of this essentialist interest and started to accord Sidis special consideration. Believing that their "African" origins made Sidis genetically gifted for sports, the Indian government Sports Authority in 1987 launched a special program to recruit and train Siddis for international competitions. The strategy has failed due to poor Siddi enthusiasm, according to government officials (Drewal, 2004). The government has also funded musical events in which Sidis adopt "African" clothes, as when Gujarati Siddi Goma dancers were called upon to sport peacock feathers during a visit from Nelson Mandela. Bollywood has subsequently portrayed them in the same costumes to embellish films, as have some African Diaspora scholars who consider that international recognition of such "African" troupes will bring Sidis greater status and revenue (Kumar, 2008).

The creation of states in Arabia, Europe, and the Atlantic and Indian Oceans, as well as the development of the slave trade, are all directly tied to the movement of Siddis (Karmwar, 2010). Due to the growth of agriculture in lower Iraq and the rise of global trade in the Indian Ocean, the need for slave labor rose in the 8th and 9th centuries. The Bantu-speaking Zanj people were acquired either by raid capture or purchase in return for subpar commodities from the petty monarchs of the countryside. They were then transported from the counting houses along the shore to the archipelago of Socotra and the emporium of Aden, where they were assembled before being transported over the Red Sea to their ultimate destinations in Egypt and Mesopotamia. Ibn Battuta also spoke about the reputation and labor of Blacks in India. He reported the names of the ship's owner and captain as Ibrahim and Al-Jagir as he traveled from "Dawat Abad" (Daulatabad), Nadhurbas (Nandurabas), Saghar (Songarh), and Qandahar. He writes, "We boarded the ai-Jagir, which was manned by fifty Abyssinian men-at-arms and fifty rowers. If there is even one of these latter creatures on a ship, the Indian robbers and idolaters will steer clear of it. They are the guarantees of safety in the Indian Ocean (Kumar, 2008).

It is exceedingly challenging to imagine a broad ethnic profile of Siddis in India. Dialectics in the Siddi ethnic structure were influenced by the plantations of Africans in different regions of medieval India. The Siddi community in India is mostly concentrated in the states of Gujarat and Karnataka. Yet, in the modern day, the pressures of globalization have compelled the Siddis to solidify in the continentalization of homeland in Africa. The socio-cultural context and trajectory of regional development have established many lines of classification in the Siddis. In the Siddi community, assimilation based on religion produced a foundation for horizontal fragmentation. The Siddis were divided into Christian, Hindu, and Muslim groups. Due to the restricted opportunities for political and economic integration created by this process, diasporic identity began to develop around 1990. Hinduism, Islam, and Christianity's institutionalized religious structures were not entirely successful in assimilating Siddi values and customs into the civilization at large. They were particularly exposed to numerous hegemonistic influences because of their poverty and race. The Siddi community was unable to obtain the necessary energy to begin gathering material resources. The Siddi were thus classified as a Scheduled Tribe. Moreover, caste-based jobs introduced additional sociopsychological instances of discrimination against the Siddis. Caste and class discrimination, out of the three religious frameworks, was the most onerous system of discrimination experienced by the Siddi group (Kumar, 2008).

Political penetration has also been pervasive among the Siddi community. The regional forest committee reflects the assimilationist approach used by the Indian federal and state administrations. The committee requires the forest department to include tribal members in the administration of the forests and consider their viewpoints. The organization has evolved into a brand-new political battleground for many facets of the community. Few Indians of African heritage now have a firm understanding of their African origins, and the majority disavow any African identity, save in areas of recent and significant African settlement, like Hyderabad (Bhattacharya, 1970). Siddi musicians and dancers similarly demonstrate little consciousness of being "African" or of any common inter-Sidi cause beyond the purely local or (in Gujarat, Karnataka, and Andhra Pradesh) regional level Over the centuries the people brought to the Subcontinent from Africa acquired different names, but now the general denomination used for the Afro-Indians is Siddi. The author of an extensive article dedicated to the names given to people of African origin in Asia, Shihan de Silva Jayasurya, states that: Initially, Africans in India seem to have been called Habshi. Then the word cafire seems to have been introduced by the Portuguese from the late 16th century up to the 18th century. The word Kaffir (from the Arabic word qafr which means 'non-believer') does not imply that one's origins are African. It is not a derogatory term, in this context. It is not clear exactly when the terms Habshi and Kaffir began to decline in use. The term Sidi seems to have been introduced by the British in

the 19th century. Sidi describes Africans in Gujarat and Karnataka today. Africans in Andhra Pradesh call themselves Chaush as they identify themselves with Yemeni Muslims. They have multiple identities and also call themselves Sidi among other ethnonyms (Kumar, 2008).

Today many Siddis are not in any way aware of their origin, and most of them have not even heard of Africa. They have adapted to the local cultures, accepting their religions, languages, and customs, therefore the Siddi communities differ in various parts of India. Having lost their original African names, languages, and culture, they have only retained minor residues of African tradition. This heritage is traceable in their music, songs, stories, and uniquely African musical instruments. In this way, over many centuries, from once being Africans in India they became an integral part of the Indian population - Indians, who are described as African Indians mainly in scholarly studies, and figure as such in statistical data.

Girmitiya: Distortion not exclusively of the name

The Dutch East India Company brought the first Indians to South Africa as slaves, and throughout the seventeenth and early eighteenth century, half of the early Cape slaves were from Bengal and South India. Nonetheless, the introduction of indentured servants was the "primary marker" of Indian migration in Africa. Indentured laborers, also known as Girmityas, arrived by a contract (Girmit) or agreement about their tenure. In any case, the introduction of the steamship as the only mode of transportation between India and South Africa in the nineteenth century is undoubtedly connected to the history of indentured Indians. On November 16th, 1860, the SS Truro arrived in Natal with the first "batch" of Indians, a total of 341 workers, mostly from Madras. A few years later, in 1870, "Passenger Indians"- entrepreneurs, primarily from Bombay and other regions of India's west coast- arrived in addition to the indentured Indians. They created a privileged, dependent group and established a variety of companies among the recent arrivals. A total of 6,445 indentured immigrants had reached South Africa by the year 1866. Due to concerns about how Indians were treated in Natal, immigration was briefly suspended in 1871. It was then restarted in 1874. A total of 152,184 indentured migrants from India and an estimated 30,000 Passenger Indians had arrived in Natal by 1911 (Bhana & Brain, 1990). In 1857 the East India Company was abolished, and the Indian sub-continent came under the direct rule of the British Crown. The pattern of indentured labor had already been established in the movement of Indians to Mauritius in 1833, to British Guinea in 1838, and to Trinidad and Jamaica around the same time (Joshi, 1942). Indians also went to work in the tea plantations in Assam and Bhutan (1860), Ceylon (1870s), Fiji (1879), and Burma (1880s). It is estimated that by 1870 a million Indians had gone overseas to work on

indenture contracts, with Indians forming one of the largest labor diasporas of the nineteenth century The trend certainly extended Britain's "sphere of influence" and marked its expansionist, assertive, and self- conscious approach to empire. While there was free movement of white colonial settlers in the colonial world at this time, indentured laborers were moved from "one boundedness and bondedness to another". It was this "experiment" in social engineering that took half a million Indians from India to the Caribbean (referred to there as East Indians) as indentured laborers in the decades after Britain abolished slavery. It is also important to remember that a global pattern developed whereby indigenous peoples were alienated from their land and were also excluded, through the large scale of indentured labor, from the commercial developments taking place around them. Girmitiya is how they came to be known over time - the name derived from the term Girmit, a corruption of the English word, agreement. This indentured emigration began in the 19th century to meet the shortage of labor supply caused by the abolition of slavery in the British Empire in 1833. It was at this time that colonial eyes were being turned to the East Coast of Natal in South Africa, where the soil was fertile and the prospects seemed promising for sugar farming. The movement of labor was directly linked to the nineteenth-century expansion of colonialism in these parts of the world, with this period being seen as the time of classical colonialism. Wherever white British migrants settled they required labor, and colonized subjects in the colonies such as India, as Bhana and Brain record, became the logical transportable "commodity" (Bhana and Brain, 1990).

Indians, Africans, and Colored people all had a similar history of prejudice and persecution, albeit there were variations within it. Naturally, there were conflicts between the Indian and African populations that persisted through the years and were typical of a colonial culture. There was animosity towards the Indian business community in particular because they were considered a danger to African aspirations at entrepreneurship. Throughout his visit, Gandhi attempted to bring together various Indian groups that were split along class and entrepreneurial lines, as well as linguistic, religious, and small sectarian lines. These communities were split by conflicting allegiances to South Africa and India. Also, he was against untouchability among Indians. However, how this history is interpreted and presented has long been the source of simmering unease, and the subject of ties between Africans and Indians has persisted for the previous 150 years. With almost 1.5 million people, South Africa has the largest Indian diaspora in all of Africa. Indians had already arrived in South Africa in 1653, although as slaves. In actuality, 36.45% of the slave population in the Dutch Cape colony at the beginning of the 19th century was of Indian descent. Although the slave trade was stopped, many Indians continued to travel to South Africa to labor in the sugar cane and sisal fields held by British immigrants. Well into the first decade of the 20th century, South Africa continued to receive Indian immigrants. The majority of Indians living in South Africa are citizens of that nation and

have established significant positions of power across a range of industries. The largest Indian city outside of India, Durban is known for this reputation. The Indian diaspora has grown to play a significant role as a result of the improved connections between India and South Africa, which may also be essential in strengthening ties between India and Africa.

The Girmitiya laborers played a significant role in the development of modern Africa, particularly in the agricultural sector. They brought with them skills and knowledge in farming and agriculture, which they used to cultivate crops such as sugarcane, tea, and coffee, among others. Their contribution to the agriculture sector helped to transform East Africa into one of the leading agricultural regions in the world. Furthermore, the Girmitiya laborers helped to build critical infrastructure in Africa, such as railways, roads, and ports. Their labor was instrumental in the construction of the Kenya-Uganda Railway, which played a crucial role in the transportation of goods from East Africa to other parts of the world. The railway was also instrumental in opening up the interior parts of East Africa for settlement and economic development. In addition to their contribution to the economy, the Girmitiya laborers also played a vital role in the cultural and social development of modern Africa. They introduced new food, music, and dance styles, which are still part of the cultural fabric of East Africa today.

Way Forward

In the contemporary world, the term diaspora has assumed global significance; as a result, international relations are remarkably influenced by various diasporas. Diaspora, like other transnational actors, thus enjoys a privileged status of exerting influence as an interest group in both the homeland and the host land, often affecting the homeland because of influence in the hostland. In any case, as interest groups, Diasporas may use whatever clouts they can advance their interests. Like other interest groups, they use their financial resources, especially because members of diasporas are usually richer than their counterparts at home. The diaspora has played an important role in the economic, social, and cultural development of both regions, and there are several prospects for their continued engagement in the future.

One of the key areas where the India-Africa diaspora can contribute is in the field of entrepreneurship and business. Many members of the diaspora have established successful businesses in both India and Africa, and they can use their networks and expertise to promote greater trade and investment between the two regions. This could help to boost economic growth and create new job opportunities. Another area where the India-Africa diaspora can make a difference is in education and skills development. Many members of the diaspora are highly educated and skilled professionals who can help to improve the quality of education

and training in both India and Africa. This could lead to the development of a more highly skilled workforce and greater innovation and technological advancement. In addition, the India-Africa diaspora can also play an important role in promoting cultural exchange and understanding between the two regions. This could involve initiatives such as cultural festivals, art exhibitions, and language exchange programs, which could help to build bridges between communities and promote greater mutual respect and appreciation.

Conclusion

There are several prospects for the India-Africa diaspora to contribute to the development and prosperity of both regions. There is still room for improvement and making the people-to-people connect an even opportunity for the diaspora of both regions to realize their potential. By leveraging their skills, networks, and resources, members of the diaspora can help foster greater cooperation and collaboration between India and Africa in a range of areas. In the worldwide diaspora, Siddi and Girmitiya identity preservation is a complex undertaking that calls for close examination of historical settings, cultural customs, and community involvement. Several major themes have come to light during our investigation, illuminating the opportunities and difficulties involved in maintaining these rich and varied histories. The challenges faced by the Siddi and Girmitiya populations in maintaining their cultural identities in the face of migration, globalization, and societal change are apparent. It is now necessary to take proactive measures to preserve and revitalize legacy because historical events like colonization, relocation, and marginalization have upset traditional practices and weakened cultural ties. The foundation of cultural preservation and heritage revitalization programs must be community empowerment and engagement. Programs that give priority to the agency and voices of the Siddi and Girmitiya people have a higher chance of being effective in upholding cultural customs and fostering a feeling of community among the diaspora. Effective preservation methods require cooperation and partnership between the Siddi and Girmitiya communities as well as with external players as governmental organizations, non- governmental organizations, and academic institutions. These collaborations have the potential to improve the effectiveness and long-term viability of cultural preservation initiatives by utilizing networks, skills, and combined resources. Furthermore, it's critical to have a comprehensive approach that takes into account language, folklore, music, dance, food, rituals, and material culture, among other facets of cultural heritage. Communities can ensure the transmission of cultural knowledge and practices by fostering a sense of pride and continuity across generations by embracing the richness and diversity of Siddi and Girmitiya traditions. Furthermore, digital platforms and technology provide creative ways to preserve and spread Girmitiya and Siddi history worldwide. Digital archives, online storytelling platforms,

and virtual exhibitions are examples of projects that promote intergenerational learning and discourse while providing universal access to cultural materials.

In the end, maintaining Siddi and Girmitiya identities throughout the world diaspora involves more than just preserving the past; it also entails building strong, resilient communities for the future. Through the promotion of social justice and equity, intercultural dialogue, and celebration of cultural diversity, Siddi and Girmitiya communities can pave the way for a more diverse and fulfilling experience of living abroad. In conclusion, the Siddi and Girmitiya communities' tenacity, inventiveness, and camaraderie provide promise for a future in which cultural legacy prospers throughout the world's diaspora, despite the formidable obstacles to cultural preservation.

References

1. Amaresh, P. (2020, July 22). An Overview of Indian Diaspora in South Africa. Diplomatist. Retrieved from https://diplomatist.com/:https://diplomatist.com/2020/07/22/an- overview-of-indian-diaspora-in-south
2. Bates, C. (2004). Community Empire and Migration: South Asians in Diaspora. Longman. p.32 Bhana, S. & Brain, J. (1990). Setting Down Roots: Indian Migrants in South Africa 1860-1911. Wiwatersrand University Press.
3. Bhattacharya, D.K. (1970). Indians of African Origin. Cahiers d'Etudes Africaines, 10(40), 579-582
4. Chauhan R.R.S. (1995). Africans in India. From Slavery to Royalty. Asian Publication Services.
5. Czekalska, R. & Kuczkiewicz-Fras, A. (2016). From African in India to Indian Africans. African Studies, 42, 189-212
6. Drewal, H. J. (2004). Aliens and Homelands, In Alpers, E. (Ed.). Siddis and Scholars: Essays on African Indians. Rainbow Publishers Limited.
7. Govinden, D. (2008). The Indentured Experience. In J. C. Hawley (Ed.), India in Africa, Africa in India. Indiana University Press.
8. High Level Committee on Indian Diaspora. (2000). Government of India. Retrieved from http://indiandiaspora.nic.in/contents.htm
9. Joshi, P. S. (1942). The Tyranny of Colour: A Study of the Indian Problem in South Africa. Kennikat Press.
10. Karmwar, M. (2010). African Diaspora in India. Diaspora Studies, 3(1), 69-91
11. Kumar, S. (2008). Issues of identity and assimilation of African diaspora in India: a study of Siddi community of Karnataka. Jawaharlal Nehru University.
12. Sills, L. S. (1968). International Encyclopaedia of Social Sciences. The Macmillan Company, p.62.
13. Ballantyne, T. (2011). Orientalism and Race: Aryanism in the British Empire. Palgrave Macmillan.
14. Bhatt, S., & Bhattacharya, R. (2017). Siddi community and Afro-Indian identity in Karnataka: Heritage and belonging. Journal of Asian and African Studies, 52(1), 35-51.
15. Chaturvedi, V. (2007). Peasant Pasts: History and Memory in Western India. University of California Press.
16. Clarke, C. (2015). Indian Indenture in the Caribbean: Resilience and the Revival of Hindu Culture. Macmillan Caribbean.

17. Datta, A. (2020). Global diasporas and the preservation of culture: The case of the Girmitiyas. Diaspora Studies, 13(3), 253-269.

18. Desai, A. R. (2009). Rural Sociology in India. SAGE Publications.

19. Ghosh, P. (2016). Colonialism and Modernity: Legacy of the Girmitiya Experience. Routledge.

20. Hall, S. (1990). Cultural identity and diaspora. In J. Rutherford (Ed.), Identity: Community, Culture, Difference (pp. 222-237). Lawrence & Wishart

21. Hawley, J. S. (2008). The Memory of Love: Surviving Sidi Culture in India. Permanent Black. Jayaram, N. (2011). The Indian Diaspora: Dynamics of Migration. SAGE Publications.

22. Lal, B. V. (2004). Girmitiyas: The Origins of the Fiji Indians. Institute of Pacific Studies. Lobo, A. (2012). Sidis of India: Afro-Indian Descendants. Orient BlackSwan.

23. Mandal, S. K. (2018). Preservation of Girmitiya identity through music and dance. Migration and Culture: Reflections from India and the Global South, 7(2), 115-134.

24. Mishra, V. (2008). The Literature of the Indian Diaspora: Theorizing the Diasporic Imaginary. Routledge.

25. Mukherjee, R. (2017). Oral traditions and cultural preservation among the Girmitiyas in the Caribbean. South Asian Diaspora, 9(1), 45-61.

26. Nagaraj, D. R. (2002). The Flaming Feet and Other Essays: The Dalit Movement in India. Permanent Black.

27. Oonk, G. (2007). Global Indian Diasporas: Exploring Trajectories of Migration and Theory. Amsterdam University Press.

28. Parekh, B. (1997). Rethinking Multiculturalism: Cultural Diversity and Political Theory. Palgrave Macmillan.

29. Singh, M. (2015). Diasporic identity: A study of cultural assimilation and preservation among Indian indentured communities. Journal of Diaspora Studies, 6(2), 189-206.

30. Tinker, H. (1993). A New System of Slavery: The Export of Indian Labour Overseas 1830- 1920. Hansib Publishing.

31. Bhatt, S., & Bhattacharya, R. (2017). Siddi community and Afro-Indian identity in Karnataka: Heritage and belonging. Journal of Asian and African Studies, 52(1), 35-51. https://doi.org/10.1177/0021909615600234

32. Datta, A. (2020). Global diasporas and the preservation of culture: The case of the Girmitiyas. Diaspora Studies, 13(3), 253-269. https://doi.org/10.1080/09739572.2020.1727268

33. Mandal, S. K. (2018). Preservation of Girmitiya identity through music and dance. Migration and Culture: Reflections from India and the Global South, 7(2), 115-134. https://doi.org/10.1080/17486993.2018.1430549

34. Mukherjee, R. (2017). Oral traditions and cultural preservation among the Girmitiyas in the Caribbean. South Asian Diaspora, 9(1), 45-61. https://doi.org/10.1080/19438192.2017.1282472

35. Singh, M. (2015). Diasporic identity: A study of cultural assimilation and preservation among Indian indentured communities. Journal of Diaspora Studies, 6(2), 189-206. https://doi.org/10.1177/0973957215560198

36. Choudhary, N., & Singh, R. (2019). The legacy of Indian indentured laborers: Cultural resilience and identity among Girmitiyas in Mauritius. Asian Journal of Social Science, 47(3), 342-359. https://doi.org/10.1163/15685314-04703005

37. Prakash, A. (2021). Afro-Indian communities and the struggle for cultural preservation: The Siddi identity in India. International Journal of Cultural Studies, 24(6), 813-829. https://doi.org/10.1177/13678779211016864

Status of Women in India - Past & Present : A Compendium

Prof. Seema Yadav
H..O.D., Faculty of Law,
S. V. College, Aligarh
****Khursheed Alam Khan***
Assistant Professor, Faculty of Law,
S. V. College, Aligarh

Inception

The term 'Woman' in common parlance,is a combination of two words wo+ Man;' wo' means to stop ,stopping man being indulged in illegal & sinful acts is woman.There are three species of human beings men,women &tenors,may they be Adam & Eve, Prakrati or Purush or creation of Brahma,indicates the origin of human beings.

'Durham kratmano dehamrdhen purushobhavat,

Archenemy naritashyas virtual srajat Manu'; Meaning thereby Brahma devices his body into two parts one consisted of man & the other woman,both by coition created entire Universe. Sura IV of Holy Quran devoted to woman testifies that'Al-Nisha' woman is so-called because it deals with women's rights, share of woman in her family property & securing justice by way of upkeep and maintenance eg.a Muslim man might kept four wives provided he can do justice with all & may not deprive them to their due.

Status of Women From Vedic Period to Post Independence Era

i) Vedic Period:

Under Vedic era women enjoyed high status in society. No session (yajna) was performed / perfected without one's betterhalf.Manu,the great lawgiver also mentioned that 'where women are honoured;there resides the Gods'.She enjoyed equal status with man.Many women ruled as good fighter,administrator etc. in different area of India as renowned ruler but in present

materialistic era they performed their domestic duties as domestic servant advised her husband in household affairs as his Minister exhibited as goddess of wealth served as mother food to her husband having endurance like earth as Rambha the celetial dancer of Indra-the King of Gods,performing her duties seems to have lost her ancient status-:

"Karyeshu design Karnes matri,
Rupyeshu Laxmi schamadhatri,
Bhojyeshu Mata shyness Rambla,
Shannara yukt kul dhar.patni".

(Sanskrit Proverb)

During Vedic period women had exalted position & they enjoyed a fair amount of personal freedom,liberty and equality with men ,women also studied in Gurukul and enjoy equality in learning Vedas.The great women like Ghosha,Apala Lopmudra, Gargi Maitri,Indrani,Yami and others had distinct qualities of art, music, dance and even fighting in the battle. In this era marriage where solemnized when the couple had reached age of maturity & where capable of understanding nature and significance of marriage. Brides had exclusive right of selecting their own consorts and polygamy was Limited mostly to the aritrocratic classes. Dowry system(only movable gifts)was prevalent among rich and royal families, the widow remarriage was in practice, the main disability which the women suffered in the Vedic age was Limitations on proprietary rights, she could not hold or inherent property.

ii) Post Vedic Period:

In post Vedic period from 1500 BC to 500 AD the status of women suffering a setback when various restrictions were put on women's rights & privileges by famous law giver 'Manu'. The education of women which was an accepted norm during Vedic period slowly began to be neglected. There were so many passages in Dharmshastra,which enunciated only the ideal of womanhood as in essence meaning the negation of her personality.Yagvalakya declared that "women should follow the words of their husbands, this is their highest duty" (Yagvalkyasmiriti 1:18)

Manu emphasized that - A Woman's father protects her in childhood, the husband protects her in her youth hood & her sons protects in her old age, a woman is never fit for independence (Manusmriti V;148)

iii) Medieval Period:

The position of women was reduced to 'war prisoners' during the invasion of India by Alexandra & Hunns from 500 AD to 1800 AD.The existence of women was further degraded. Muslim invaders in India brought complete subordination of women & they were compelled to take 'purdah'&restricted the movement of women outside from home.Along with purdah system the curse of polygamy was also started,due to their illiteracy &devoid of their status ,women came to be treated as chattels.

The Mugal period and the subsequent advent of the British period were marked in history for general practice of killing baby girls,condemnation of widow,polygamy & devdasi system in different parts of India.The worst aspect of this social degradation was the terrible sufferings with societal falling of women & their illiteracy engaged the attention of almost all social reformers.

In late medieval India, the status of women in society was not only regarded as subordinate but was also rationalized as being due to women's own inherent weakness.In religious perceptions women was portrayed as vile and as a seductress, both in the verses of monotheistic saint Kabir (15 century)& in those of TulsiDas(c 2580) Orthodox Naqshbandi theologian,Shaikh Ahmad Sirhindi(1564-2624).However,there is a much better perception of women in the Sikh scriptures which do not denigrate her in this manner.

Women of the Mugal nobility received an education and some of them found and employment in the literacy and artistic fields while others were more sometimes assigned semi bureaucratic or supervisory roles. But the independence of higher class women was often sharply curtailed & seclusion & the veil were enforced among both Hindus and Muslims.

After centuries of social stagnation, It was not until the eighteenth century the serious efforts were made by the social reformers for eradication of social evil.The notable social reformers of this period were Raja Ram Mohan Roy, Ishwar Chandra Vidyasagar, Dadabhai Nehru ji,Swami Vivekanand, Swami Dayanand Saraswati, Lokmanya Tilak, Arvindo Ghosh and Mahatma Gandhi.

The nineteenth century brought a new Ira and crucial rule was played by some outstanding women like Annie Besant, Sister Nivedita, Sarojini Naidu Suchitra Kriplani Kasturba Gandhi, Durgabai Deshmukh, Vijayalakshmi Pandit and many more to improve the status of women, a great effort of social legislations took place during this period.

iv) Post Independence Era:

Independence India brought a sea change & the chief architect of the constitution of India Dr. BR Ambedkar with all national leaders, not only recognised the unequal socio - legal status of women but saw to it that women got equal rights and in all sphere, the greatest honour was paid to once neglected & Subjugated section of the society. Many legislative measures which guarantees equality to women not only in their family life but in all other other aspects, which are revolutionary in character and the status of women in legal terms has been improved.

In present scenario the development of women in India has been receiving the attention of both planners and policy makers since Independence. All the efforts of the Government were directed towards mainstreaming women into the national development why raising their overall status- economic ,social, legal and political - on par with men.

Women in the Nationalist Movement : The Movement for Women's Rights

From liberal homes & conservative families, urban centres & rural districts, women-single or married, young & old-came forward & joined the struggle against Colonial rule. though their total numbers were small, their involvement was extremely important. Women's participation called into question the British Right to rule, legitimized the the Indian National Movement and won for activist activist women, at least for a time, the approval of Indian men, Politics completely altered the goals and activities of organised women education, social reform & women's rights appealed to some progressive women, but the movement to rid the century of its foreign rulers attracted people from all classes, communities and ideological persuasions. Nationalists leaders, deliberately cultivated linkages with peasants, workers and women's organisation to demonstrate mass support for their positions. Women were amazed to find political participation approved by men who wanted their wives to behave in the home like the perfect wives in religious texts.Manmohini Zutshi Sehgal,a freedom fighter jailed in Lahore in 1930,wrote about a woman who joined a demonstration and was arrested while her husband was at work, he sent word to the jail that she could not return home after her release. Manmohini's mother Lado Rani intervened on behalf of her husband. The husband said it was great honour to have his wife arrested, but she had not asked his permission to leave the house. In the end he accepted her back but the lesson was not lost on Congress workers. Women's political work had to be conducted without the hint of social revellion.(Manmohini Zutshi Sehgal ,an Indianfreedomfighter;recalls her life,Geraldine Forbes-New York ME Sharpe 1994,p.7)

The story of women's role in the nationalist struggle is not simply bro one of the marionette who were told when to march and where to picket, because the numbers of women who played some role in these movements, however small, for exceeded expectations. The nature of their work influenced how women saw themselves and how other saw their potential contribution to national development. At the same time their involvement helped to shape women's view of themselves & of their mission.

The participation of women Legitimized the Indian National Congress. Women activities validated Indian unity and Satyagraha. The techniques of Satyagrahi were designed to wrest moral authority from the Raj and return to the unarmed , non violence subjects. Even the Britisher understood that this method Ihad a special appeal for women. One official wrote;

'There is no doubt that but for them(women)the movement would never have gained the force it has had.It is due to them, the sympathy of many not otherwise likely to have been in sympathy has been evoked'(GOI,Home Dept,political file 253/30/1930).

The participation of women in the freedom struggle also shaped the movement for women's rights in different arenas.Most important, it Legitimized their claim to a place in the governance of India. Women won great respect for their political work & Social benefits followed. At the same time, the participation of women had some clear drawbacks. Those demonstrating Claimed to represent all Indian women, but the number of groups involved, other than upper& middle class Hindu women,was never large.A few Muslim women were steadfast followers of Gandhi;many more either found it difficult to accept the overtly Hindu ideological basis of these ideas or were neglected by the congress organizers & also most women leaders were unable to get beyond their own sense of respectability when they sought recruits. An exception to this of course were the women who joined the revolutionary movement. They worked closely with men,wore disguises,traveled alone or in the company of strangers & learned how to shoot,drive cars & make bombs.Even though they were valorized, they were not regarded by all as'respectable' women. Gandhi called them 'unsexed" & Rabindra Nath Tagore,wrote a novel in which the sexual allure the revolutionary heroine was to recruit young man to the cause.(Rabindra Nath Tagore,four chapters translation of char adhyaya,1934 by Surendra Nath Tagore,Calcutta,VishwaBharti,p13).

The revolutionary women have described themselves as sacrificing all the things which mostly women wants- marriage, children, a home-from the Country.No one,including the revolutionary women themselves, considered revolutionaries representative of Indian womanhood.Once Annie Besant warned the Joint Selection Committee that they were making a mistake gy ignoring women's demands.According to Besant Indian political councils

included women until the British imposed their notions of women's proper place.If the Britisher continued to exclude them, the Indian women would join political protests, this would have been serious consequences.Any attempts to suppress their agitation would fail because Indian man would not tolerate police interference where women are concerned.(Joint Select Committee on Government of India Bill Parliamentary papers1919,vol-13minutes of evidence-cond.203;p.71) Besant was raising the specter(can be called traditional Indian behaviour)of a revolt from within the zenana,a dangerous space because it was unexpected & uncolonized.

There are some studies that portrayed the women who fought for civil rights as Puppets of the Nationalist project and others that paint them as a Anglophiles with no understanding of their own society. Did these women exercise agencies in choosing their issues and tactics?and if so what motivated them? In their effort to gain civil rights for woman- the vote and legal changes in particular - these women became the petitioner to the British rulers.The rights they sought could not be granted by their menfolk nor could British women,only recently enfranchised & inadequately represented in Parliament ,granted them rights.

Campaigns- for the franchise & for legal rights-show women in an activist stance.They may have been misguided, acting out of their own narrow caste & class view of the world, but they were not puppets.They made choices in the final analysis to support the nationalist project but they were conscious of what they were doing, because the historical record illuminates the complicated motivations that underlay women's decisions & experiences aslo taught women that the battle for rights would not be easy task & again they were forced to work for & accept whatever medium of justice they could get.

The franchise compromise & the Rau committee report did not adequately reflect the views of Organized women.These women naively, strove to achieve what they regarded as equitable & suitable for Indian Society. Increasingly they began to define themselves as a minority community with unique problems that could not be addressed through political channels alone.

The modern concepts of gender equality and women's rights first, proclaimed by the French Revolution could not fail, to reach India. Indian with a modern education began to espouse the cause of women, in matters such as sati (the high- cast practice of widow burning) the remarriage widows and female education. Raja Ram Mohan Roy(1832), Ishwar Chandra Vidyasagar(1820-91) and Keshav Chand Sen(1884) particularly distinguished themselves in these efforts. Christian missionaries also play the vital role,particularly in the field of female education. By the 1850s much progress had been made. Sati was provided by the Regulation of 1829;female infanticide war declared a criminal offence amounting to murder by a Regulation

of 1830;& the Hindu women ReMarriage Act was enacted in 1856. Except for the abolition of Sati, other laws were of little consequences in ameliotating the social status of women and remained more or less me a declaration of intent.

The National Council of women in India established in 1925, was a branch of the International Council of Women.Its leaders were mainly Indian women, but it was chiefly patronized by women of princely and wealthy families; its membership fees were quite high. It conducted propaganda against 'Passive Charity' and aimed to make poor women realize the 'necessity of self respecting, honest work'. It was active until 1944. In political matters it confined itself to submitting petitions to the British Government.The most important women's organizations before independence was undoubtedly the All India Women's Conference (AIWC)which held its first session in 1927 at Pune with 2000 observers & 58 delegates. The equality of men & women in the political sphere was in the Motilal Nehru report of 1928,in which All Parties Conference,agreed to present to the British Govrnment,as a blue print for India's future constitution. Although the Constitution of India, (1950),did not entirely fulfil the expectations aroused by the Karachi resolution of 1931,some substantive gains were nevertheless made.In the first half of the twentieth century, women began to enter such professions as medicine,engineering&commerce,previously preserved for men.But teaching profession was much favoured by women in 1950 over 15 % of the primary & secondary teachers in India were women.

Constitutional Provisions:

The Constitution of India contains various provisions, which provide for equal rights and opportunities for both men and women. The silent features are:-

- Article 14 guarantees that the State shall not deny equality before the law and equal protection of the laws;
- Article 15 prohibits discrimination against any citizen on the ground of sex;
- Article 15(3) empowers the State to make positive discrimination in favour of women and children;
- Article 16 provides for Equality of Opportunity in matters of public employment;
- Article 23 prohibits trafficking in human beings and forced labour;
- Article 39(a) & (d) enjoins the State to provide equal means of livelihood and equal pay for equal;
- Article 42 enjoins upon the State to make provisions for securing just & humane conditions of work, and for Maternity relief;

- Article 51A(e) imposes a Fundamental Duty on every citizen to renounce the practices derogatory to the dignity of women;
- Article 243D(3) provides that not less than one third of the total number of seats to be filled by direct election in every Panchayat to be reserved for women, and such is seats to be allotted by rotation to different constituencies in a Panchayat;
- Article 243T(3) provides that not less than one third of the total number of seats to be filled by the direct election in every Municipality shall we reserved for women and such seats maybe allotted by rotation to different constituencies in a municipality;
- Article 243T(4) provides reservation of offices of chairperson in Municipality for SC,ST Women in such manner as the Legislature of a State, may by law provide;

In Persuance of the above Constitutional Provisions, various legislative enactment have framed to protect, safeguard&promote the interests of women.

Part IV of the Constitution active obligations of the State to secure social & economic freedom which could not be granted at time of Constitutional framing.

Laws for All: Justice for Whom?

The substantive laws relating to protection & welfare of women are not very effective Constitutional guarantee alone doe'nt ensure justices. (the issuehas been dealt by the SC in the ABSK Sangh case ,AIR 1981,SC 298) Affirmative action sans basic pre requisites. Violence against Women is on the rise,for example Dowry Prohibitions Act enacted in 1961 and amended from time to time does not appear to have served much purpose as the menace of dowry continues(Justice A.S.Anand in Kundula Balu Subhramanyam vs Stateof AndhraPradesh 1993(2) SCC 684). The Immoral Traffic (Prevention) Act 1956 has (amended in 1986) has been enacted to combat prostitution but in fact prostitution is thriving. Rapes in broad daylight have shocking the nation everyday. What is intimidating is that instead of the guilty brought to books in cases of complaints of rape and sexual molestation,women find themselves being objectified & treated with disdain.Victims of crime who approach the court get re victimized by psychological stress arising out of "aspersions cast upon their character by opposing counsel"& pressure to conciliate or compromise in the interest of protecting the family, which is deemed more important the dignity of the women.

Although numerous movies, drama/plays, educational seminars, awareness programmes pointed out the gender discrimination.But alas all these platforms demonstrate the fight of female protagonists, their endurance &finally their upcoming of the old culture or

religion!which is the main lacuna towards improvement, we still have to go long way and needs to do lot in the field of Socital as well as legal reforms.

Epiloque:

Last not the least ,it is well remarkable view that Society needs to understand that a woman is key to the survival of human species. She is the backbone of the development of the modern civilization;when the status of women improves, the quality of life improves for everyone& the status or place of Women in society as well in Law ,is a critical factor in judging the success o any Civilization of the World. We are fully agreed with the quote of Swami Vivekanand on this regard that-

"The best thermometer to the progress of a Nation is its treatment of its Women.There is no chance for the Welfare of the World unless the condition of Women is improved".

References

Thankful to all great authors & luminaries from different fields, who inspired us to mentioned them in our paper submission .

- Bhagwat Saran Upadhyaya; Women in Rigged,S.Chand& Company.(pvt)New Dehli.
- Chahryar Adle & Irfan Habib;UNESCO History of Civilization of Central Asia,Vol V.
- Manmohini Zutshi Sehgal;An Indian Freedom Fighter recalls her life,Geraldine Forbes(New York,M.E.Sharpe 1994) p.7.
- Helena Dutta Interview(Calcutta,September,1975).
- Geraldine Forbes-New York;Women in Modern India.
- S.Moosavi;The Status of women in India & Pakistan.
- Rama Mehta;Social Legal Status of Women in India
- Kiran Devendra;Status &Position of Women in India, vikis publishing house pvt.ltd.3.
- Indu Malhotra;Empowerment of Women, Nyaydeep-The Official Journal of NALSA,vol-VII,Issue 3,July2006
- Shimano Raswan Pathania;Gender Equality:An Indian Perspective, Nyaya Deep,the Official Journal of NALSA,vol-VIII,Issue-1, Jan 2007.
- Women-in-Law Exploration in law,family & sexuality;edited by Julia Brophy & Carol Smart,Routledgr&Kegan Paul Publication

Artificial Intelligence and Cultural Identity: An Analysis

Dr. Satyam Dwivedi
Associate Professor
Department of Sociology
D.A.V. (P.G.) College, Dehradun

Abstract

The rapid advancement of artificial intelligence (AI) has transformed various facets of modern life, prompting profound changes in social, economic, and cultural domains. In the context of India, a country characterized by its rich tapestry of cultures and languages, the intersection of AI and cultural identity presents both opportunities and challenges. This review-based research aims to analyse how AI technologies influence the construction, expression, and preservation of cultural identities, particularly among the youth in urban and rural settings.

As AI systems become integral to daily experiences—ranging from language translation applications to algorithm-driven content generation—their impact on cultural narratives is significant. On one hand, AI can facilitate the preservation of local traditions and languages by providing platforms for expression and outreach. On the other hand, there is a growing concern that AI may contribute to cultural homogenization, as dominant global narratives overshadow localized identities.

This paper synthesizes existing literature to explore the dual role of AI as both a tool for cultural empowerment and a potential disruptor of traditional practices. It examines key themes such as the role of AI in media representation, language dynamics, and social interactions, highlighting how these elements shape cultural identity in an increasingly digital landscape.

By critically engaging with diverse perspectives on AI's impact, this research seeks to contribute to the broader discourse on technology and culture, emphasizing the need for a nuanced understanding of how innovation can coexist with cultural heritage. Ultimately, this analysis aims to illuminate the complex interplay between AI and cultural identity, offering insights for policymakers, educators, and technologists as they navigate this evolving terrain.

Keywords: Artificial Intelligence, Cultural Identity, India, Technology, Preservation, Homogenization, Globalization, Digital Culture.

Introduction

The rapid evolution of artificial intelligence (AI) has significantly transformed various aspects of human life, including communication, education, and cultural expression. In a culturally rich country like India, where diverse languages and traditions coexist, the intersection of AI and cultural identity presents both opportunities and challenges. As AI technologies increasingly permeate daily life, they reshape how individuals and communities perceive, express, and negotiate their cultural identities.

AI's potential to facilitate cultural preservation is noteworthy. For instance, language translation tools such as Google Translate have made regional languages more accessible, fostering a renewed interest in local dialects among younger generations (Khan & Sharma, 2021). Additionally, AI-driven platforms for storytelling and content creation empower local artists and creators to share their narratives on a global stage, thereby preserving and promoting cultural heritage (Bhatia, 2022). Such technologies enable a resurgence of interest in traditional arts and crafts, allowing them to adapt to contemporary contexts while retaining their essence.

However, the influence of AI is not solely beneficial. The risk of cultural homogenization looms large, as dominant global narratives can overshadow localized identities. Algorithm-driven content distribution often favours mainstream media, potentially marginalizing regional stories and voices (Dutta, 2020). This phenomenon raises critical questions about the implications of AI for cultural identity, particularly in a society that thrives on diversity.

Furthermore, the youth, as digital natives, are particularly susceptible to these shifts. As they engage with AI technologies, their understanding of cultural identity may evolve, blending traditional values with modern influences. This dynamic interplay is essential to examine, as it could redefine what it means to be culturally Indian in an era of globalization and digitalization.

This review-based research aims to analyse existing literature on AI's impact on cultural identity in India, focusing on key themes such as language dynamics, media representation, and social interactions. By critically engaging with these perspectives, the study seeks to illuminate the complex relationship between technology and culture, emphasizing the importance of preserving cultural heritage in the face of rapid technological change. The insights gained from this analysis are vital for policymakers, educators, and technologists as they navigate the evolving landscape of AI and its implications for cultural identity.

Review of Existing Literature

The intersection of artificial intelligence (AI) and cultural identity has garnered increasing attention in recent years, especially in diverse contexts such as India. This literature review synthesizes existing studies to understand how AI influences cultural identity, exploring both its potential to preserve cultural heritage and its role in fostering homogenization.

AI as a Tool for Cultural Preservation:

One of the primary areas of interest in the literature is AI's role in cultural preservation. Research by Bhatia (2022) highlights how AI technologies facilitate the digitization of traditional art forms, enabling local artisans to reach broader audiences. Digital platforms powered by AI allow for the creation of virtual galleries, where artists can showcase their work while preserving traditional techniques. Similarly, Gupta (2021) emphasizes that AI-driven language translation tools are critical for maintaining regional languages, as they provide access to resources that were previously limited to dominant languages. This accessibility fosters a sense of cultural pride and encourages younger generations to engage with their heritage.

Moreover, the preservation of folklore and oral traditions has also been enhanced by AI. Sharma and Singh (2020) document initiatives where AI is used to archive oral histories, enabling communities to record and share their narratives digitally. This not only preserves these stories for future generations but also empowers communities to define their identities in the face of globalization.

AI in Media Representations:

Another significant aspect discussed in the literature is the impact of AI on media representation and its subsequent effect on cultural identity. Algorithms that govern content distribution can significantly influence which stories are told and how they are perceived. Dutta (2020) argues that the dominance of Western narratives in algorithmically curated content can lead to a homogenization of cultural identity. As young people engage predominantly with global content, there is a risk that local narratives may be overshadowed, leading to a loss of cultural specificity.

Conversely, researchers like Joshi (2022) point out that AI can also serve as a platform for marginalized voices. AI technologies enable content creators to bypass traditional media gatekeepers, allowing them to share local stories on global platforms. For instance, independent filmmakers and artists have utilized AI tools to create compelling narratives that reflect regional cultures, thereby enriching the global cultural tapestry. This duality highlights the complex relationship between AI, media representation, and cultural identity.

Language Dynamics and Identity:

Language is a crucial element of cultural identity, and its dynamics are profoundly affected by AI technologies. Studies have shown that AI can enhance multilingualism by facilitating communication across linguistic boundaries. As Khan and Sharma (2021) note, AI-driven translation services allow speakers of different languages to engage with each other, fostering cross-cultural dialogue. However, the same technologies also raise concerns about the erosion of less commonly spoken languages. While AI can provide a platform for linguistic diversity, it often prioritizes dominant languages, potentially side-lining regional dialects.

In a study examining the impact of social media algorithms on language use, Rao (2023) found that users tend to adopt dominant languages in digital spaces to increase visibility. This shift can dilute regional identities and create a homogenized digital culture, where unique linguistic features are overshadowed. The implications for cultural identity are profound, as language is a key marker of individual and communal identity.

Youth Engagement and Cultural Identity:

The influence of AI on cultural identity is particularly pronounced among the youth, who are often the most active users of digital technologies. A study by Singh (2022) indicates that young Indians are increasingly negotiating their cultural identities through social media platforms that utilize AI algorithms. These platforms provide a space for self-expression and cultural exchange but also subject users to external influences that can reshape their identities.

As young people consume content curated by AI, they may adopt a blend of local and global cultural elements, leading to hybrid identities. While this can foster creativity and innovation, it also raises concerns about the dilution of traditional values. In her research, Mehta (2021) posits that this generational shift could lead to a redefined sense of what it means to be culturally Indian, as traditional markers of identity become intermingled with global influences.

Ethical Considerations and Cultural Implications:

As AI technologies continue to evolve, ethical considerations surrounding their use in cultural contexts become increasingly relevant. Dutta (2020) emphasizes the need for algorithmic transparency to mitigate biases that may reinforce cultural stereotypes. Without ethical oversight, AI could perpetuate existing inequalities, particularly in a diverse society like India.

Furthermore, the implications of AI-driven globalization cannot be overlooked. While AI has the potential to democratize access to cultural content, it also risks reinforcing power imbalances. As discussed by Kumar and Sen (2023), the concentration of AI technology in the hands of a few corporations may limit the representation of diverse cultures, thereby affecting cultural identity at a systemic level.

Analysis of the Discussion

The literature on artificial intelligence (AI) and cultural identity presents a multifaceted view of how these two domains interact, particularly in the context of India. This analysis synthesizes key themes from the existing research and highlights the implications for cultural identity, emphasizing both opportunities and challenges.

Cultural Preservation vs. Homogenisation:

A prominent theme in the literature is the dual role of AI as both a facilitator of cultural preservation and a potential agent of homogenization. Studies demonstrate that AI technologies, such as language translation and digital storytelling platforms, can enhance accessibility to cultural resources, thereby enabling the preservation of regional languages and traditional art forms (Bhatia, 2022; Gupta, 2021). These tools empower local communities, allowing them to maintain their cultural narratives and express their identities in the digital age.

Conversely, the risk of cultural homogenization is a significant concern. Dutta (2020) points out that algorithm-driven content often prioritizes dominant narratives, which can overshadow local voices and stories. This imbalance raises critical questions about the authenticity of cultural representation in an increasingly globalized digital landscape. The literature suggests a delicate balance between leveraging AI for cultural preservation while safeguarding against the dilution of distinct cultural identities.

Language is a cornerstone of cultural identity, and the influence of AI on linguistic practices is a recurring theme. The findings indicate that while AI technologies can promote multilingualism and enhance communication across linguistic barriers (Khan & Sharma, 2021), they may also contribute to the erosion of regional languages. The tendency of users to adopt dominant languages for visibility in digital spaces can dilute local linguistic features (Rao, 2023). This shift poses a significant challenge to maintaining cultural identity, as language loss can lead to a broader erosion of cultural practices.

The dynamic nature of language in the digital age highlights the complexity of identity formation among youth, who navigate both local and global cultural elements. Singh (2022) emphasizes that this blending can lead to hybrid identities, reflecting a creative interplay between tradition and modernity. However, the risk remains that traditional values may be overshadowed by global influences.3. Empowerment through Media Representation

AI's role in media representation is another critical area of focus. While traditional media often acts as a gatekeeper of cultural narratives, AI technologies can democratize access to storytelling, allowing marginalized voices to emerge (Joshi, 2022). This potential for empowerment is significant in a diverse society like India, where local narratives can gain visibility on global platforms.

However, the literature also warns of the ethical implications associated with AI-driven content distribution. The concentration of AI technology within a few corporations can limit the diversity of cultural representations, potentially reinforcing power imbalances (Kumar & Sen, 2023). The need for algorithmic transparency and ethical considerations in AI deployment becomes paramount to ensure equitable representation of diverse cultures.

Youth Engagement and the Future of Cultural Identity:

The impact of AI on youth engagement with cultural identity is a vital consideration. As digital natives, young people are at the forefront of navigating the complexities of cultural expression in a globalized world. The literature indicates that social media platforms, influenced by AI algorithms, shape how youth construct their identities (Mehta, 2021). While this environment fosters creativity and cultural exchange, it also raises concerns about the potential erosion of traditional cultural markers.

The blending of local and global influences can lead to innovative expressions of identity, but it also prompts a re-evaluation of what it means to be culturally Indian. This generational shift underscores the importance of understanding how AI shapes cultural identity and the

necessity of fostering an environment that values both innovation and heritage.

Conclusion

The exploration of artificial intelligence (AI) and cultural identity reveals a dynamic interplay that is particularly pronounced in a diverse context like India. As AI technologies continue to advance and integrate into various aspects of daily life, their influence on cultural expression, preservation, and identity formation becomes increasingly significant. The existing literature offers a nuanced understanding of this relationship, highlighting both the opportunities AI presents for cultural empowerment and the challenges it poses regarding homogenization and representation.

One of the most compelling aspects of the discussion is the potential for AI to serve as a powerful tool for cultural preservation. AI technologies, such as language translation tools and digital storytelling platforms, enable marginalized communities to maintain and share their cultural narratives. By digitizing traditional art forms and facilitating access to regional languages, AI empowers individuals to engage with their heritage in meaningful ways. This is especially crucial in a country like India, where linguistic and cultural diversity is vast. The findings suggest that AI can revitalize interest in local traditions, allowing them to adapt to contemporary contexts while retaining their core essence.

However, the risk of cultural homogenization remains a pressing concern. As dominant global narratives increasingly permeate digital spaces, there is a danger that local voices and stories may be marginalized. Algorithm-driven content curation often favours mainstream narratives, which can overshadow the rich tapestry of regional cultures. This imbalance raises critical questions about authenticity in cultural representation and the need for greater inclusivity in digital storytelling. The literature emphasizes that while AI has the potential to democratize access to cultural content, it also risks reinforcing existing inequalities if not approached thoughtfully.

Language, a key component of cultural identity, is profoundly affected by AI technologies. While AI facilitates multilingualism and cross-cultural communication, it can also contribute to the erosion of regional languages as users gravitate toward dominant languages for visibility in digital platforms. This shift poses significant challenges for cultural identity, as language loss can lead to a broader decline in traditional practices. The youth, as active participants in this digital landscape, navigate a complex interplay of local and global influences that can reshape their understanding of identity.

Moreover, AI's impact on media representation is crucial in shaping cultural narratives. The ability of AI to empower marginalized voices and democratize storytelling is significant, as it allows for a broader spectrum of cultural expression. However, ethical considerations surrounding AI deployment are paramount. The concentration of AI technology within a few corporations can limit the diversity of cultural representations, highlighting the need for algorithmic transparency and ethical frameworks to ensure equitable access and representation.

The engagement of youth with cultural identity through AI presents both opportunities and challenges. As digital natives, young people are uniquely positioned to blend traditional values with modern influences, leading to innovative expressions of identity. Yet, this generational shift also necessitates a re-evaluation of what it means to be culturally Indian in an era defined by globalization and technological change.

In conclusion, the relationship between AI and cultural identity is complex and multifaceted, with significant implications for how cultures are preserved, expressed, and negotiated in the digital age. While AI technologies can facilitate cultural empowerment and preservation, they also pose risks of homogenization and ethical dilemmas that must be critically addressed. Future research should focus on developing frameworks that prioritize cultural diversity and inclusivity in AI deployment, ensuring that diverse cultural voices are heard and valued. By fostering a society that embraces innovation while respecting its rich cultural heritage, we can navigate the challenges and opportunities presented by AI, ultimately enhancing the cultural fabric of communities in India and beyond.

References:

- Bhatia, S. (2022). *The role of technology in preserving cultural heritage: A study of digital storytelling in India*. Journal of Cultural Studies.
- Dutta, P. (2020). *Algorithmic bias and cultural representation in Indian media.* Media, Culture & Society.
- Khan, A., & Sharma, R. (2021). *Language and technology: The impact of AI on regional languages in India.* International Journal of Linguistics.
- Gupta, R. (2021). AI and the revitalization of regional languages in India. *International Journal of Linguistics.*
- Joshi, A. (2022). The democratizing potential of AI in cultural narratives. *Asian Journal of Communication.*
- Kumar, R., & Sen, P. (2023). Power dynamics in AI and cultural representation. *Journal of Communication Ethics.*
- Mehta, L. (2021). Youth identity in the age of digital globalization. *Journal of Youth Studies.*
- Rao, T. (2023). Social media algorithms and their impact on language use in India. *Language and Communication.*
- Sharma, V., & Singh, P. (2020). Archiving oral histories through AI: A case study. *Journal of Folklore Research.*
- Singh, R. (2022). Negotiating cultural identity in the digital age: A study of Indian youth. *Cultural Sociology.*

Social Status of Transgender in India: A Critical Analysis

Khursheed Alam Khan
Assistant Professor, Deptt. of Law,
Shri Varshney College, Aligarh
****Prof. Reeta Nigam***
Professor, Faculty of Law,
Agra College, Agra

Abstract

This research delves into the social and legal obstacles encountered by transgender people in India, specifically looking at how recent laws like the Transgender Persons (Protection of Rights) Bill, 2019, and important court decisions have affected their lives. Transgender people still face prejudice in the workplace, schools, and other social and institutional settings, even while their gender identity is officially recognized. The study places the current state of transgender rights in a national and global context by applying a doctrinal research technique to examine government records, international human rights frameworks (such as the Yogyakarta Principles), and case laws from the Supreme Court and High Court. Despite laws that have been passed to promote transgender inclusion, there are still social attitudes and institutional impediments that make it hard for transgender people to have equal rights and access to resources. To close the gap between transgender people's social reality in India and legal reforms, the report says that public awareness and persistent policy execution are crucial.

Keywords: Transgender, legal challenges, social inclusion

Introduction

There is a social nexus between adoration and rejection for transgender individuals in India because to their experiences with both historical acceptance and modern exclusion. Members of India's transgender society, known variously as Hijras, Aravanis, or Kinnars, have a rich and fascinating history that includes royal patronage, significant roles in religious ceremonies, and more. Among the many transgender and gender-fluid figures in Hindu mythology and epics

are the dualistic deity Ardhanarishvara and the Mahabharata's Shikhandi. Cultural works that featured transgender characters often depicted them as spiritual beings, even as messengers to the almighty, showcasing a more complex understanding of gender. But when the British came to power in the 1800s, attitudes about transgender persons changed drastically. The Indian tribes were socially and economically marginalized when colonial authorities cast them in a negative light, criminalizing their entire existence as lawbreakers. Transgender people are still dealing with the effects of the poverty and social exclusion that this legal and social change brought about. Despite advances such as the legal recognition of the third gender and more awareness, the transgender community in modern India still faces tremendous challenges. Their persistent marginalization as a result of discrimination, a lack of opportunity, and other societal constraints exemplifies the contrast between India's long tradition of inclusiveness and its current social struggles for acceptance. In this setting, we may examine the historical and contemporary elements that have shaped the social status of transgender individuals in India.

Social Status of Transgender

A significant societal issue that transcends economic, cultural, and geographical boundaries is the daily experience of transgender persons who encounter discrimination, stigma, and social exclusion. The lived experiences of transgender people frequently expose the persistence of inequalities in healthcare, education, employment, and social acceptance, even if there have been significant legal advancements, such as the Indian Supreme Court's historic NALSA ruling that recognized the third gender. Due to the high expectations put on people, those who don't conform to established gender norms are frequently marginalized and at risk. Many people endure various types of abuse and harassment, both in private and in public spaces. This can cause emotional pain, instability in housing, and financial difficulties. The population at large does not understand or acknowledge transgender persons, which compounds their social isolation, and many businesses and educational institutions do not have policies or training to assist transgender people. While there have been some encouraging advances in this area as a result of grassroots initiatives and advocacy groups, transgender people still face significant social stigma and prejudice. It is critical to analyze the social position of transgender persons in order to fight for a fairer society that recognizes and honors the rights of every person, irrespective of their gender identification. By doing so, we can better understand the cultural and structural elements that contribute to transgender people's oppression and the injustices they face.

Evolution of Legal Protections and Rights

The landmark ruling in the 2014 case of National Legal Services Authority (NALSA) v. Union of India, handed out by the Supreme Court of India, marked a turning point in the struggle for transgender rights in India. This verdict recognized transgender people as a third gender and protected their fundamental rights to equality, dignity, and personal freedom. A landmark decision in Indian legal history, this verdict acknowledged transgender people's right to self-identification and granted them access to certain constitutional safeguards. By mandating that both the federal and state governments guarantee transgender people equal access to healthcare, schools, and jobs, the ruling set a standard for progressive legislation. In 2019, the government approved the Transgender Persons (Protection of Rights) Act to further protect the group from prejudice, ensure inclusion, and improve access to public services. Opponents of the Act argue that it does not go far enough in protecting transgender persons from discrimination and does not fully acknowledge the community's right to self-identify. Activists and advocates for transgender individuals have been vocal in their opposition to the law. The requirement of a medical certificate for gender identity is seen as invasive and at odds with the freedom to self-identification, which was supported in the NALSA ruling. One example of the persistent systemic discrimination that transgender persons face is the gap between the letter and the spirit of the law. Although transgender individuals have made progress in the legal system, there is still a considerable distance to go before their lives are truly changed by these changes. This disparity is evident in the difference between popular opinion and legislative revisions pertaining to transgender persons.

Review of Literature

K.S Putaswammy (2017) The research from the Humsafar Trust delves into the inequalities in healthcare access that transgender people encounter, highlighting problems such as the high prevalence of HIV/AIDS and mental health challenges caused by social isolation. Lack of training among healthcare practitioners to address transgender-specific health requirements is a common cause of subpar or outright discriminatory treatment, according to the study. Fear of stigma prevents many transgender people from getting medical help, which worsens their health problems. Recognizing the inextricable link between social acceptability and healthcare accessibility, the study demands healthcare changes that offer transgender persons inclusive and non-discriminatory treatments.

Narrain (2015) Examines the transgender rights legislation in India, with a focus on the

years after the NALSA ruling by the Supreme Court in 2014. Narrain emphasizes the historic significance of the decision, which legalized self-identification for transgender persons and acknowledged them as a distinct gender. Nevertheless, he points out that these principles are not adequately protected by the Transgender Persons (Protection of Rights) Act, 2019. Some have argued that the Act's weak anti-discrimination measures and its need of medical proof for gender identity run counter to the self-identification concept. While there have been changes to the law, this analysis argues that they have not done enough to combat the pervasive prejudice that transgender people in India endure.

Puri (2010) Despite transgender people's increasing legal protections in India, they continue to face prejudice and social shame. She found that transgender people face widespread social rejection, which affects their ability to get a job, live in a safe environment, and attend school. According to Puri's research, preconceived notions and false information have a significant impact on public opinion, and legislation cannot eradicate these factors. In order to address the discrimination and prejudice transgender persons in India face, her study stresses the need for education, community outreach, and sensitization campaigns to raise awareness and change attitudes.

Stryker and Whittle (2006) Analyze how transgender people have developed through time, paying special attention to how colonialism impacted indigenous peoples' understanding of gender variety. Their research shows that transgender people participated in religious rites and cultural customs in numerous pre-colonial South Asian communities, including India. Unfortunately, transgender people in India still face social marginalization due in part to the systematic stigmatization that resulted from the strict gender standards enforced by colonial legislation. Transgender people in India continue to face discrimination and marginalization, even in the post-colonial age, and it is crucial to see this issue through this historical lens.

Objective of the Study

- To evaluate the impact of legal protections on transgender rights.
- To study on Socio Economic Conditions of Transgender

Hypothesis

The first hypothesis posits that legal protections enhance the rights and acceptance of transgender individuals, while the second suggests that socio-economic conditions significantly

impact their quality of life. These hypotheses explore the relationship between legal frameworks and socio-economic factors in shaping transgender experiences.

Theoretical Analysis

Origin and Identity Formation of Transgenders

A person is defined as transgender under the 2019 Transgender Persons (Protection of Rights) Bill if their gender expression does not match their biological gender. Transgender persons, intersex individuals, genderqueer people, and those with socio-cultural identities such as kinnar, hijras, aravani, or jogta are all encompassed within this category. The Satpatha Brahmana and other ancient texts include passing references to those who do not fit cleanly into the male or female binary, which may indicate that transgender identities may also have their origins in these texts. Histories sometimes depict the hijras as a distinct caste with legendary ties; for instance, in Tamil Nadu, the Aravani are supposed to have married Lord Vishnu, and in the Mahabharata, the story of Bahuchara is associated with Arjuna.

There were 487,803 transgender persons in India's 2011 census, with 54,854 of them being under the age of six. The literacy rate among this specific group is 56.7%. Transgender persons make up an outsized minority in several Indian states, including Uttar Pradesh (28%), Maharashtra (8%), Andhra Pradesh (9%), Madhya Pradesh (6%), and West Bengal (6%). For transgender persons, there is a high unemployment rate and limited access to education. While some transgender persons engage in prostitution, over half work as primary workers.

Socio-Economic Conditions of Transgenders

Their complex relationship with Lord Shiva is reflected in the ancient Hindu writings' association of hijras with the mother goddess. Performing blessings at a variety of social events, they also functioned as guards throughout the Mughal dynasty. Despite their cultural importance, hijras are considered to be from the lowest class and suffer systematic prejudice in the areas of economics, social services, and education. The emotional and physical health of those who participate in sex work is already compromised, and many of them get HIV as a result. Their plight as street beggars is a clear reflection of their disadvantaged status.

Exclusion from Social and Cultural Arenas

Although Indian society is known for its religious and cultural tolerance, there is a significant lack of understanding and acceptance about same-sex couples and transgender individuals. Physical assault, rejection from family and friends, and discrimination based on heredity are among of the severe human rights violations that transgender persons frequently experience. This population often experiences institutionalized forms of discrimination, including verbal harassment, misgendering, and the refusal of life-sustaining medical care.

Exclusion from Political Participation

It was the 1871 Criminal Tribes Act that classified the eunuchs as a "criminals by birth" category. Due to the additional judicial scrutiny, these individuals are much more stigmatized than they were before the amendment. After determining that everyone, including transgender people, has the right to the protections guaranteed by Article 21 of the Indian Constitution, the Delhi High Court decriminalized consensual homosexual activity in a landmark decision in July 2009. Despite these gains, the struggle for transgender equality and access to vital public services, like as ration cards and banks, has only just begun. Despite attempts to assist them in organizing and gaining formal recognition, their lack of a recognized identity remains a significant concern.

National Legal Services Authority V. Union of India

The landmark case of NALSA v. Union of India established that transgender people are a distinct gender with full constitutional protections in India. Justices Radhakrishnan and A.K. Sikri handed down this historic ruling after the National Legal Services Authority and activist Laxmi Narayan Tripathy joined forces in a Public Interest Litigation to bring attention to the widespread prejudice that transgender people experience.

Nalsa Guidelines

Because of their status as members of the "third gender," hijras and eunuchs are entitled to special educational and social programs in accordance with NALSA regulations. Among the enumerated duties is the operation of HIV surveillance centers as well as public awareness initiatives to address transgender discrimination. According to the supplemental provisions, they also need their own medical facilities and bathrooms.

Present Scenario

Even though hijras were recognized in the NALSA ruling, they are nonetheless subject to stigma and prejudice. While there have been some positive developments, such the creation of dedicated classroom space and an increase in available job opportunities, many challenges remain. On July 19, 2019, Minister Thaawarchand Gehlot introduced the Transgender Persons (Protection of Rights) Bill, which aims to define transgender persons and safeguard them from all forms of discrimination.

Highlights of the Bill

The bill proposes protections for transgender individuals against discrimination based on:

- Educational opportunity
- Career paths available
- Medical treatment
- Possibility of utilizing public resources
- Freedom of movement
- Ownership of dwellings
- Possible positions in both the public and commercial sectors
- Prisoners' access to medical care

Fair recruitment practices, adequate medical facilities (particularly for HIV/AIDS treatment), and rehabilitation clinics are other goals. We will be providing transgender persons with identity documents to help prevent prejudice and forced labor in public spaces. A number of government and non-government representatives, along with transgender individuals, will convene to form the National Council for Transgender Persons (NCT).

Even though the Lok Sabha has approved the proposal, the Rajya Sabha has yet to do the same.

Case Study

Suresh Kumar Koushal v. Naz Foundation and Others

In the case of Suresh Kumar Koushal v. Naz Foundation and Others, the Supreme Court overturned its earlier ruling in Naz Foundation v. Government of NCT of Delhi, which had declared Section 377 of the Indian Penal Code unconstitutional. The court's decision was as follows: "The High Court had erroneously relied upon international precedents in its anxiety to protect the so-called rights of LGBT persons." Justices G.S. Singhvi and S.J. Mukhopadhyay made up the bench. Lesbians, homosexuals, bisexuals, and transgender people make up a negligible percentage of the population.

The High Court's decision cannot be sustained since the court found that Section 377 IPC is not unconstitutional.

K.S. Puttaswamy and Anr v. Union of India

The right to privacy was affirmed by a nine-judge panel of the Supreme Court in the 2017 case K.S. Puttaswamy and Anr v. Union of India. Proponents of gay rights in India saw this verdict as a positive step toward their goal of legalization. An important step towards the recognition of personal liberties was the court's ruling that the government and its agents must not interfere with private consensual relationships between persons of the same sex.

Navtej Singh Johar v. Union of India

Petitioner Navtej Singh Johar said in Navtej Singh Johar v. Union of India (2018) that Section 377 of the Indian Penal Code violated his constitutional rights to equality, privacy, and freedom of speech, among others. A person's right to life is violated when their sexual orientation is denied, and their right to privacy is violated when consensual sexual encounters between adults in private are criminalized, according to the court. Legally, same-sex relationships that are mutually agreed upon are no longer considered unlawful.

Recent Views on Same-Sex Marriages

With its decision in October 2023, the Supreme Court confirmed that transgender persons in heterosexual unions have the right to marry, notwithstanding any individual limitations that

may exist. A Constitution Bench presided over by Chief Justice D.Y. Chandrachud determined that marriage regulations need to be applied uniformly to partnerships including transgender males and females as well as cisgender individuals, on account that transgender persons could be in heterosexual relationships. It is legal for transgender males to marry cisgender women, and vice versa.

Perspective of Human Dignity

All people are born free and equal in dignity and rights, according to the 1948 Universal Declaration of Human Rights (UDHR), a fundamental document. All persons, especially those from disadvantaged backgrounds, are subject to this principle, Justice Kirby said.

In the landmark case of Maneka Gandhi v. Union of India, the Indian Supreme Court reaffirmed, in Article 21 of the Constitution, the fundamental right to life and personal liberty for every individual, stating that dignity is paramount.

The European Court of Justice determined in the case of P v. S that it is discriminatory to reject a person because they are pursuing gender reassignment. Transgender people can identify as male, female, or a third gender, as pointed out by Justice Radhakrishnan. He highlighted that hijras specifically identify as a third gender apart from males and females.

Article 19(1) affirms that a person's gender identification is fundamental to their identity, expression, and appearance, and so safeguards the rights of transgender people. The right to privacy, self-identity, and personal integrity of transgender people are protected by the fact that the state cannot limit or obstruct their expression.

South Africa's highest court ruled in the case of President of the Republic of South Africa v. Hugo that unfair treatment of some groups makes it harder to build a democratic and equitable society.

Yogyakarta Principles

When it comes to gender identity and sexual orientation, the Yogyakarta Principles lay out the international human rights requirements. These principles were developed during an expert meeting that took place from November 6-9, 2006, at Indonesia's Gadjah Mada University. They affirm that:

- Dignity and freedom are inherent to every person.

- It is imperative that non-discrimination and equality be guaranteed.
- It need to be acknowledged legally.
- Every person has the right to exist, to be private, and to express themselves freely.

According to the NALSA ruling on human rights abuses, the Yogyakarta Principles are important standards for fighting for individual rights, even if they are not legally enforceable..

Preamble

- Every person has intrinsic freedom, which is emphasized in the Yogyakarta Principles Preamble.
- Wisdom and self-awareness are key.
- Rights must be respected and acknowledged.

The Rights of Transgender People from a Global Perspective

Important precedents for inclusion and equality in legal frameworks globally have been created by several nations' substantial legislative initiatives to acknowledge and safeguard transgender rights.

Country	Laws
Japan	Special cases in handling Gender for people with gender identity disorder. (Act No.111 of July 16,2003)
United Kingdom	Gender Recognition Act,2004
Pakistan	Transgender Persons (Protection of Rights) Bill,2018
Belgium	Gender identity law (abolishing sterilization) July 2017
Portugal	Gender identity law (expansion of self- determination) July 2018
Equador	Civil Registration Act (gender identity recognition on the basis of legal documents)
Vietnam	Transgender Rights Law, November 2015

Conclusion

Despite new laws and court rulings, transgender people in India continue to confront societal and legal obstacles, as this study shows. Despite important legislative developments

and landmark decisions, such as the Transgender Persons (Protection of Rights) Bill, 2019, prejudice and exclusion are nevertheless pervasive in many societal, economic, and institutional contexts, according to the research. Even if people's views have started to change due to legal protections, there has to be a continuous effort to ensure complete inclusion and fair access to resources, opportunities, and rights. Further empowering transgender people and closing the gap between legal reforms and lived realities can be achieved via strengthening and implementing supportive policies.

References

1. American Psychological Association. (2015). Guidelines for psychological practice with transgender and gender nonconforming people. American Psychologist, 70(9), 832–864. https://doi.org/10.1037/a0039906
2. Bauer, G. R., & Scheim, A. I. (2015). Transgender people in Canadian health surveys: Misclassification and underestimation. Canadian Journal of Public Health, 106(5), e267–e274. https://doi.org/10.17269/cjph.106.5110
3. Bockting, W. O., Miner, M. H., Swinburne Romine, R. E., Hamilton, A., & Coleman, E. (2013). Stigma, mental health, and resilience in an online sample of the US transgender population. American Journal of Public Health, 103(5), 943–951. https://doi.org/10.2105/AJPH.2013.301241
4. Bränström, R., & Pachankis, J. E. (2020). Reduction in mental health treatment utilization among transgender individuals after gender-affirming surgeries: A total population study. American Journal of Psychiatry, 177(8), 727–734. https://doi.org/10.1176/appi.ajp.2019.19010080
5. Clark, B. A., Veale, J. F., Greyson, D., & Saewyc, E. (2018). Primary care access and foregone care: A survey of transgender adolescents and young adults. Family Practice, 35(3), 302–306. https://doi.org/10.1093/fampra/cmx112
6. Coleman, E., Bockting, W., Botzer, M., Cohen-Kettenis, P., DeCuypere, G., Feldman, J., ... & Zucker, K. (2012). Standards of care for the health of transsexual, transgender, and gender nonconforming people, version 7. International Journal of Transgenderism, 13(4), 165–232. https://doi.org/10.1080/15532739.2011.700873
7. Conron, K. J., Scott, G., Stowell, G. S., & Landers, S. J. (2012). Transgender health in Massachusetts: Results from a household probability sample of adults. American Journal of Public Health, 102(1), 118–122. https://doi.org/10.2105/AJPH.2011.300315
8. Currah, P., Juang, R. M., & Minter, S. P. (eds.) (2006). Transgender Rights. University of Minnesota Press.
9. Dworkin, S. H., & Yi, H. (2003). LGBT identity, violence, and social justice: The psychological is political. International Journal for the Advancement of Counselling, 25, 269-279. doi:10.1023/BADCO.0000005526.87218.9f.
10. Factor, R. J., & Rothblum, E. D. (2008). Exploring gender identity and community among three groups of transgender individuals in the United States: MTFs, FTMs, and genderqueers. Health Sociology Review, 17(3), 235–253. https://doi.org/10.5172/hesr.451.17.3.235
11. Fisher, A. D., Castellini, G., Ristori, J., Casale, H., Giovanardi, G., Carone, N., ... & Maggi, M. (2020). Who are the desisters? An exploratory study of detransitioners in online communities. Archives of Sexual Behavior, 49(5), 1433–1444. https://doi.org/10.1007/s10508-020-01620-y
12. Grant, J. M., Mottet, L. A., Tanis, J., Harrison, J., Herman, J. L., & Keisling, M. (2011). Injustice at every turn: A report of the National Transgender Discrimination Survey. Washington, DC: National Center for Transgender Equality and National Gay and Lesbian Task Force.
13. Greenberg, J. (2019). Becoming Nicole: The Transformation of an American Family.

14. Haas, A. P., Eliason, M., Mays, V. M., Mathy, R. M., Cochran, S. D., D'Augelli, A. R., ... & Clayton, P. J. (2010). Suicide and suicide risk in lesbian, gay, bisexual, and transgender populations: Review and recommendations. Journal of Homosexuality, 58(1), 10–51. https://doi.org/10.1080/00918369.2011.534038
15. Hines, S. (2007). Transgender Identities: Towards a Social Analysis of Gender Diversity. Routledge.
16. Humsafar Trust. (2017). Health Concerns of Transgender Persons in India: A Report on Access and Inequality. Humsafar Trust.
17. In K.S. Putaswammy and Anr v. Union of India. (2017) 10 SCC
18. James, S. E., Herman, J. L., Rankin, S., Keisling, M., Mottet, L., & Anafi, M. (2016). The Report of the 2015 U.S. Transgender Survey. Washington, DC: National Center for Transgender Equality.
19. Kirby, M. (2016). Human Rights Gay Rights. In 'Humane Rights'. Future Leaders.
20. Levitt, H. M., Ippolito, M. R., & Mazzoni, S. M. (2012). The psychological experience of transgender individuals: A systematic review of the qualitative literature. Journal of Sex Research, 49(4), 354–366. https://doi.org/10.1080/00224499.2011.642024
21. Lorenz, R. D. (2005). Transgender immigration: Legal same-sex marriages and their implications for the defense of marriage act. UCLA Law Review.
22. Maguen, S., & Shipherd, J. C. (2010). Suicide risk among transgender individuals. Psychology & Sexuality, 1(1), 34–43. https://doi.org/10.1080/19419891003634430
23. Minter, S. P., & Daley, D. (2006). We Won't Back Down: Barriers to Health Care for Transgender People. National LGBTQ Task Force.
24. Namaste, V. K. (2000). Invisible Lives: The Erasure of Transsexual and Transgendered People. University of Chicago Press.
25. Narrain, A. (2015). The Case for Gender Self-Determination. Economic and Political Weekly, 50(46), 89-93.
26. Navtej Singh Johar vs Union of India Ministry of Law WRIT PETITION (CRIMINAL) NO. 121 OF (2018).
27. Post, P, (2002), Crossing to Safety: Transgender Health and Homelessness, Healing Hands: A publication of the Health Care for the Homeless Clinician's Network.
28. Puar, J. K. (2007). Terrorist Assemblages: Hom nationalism in Queer Times. Duke University Press.
29. Puri, J. (2010). Transgender Identities and Experiences: Negotiating Self and Society in India. Indian Journal of Gender Studies, 17(1), 29-57.
30. Spade, D. (2015). Normal Life: Administrative Violence, Critical Trans Politics, and the Limits of Law. South End Press.
31. Strangio, C. (2019). Transgender Rights: From Obama to Trump. The New Press.
32. Stryker, S., & Whittle, S. (2006). The Transgender Studies Reader. New York: Routledge.
33. SujitaSethi, & MadhusmitaBarwa (2018). Transgender Health and Their Rights in India. International Journal of Research in Social Sciences.
34. Wilchins, R. A. (2002). Queer Theory, Gender Theory: An Instant Primer. Alyson Books.
35. York, K. M., Tyler, C. L., Tyler, J. M., & Gugel, P. E. (2008). The ever-changing face of sex stereotyping and sex discrimination in the workplace. Journal of Leadership and Organizational Studies, 15, 123-134. doi:10.1177/1548051808321692.

Critical Analysis of the Criminal Justice System in India

Ratan Kumar Patel
Assistant Professor,
Department of Law,
Shri Varshney College Aligarh,
****Prof. Reeta Nigam***
Professor, Faculty of Law,
Agra College Agra.

Abstract

The Criminal Justice system is based on the cardinal principles of fairness, transparency and Human Rights. But these principles underlying criminal law, criminal justice system in India has failed in attainment of these objectives in reality. The reason in failing to satisfy the basic principles of justice system does not lie in its purposes or objects, but in proper handling and managing. The goals of criminal justice are to prevent and regulate crime, to maintain public order and peace, to safeguard the rights of victims and those in dispute with the law, to punish and rehabilitate those found guilty of crimes, and to generally protect life and property from crime and criminality. The paper highlights the various levels that are present in the Indian criminal justice system and various issues that are existing in the same. Additionally, the paper mentions about the various reasons that lead to the crime and various groups that face such crime. Further the paper highlights the recommendations and suggestions that can be incorporated in order to curb the existing lacuna in the criminal justice system.

Keyword: Administration, Criminal Justice, Judicial Pronouncements, New Criminal Laws

Introduction

The Criminal Justice System, which includes the police, the judiciary, and correctional institutions, plays a critical role in implementing human rights. Arrest and investigation are part of the pre-trial procedure under the Criminal Procedure Code of 1973. "Criminal justice

is one of the most important areas of human rights, where the legal system is constantly put to the test in order to maintain social peace and security on the one hand, and to protect the human dignity of both victims and perpetrators of crime on the other." A criminal justice system is a collection of legal and social organizations dedicated to implementing the law in accordance with a set of procedural rules and limits. Criminal justice administration is a term used to describe the process of dealing with crime. When a criminal act occurs, it is the criminal justice system's responsibility to determine if the action has violated individuals' rights and freedoms and, if so, to take the necessary steps to correct the imbalance created by the criminal act. As a result, the criminal justice system is intended to address only one aspect of the crime problem: justice. In carrying out this function, the criminal justice system is forced to take a solely post-oriented approach, focusing on past criminal acts. The need for criminal justice administration arose from the state's decision to impose the high standard of human conduct required to protect people and communities.

Objectives of the Criminal Justice System

The Criminal Justice System in India includes the agencies tasked with adjudicating crime, enforcing the law, and correcting the conduct of criminals. It acts as a device for social control in the country. Society considers some behaviours as harmful and destructive. It tries to prevent such behaviour by apprehending and punishing the violators and transgressors. The following are the main objectives of the Criminal Justice System in India:

- To prevent the occurrence of crime
- To punish the transgressors and the criminals
- To compensate the victims
- To maintain law and order in the society
- To deter the offenders from committing any criminal act in the future

Purpose of the Criminal Justice System

It may be pertinent to mention here that it is only a small portion of the crimes committed which are reported to the police and again out of the crimes reported to the police and goes to the court for trial. Lastly, a very small number of the cases which are put to trial in the court of law reach to the logical conclusion. There are inordinate delays in the disposal of the cases, consequently pressure is mounted on the criminal justice system and people lose faith in the

system.

The basic purpose of the Criminal Justice System is to provide every possible protection to the person and property of the people and to bring the law breakers to the book. In other words, the underlying principle of the Criminal Justice System is to provide justice to both the criminal as well as the victim. Every society is committed to orderliness, peace and justice there exist elements in each and every society who create law and order problems.

The quality of a civil society to great extent depends upon the performance of the Criminal Justice System credibility thus, a CJS that claims to have high arrest rate and higher concretion rate may still not be ideal if it has a low credibility rate in the eyes of the general public.

Criminal Justice System in India

➢ India's criminal justice system is based on the Indian Penal Code (IPC) 1860, the Indian Evidence Act 1872 and the Code of Criminal Procedure 1973.

- The Indian Penal Code (IPC) is the authorised criminal code of India formed in 1860 following the establishment of the first law commission in 1834 under the Charter Act of 1833.
- The Indian Evidence Act (IEA) was enacted in 1872 by the Imperial Legislative Council during the British Raj. It establishes a framework of regulations and related matters that determine the admissibility of evidence in Indian courts of law.
- The Code of Criminal Procedure (CrPC) outlines the protocols for implementing criminal legislation in India. The legislation was passed in 1973 and took effect on April 1, 1974.

➢ The principal governing agencies of the criminal justice system include the police, the judiciary, and correctional facilities. Under the Indian Constitution, it is regarded as the foremost responsibility of the state.

- Therefore, the responsibility for Police and Prison Administration falls with the State.
- However, the Supreme Court administers the judiciary in the entire country at the federal level and the High Courts at the state level.

➢ The police serve as the initial point of contact for anyone subjected to crime and are tasked with the duty of investigating and apprehending perpetrators. The court is tasked with administering justice through legal proceedings and imposing sentences, while the correctional system is responsible for rehabilitating prisoners and preventing re-offenders.

Structure of Criminal Justice System

The Structure of the CJS has Four components:

Police Investigation: According to Section 161 of the Criminal Procedure Code, 1973, the investigating officer has the authority to question anyone who may possess information related to the case and record their statements.

Prosecution of Case by the Prosecutors: Prosecutors formally accuse individuals of committing crimes and attempt to prove their guilt in a court of law.

Determination of Guilt by the Courts: The courts determine guilt and deliver sentences based on their discretion, considering aggravating and mitigating aspects, the offender's background, and the probability of their rehabilitation.

Correction through the Prison System: Inmates in Indian prisons participate in programs that aim to reform and rehabilitate them via yoga, meditation, vocational training, and education.

Challenges Involved in the Criminal Justice System in India

- As of July 2023, there were more than five crore pending cases in all courts in India. Out of the total number of cases, 87.4% are pending in subordinate courts, 12.4% are in High Courts, and there are around 1,82,000 cases that have been pending for more than 30 years.
- Judicial vacancies are another challenge; India has 21 judges per million people. The Law Commission had recommended a target of 50 judges per million people 36 years ago.
- The police are frequently accused of abuse of power, including unwarranted arrests, unlawful incarceration, wrongful requests, harassment, custodial assault, death, and other serious offences. Further, preventative laws are giving the police more and more authority.
- Human rights violations occur in prisons; officials employ physical force on inmates in the name of investigating crimes and getting confessions. Sexual assaults, including molestation and custodial rape, are another kind of torture that women endure.

Commissions Established to Reform Criminal Justice System

- The National Police Commission (NPC) has proposed that cases of custodial deaths or rapes should be subject to a judicial inquiry.

- The Malimath Committee proposed the establishment of a separate police force dedicated to the maintenance of law and order as well as crime investigation.
- The All India Jail Reforms Committee, often known as the Mulla Committee, highlighted the need to employ trained and competent staff members to manage prisons. To achieve this, the committee recommended the establishment of a correctional service.
- The Krishnan Iyer Committee proposed recruiting women personnel in the police force to deal with women and juvenile offenders.

Important Judicial Pronouncements Related to Reform the Criminal Justice System

- The case of Hussainara Khatoon v. Home Secretary, State of Bihar, in 1979, established that detaining undertrials in jail for a duration longer than their prescribed penalty is a glaring infringement of their fundamental rights as protected by Article 21.
- In the case of Prem Shankar Shukla v. Delhi Administration (1980), the court observed that the practice of handcuffing is inhuman and unreasonable; thus, an accused person must not be handcuffed in the first instance.
- In the State of Gujarat v. High Court of Gujarat Case in 1988, it was ruled that prisoners in jail must get a reasonable wage for the work or labour they have done.
- In the Prakash Singh v. Union of India Case in 2006, the Supreme Court ruled that every state must establish a state security committee to monitor the activities of the police and ensure that there is no tampering.
- The case of S.P. Anand v. State of Madhya Pradesh in 2007 ruled that prisoners have a basic right to health despite limited freedom of movement and liberty.

New Criminal Laws

As of July 1, 2024, the new criminal laws have been put into effect by the Centre, the laws were passed in parliament in December 2023. These new laws superseded the Indian Evidence Act of 1872, the Code of Criminal Procedure of 1973, and the Indian Penal Code of 1860. The three Bills and their key provisions

Bharatiya Nyay Sanhita (BNS), 2023, which replaced IPC, 1860

- The BNS adds organised crime (Section 109) and petty organised crime (Section 110). Clause 111(1) includes organised crime and terrorism offences formerly covered by UAPA and state-specific acts.
- The infamous IPC Section 124A, which criminalised sedition, is repealed. Section 150 of the BNS expands sedition to include acts that jeopardise India's sovereignty and integrity.
- Mob lynching is now a distinct offense under the BNS.

Bhartiya Nagrik Suraksha Sanhita (BNSS), 2023, which replaced CrPC, 1898

- The BNSS permits Zero FIRs at any police station, regardless of jurisdiction. The FIR will be investigated at the appropriate police station. This feature simplifies crime reporting, especially in emergency cases.
- Rape survivors' statements will be recorded by a woman police officer in front of their guardian or relative. Medical examination and report must be done within 7 days.

Bharatiya Sakshya Adhiniyam (BSA), 2023, which replaced Evidence Act of 1872

- The BSA makes electronic documents and digital evidence admissible in court with the same legal validity as paper records.
- To avoid hearing delays, courts can adjourn only twice. After the trial, criminal judgments must be rendered within 45 days. After the first hearing, charges must be filed within 60 days.

Constitutional Provisions of the Criminal Justice System in India

The Constitution of India offers a wide range of powers to the various organs of the government. It helps to maintain social order and peace in society. To balance this large amount of powers in the hands of the government, the citizens are also provided with the Fundamental Rights enshrined in part 3.

Following are the various provisions related to the Criminal Justice System enshrined in the Constitution of India:

- Article 21 lays down the Right to Life and Personal Liberty, which says, "No person shall be deprived of his life or personal liberty except according to the procedure established by law."
- Article 20 offers Protection in respect of the Conviction of Offences. This recognizes three basic principles of criminal liability, i.e., Protection against the application of ex post facto law, the prohibition against double jeopardy, and Protection against self-incrimination.

- Article 22 imposes three important limitations on the powers of the State to arrest a person. These include communication of grounds of arrest to the arrestee, an arrestee will be given the right to consult and be defended by a council of his choice, and the arrestee would be produced before a magistrate within 24 hours of his arrest.
- Article 14 lays down the principle of "Equality before the Law." this ensures the non-discriminatory application of the process of criminalization on all citizens.
- The directive of Equal Justice and Free Legal Aid is given in Article 39A. The 42nd Amendment of the Constitution brought it. The National Legal Services Authorities Act of 1987 was enacted to comply with this provision.
- Enforcement of Fundamental Rights by constitutional courts through provisions of Judicial remedies under Articles 32 and 226.
- All the matters related to criminal law and criminal procedure, as included in the Indian Penal Code (IPC) and Criminal Procedure Code (CrPC), are included in the concurrent part of the 7th Schedule of the Constitution, along with the exceptions.

Recommendations of Malimath Committee on Criminal Justice System of India

The Home Ministry of India set up a committee in 2000 to revamp India's age-old Criminal Justice System. The committee was chaired by Justice V.S. Malimath, who had served as the Chief Justice of the High Courts of Karnataka and Kerala. It reviewed the Criminal Justice System of India, especially the Indian Penal Code (IPC) of 1860, the Indian Evidence Act of 1872, and the Code of Criminal Procedure (CrPC) of 1973.

The committee submitted 158 recommendations in 2003. Some of its important recommendations are as follows:

- The committee recognized the need for reforms in India's Criminal Justice System as it has become ineffective. Several guilty go unpunished, and the justice system has lost the deterrent effect on the criminals.
- Section 311 of the Code of Criminal Procedure (CrPC) of 1973 be amended so that the Courts can summon anyone for questioning irrespective of whether they are designated witnesses.
- The Right to Silence available as a Fundamental Right to the accused under Article 20(3) should be balanced with the court's power to elicit the necessary information from him.
- The committee recommended drawing adverse inferences against the accused if he refused to cooperate and answer.

- The committee recommended that all the rights available to the accused, as per the Constitution, several Legislations, and various Judicial pronouncements, should be collected and placed as a schedule to the Criminal Procedure Code.
- The committee concluded that the concept of 'Proof beyond reasonable doubt' should be eliminated. It recommended that in its place, a standard of Proof should be placed which is lesser than the Proof beyond reasonable doubt and higher than 'the Proof on the preponderance of probabilities.
- The committee recommended that the State should ensure Justice for the victims. For this, it should provide a lawyer and bear its cost if the Victim can't afford it.
  - Compensation to victims is an obligation of the State. For this purpose, a victim compensation fund can be established.
- Ensure the Victim's right to participate in the criminal trial through:
  - Allowing him to produce oral or documentary evidence with the court's permission.
  - Allow him to ask questions from the witness and suggest questions to the court.
  - To be heard in case of grant of bail to the accused.
  - In some cases, psychiatric and other medical help should be included as a part of legal services.
- Separating the Investigation Wing and Law & Order wing. Setting up a Police Establishment Board to deal with the transfers, postings, etc. Establishing the National Security Commission and the State Security Commissions.
- Establishing a separate criminal division in the higher courts in which judges who specialize in Criminal law should be included.
- Imparting state-of-the-art training to the officials. The training infrastructure should be strengthened at the Central and State levels. Moreover, hand-picked and efficient officials should be posted at such institutions with adequate monetary incentives.
- The use of modern technology and forensic science should be encouraged in the investigation right from the start.
- The network of Forensic labs in the country needs to be strengthened.
- The National Police Act of 1861 has become obsolete. The National Police Commission must prepare a new Police act.
- Use tape/video recording, especially in cases where the sentence is over seven years.
- To strengthen prosecution, a post of Director of Prosecution should be created in every State.

- Appropriate officers of the Director General of Police rank should fill this post.
- The Advocate General of the State should be consulted before making the appointment.
- A National Judicial Commission should be constituted to deal with the appointment and cases of misconduct relating to the Supreme Court and High Court Judges.

Punishments According to the Criminal Justice System of India

In India, the criminal justice system administers punishments based on the Indian Penal Code (IPC). The nature of penalties varies depending on the gravity of the offence and can be broadly categorized into imprisonment, fines, and capital punishment.

Imprisonment stands as the predominant form of punishment, serving the purpose of reforming and rehabilitating offenders. The severity of the committed crime determines the duration of imprisonment. Fines are also utilized to discourage offenders from engaging in further unlawful activities.

Capital punishment represents an additional punitive measure in the criminal justice system, specifically reserved for the most serious crimes, such as murder and rape. However, this form of punishment is contentious, with some viewing it as a harsh and unconventional means of penalization.

Institutions of Criminal Justice System

A country's criminal justice system is made up of numerous legal and social entities that are responsible for enforcing criminal legislation. The basic goal of the criminal justice system is to preserve law and order in society, prevent crime, impose deterrent on offenders to reduce crime, and punish those who commit crimes.

However, the role of the criminal justice system in the contemporary sense does not end there; it must also engage in offender rehabilitation. The study of the workings of the criminal justice system indicates that the criminal justice system of every country operates through the following institutions:

1. Investigation Agency - Law Enforcement Authorities (Police and Others)

2. Prosecuting Agency: Prosecution, Prosecutor, and Defense Lawyer

3. Judiciary—Trial and Penal Authority/Adjudication Authority

4. Punishment Executing Agency: Custodial Institutions (Jails/Prisons)

5. Reforming Agency for Correctional Institutions (Parole, Probation)

In the common law tradition, the criminal judicial system is founded on the presumption of innocence and the necessity that the criminal accusation be proven beyond a reasonable doubt. It is necessary to increase the level of forensic expertise and turn it into a true justice-promoting system.

Conclusion

An efficient functioning of the Criminal Justice System is needed to maintain law and order in a society, and it has to align with the complexities of society. The formation of the new laws is a big step but its implementation will decide its success. As a nation, we still need to work on the challenges of pending cases, shortages of judges, and abuse of power. In addition, we need to ensure that people, especially from marginalised communities, have access to the justice system. As a result, the criminal justice system requires more change and flexibility, better coordination and integration in planning and policy, and a shift from a limited law enforcement focus to one that addresses larger crime prevention concerns.

References

1. Bedi, Vandana "Rehabilitation Council of India Act: An Overview and Emerging Issues", in S.K. Verma and S.C. Srivastava, (ed.), Rights of Persons with Disabilities (lndian Law Institute. New Delhi. 2002.
2. Chakrabarthi, N.K. (1999). Institutional Corrections in the Administration of Criminal Justice. New Delhi: Deep & Deep Publications Pvt. Ltd.
3. Chauhan, B., & Srivastava, M. (2011). Change and Challenges for Indian Prison Administration, The Indian Police Journal, Vol, LV111 (1). Jan-Mar, 2011.Pg 69-86.
4. Diaz, S. M. 1979. "Prison Administration in India." Indian Journal of Public Administration. https://doi.org/10.1177/0019556119790106.
5. Judicial Approach in Criminal Justice System: An Experience of India by Vikas H. Gandhi, readworthy publications (p) ltd., 2010
6. Glover Alexander, G. 2011. The Administration of Justice in Criminal Matters: (in England and Wales). Cambridge University Press.
7. Klein, Fannie J. 1976. The Administration of Justice in the Courts: The Administration of Criminal Justice in the Courts. Oceana Publications.
8. Mears, Daniel P. 1999. "Book Review: Readings in Juvenile Justice Administration." Criminal Justice Review. https://doi.org/10.1177/073401689902400228.
9. Moran, Nathan R. 2003. "Book Review: Handbook of Criminal Justice Administration." Criminal Justice Review. https://doi.org/10.1177/073401680302800222.

10. Nagla, B. K. 1989. "Prison Administration in India." Indian Journal of Public Administration. https://doi.org/10.1177/0019556119890414.

11. The Constitution of India, Government of India, Ministry of Law, Justice and Company Affairs, New Delhi, 2000.

12. Thilagaraj, Dr. R, (ed.), Human Rights and Criminal Justice Administration, A.P.H. Publishing Corporation, New Delhi, 2002.

13. Singh, D.R., "Evolution of Indian Criminal Justice System: Influence of Political and Economic Factor", I.J.P.A., July-Sep., 1994.

14. Unnithan, N. Prabha (2013) "Crime and Justice in India", SAGE Publications India Private Limited, pg.84-85